इकाई 1- सामाजिक मनोविज्ञानः स्वरूप, कार्यक्षेत्र, उपयोगिता, सामाजिक व्यवहार के नियम - अनुकरण, सुझाव एवं सहानुभूति

इकाई संरचना-

1.1 प्रस्तावना
1.2 उद्देश्य
1.3 सामाजिक मनोविज्ञान परिचय
  1.3.1 परिभाषा एवं विशेषता
1.4 सामाजिक मनोविज्ञान का स्वरूप
1.5 कार्यक्षेत्र
1.6 उपयोगिता
1.7 सामाजिक व्यवहार के नियम
  1.7.1 अनुकरण
  1.7.2 सुझाव या संसूचन
  1.7.3 सहानुभूति
1.8 सारांश
1.9 शब्दावली
1.10 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न एवं उनके उत्तर
1.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
1.12 निबन्धात्मक प्रश्न

1.1 प्रस्तावना

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। परिस्थितियों के अनुसार भिन्न-भिन्न अवसरों पर उसके व्यवहार बदलते रहते हैं। व्यक्ति के सामाजिक व्यवहार को समझने के लिए ही समाज मनोविज्ञान का प्रादुर्भाव हुआ है। मानव सामाजिक व्यवहार का अध्ययन प्राचीन काल से ही किया जाता रहा है। यह कहा जा सकता है कि इस विषय का उदय पाश्चात्य दर्शन से हुआ है। प्रारम्भिक विचारकों का दृष्टिकोण दार्शनिक या आत्मनिष्ठ हुआ करता था। आधुनिक दृष्टिकोण वस्तुनिष्ठता एवं वैज्ञानिकता पर बल देता है। स्पष्ट है कि सामाजिक मनोविज्ञान का आधुनिक स्वरूप अतीत की तुलना में अधिक वैज्ञानिक हो गया है। बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में सामाजिक मनोविज्ञान का विकास मुख्यतः अमेरिका में हुआ। वहाँ के विद्वानों ने सामाजिक

समस्याओं और आवश्यकताओं के समाधान के लिए सामाजिक मनोविज्ञान नियमों और सिद्वान्तों का सहारा लिया। द्वितीय विश्व युद्ध से उत्पन्न व्यवहार सम्बन्धी अनेक समस्याओं का समाधान समाज मनोविज्ञान के नियमों व सिद्धान्तों द्वारा किया गया। वर्तमान में यह विषय तीव्र गति से विकसित हो रहा है। सामाजिक मनोविज्ञान की परिभाषा, स्वरूप, कार्यक्षेत्र, उपयोगिता तथा सामाजिक व्यवहार के नियम- अनुकरण सुझाव एवं सहानुभूति का समावेश करते हुए स्व-अध्ययन पाठ्य सामग्री की प्रथम इकाई का निर्माण किया गया है।

1.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के पश्चात् आप-

1. सामाजिक मनोविज्ञान से परिचित हो सकेंगे। इसकी परिभाषा, स्वरूप, कार्यक्षेत्र एवं उपयोगिता को समझ सकेंगे।
2. सामाजिक व्यवहार के नियम के अन्तर्गत अनुकरण, सुझाव एवं सहानुभूति से अवगत हो सकेंगे।
3. सामाजिक मनोविज्ञान के उपर्युक्त आधारभूत विषय वस्तु के अध्ययन के उपरान्त अग्रिम अध्ययन के साथ-साथ व्यक्तिगत जीवन की व्यावहारिक समस्याओं के समाधान में समक्ष हो सकेंगे।

1.3 सामाजिक मनोविज्ञान का परिचय

मनोविज्ञान कभी चेतना के तो कभी आत्मा के, कभी मन के तो कभी मनुष्य के व्यवहार से जोड़ा गया। परन्तु वास्तविक विषय वस्तु को समझना प्रायः जटिल साबित हुआ। उन्नीसवीं शताब्दी के तीसरे दशक तक सामाजिक मनोविज्ञान का स्वरूप दार्शनिक था। इसके अन्तिम दशक में यह दार्शनिक चिन्तन से स्वतंत्र होकर मनोविज्ञान की एक शाखा के रूप में आ गया।

समाज मनोविज्ञान का इतिहास 1908 से प्रारम्भ होता है जब विलियम मैकडूगल ने समाज मनोविज्ञान की प्रथम पाठ्य पुस्तक प्रकाशित की। वर्ष 1908-1939 तक समाज मनोविज्ञान का प्रारम्भिक काल माना गया। वर्ष 1940-1970 में अनेक शोध कार्य हुए। इसका कार्यक्षेत्र और विकसित हुआ। वर्ष 1970 के बाद पहले से शुरू किए गये शोध कार्यों को जारी रखते हुए नई-नई सामाजिक प्रक्रियाओं का अध्ययन किया जा रहा है।

सामाजिक मनोविज्ञान के अन्तर्गत विशेष रूप से प्राणी के सामाजिक व्यवहार का ही अध्ययन किया जाता है।

1.3.1 सामाजिक मनोविज्ञान की परिभाषा एवं विशेषता

"समाज मनोविज्ञान एक ऐसा वैज्ञानिक क्षेत्र है जो सामाजिक परिस्थिति में व्यक्ति के व्यवहार एवं चिन्तन के स्वरूप एवं कारणों को समझने की कोशिश करता है"।

Baron & Byrne and Branscombe, 2006 social psychology 1987 p-14

"व्यक्ति दूसरों के बारे में किस तरह सोचता है, दूसरे को कैसे प्रभावित करता है तथा एक दूसरे को किस तरह सम्बंधित करता है का वैज्ञानिक अध्ययन ही समाज मनोविज्ञान है"।

Myers, Social Psychology 1988 P.3

समाज मनोवैज्ञानिकों ने समाज मनोविज्ञान को अपने दृष्टिकोण के अनुसार परिभाषित किया है। एक समानता सभी में पायी जाती है। करीब-करीब सभी लोगों ने समाज मनोविज्ञान के विषयवस्तु के रूप में व्यक्ति द्वारा सामाजिक परिस्थिति में किए गये व्यवहार को स्वीकृत किया है। न्यूकाम्ब (Newcomb 1962) ने ऐसे व्यवहारों को अन्तःक्रिया की संज्ञा दी है।

इस प्रकार उपर्युक्त परिभाषाओं एवं समानता को दृष्टिगत रखते हुए मनोविज्ञान की सामान्य परिभाषा निम्नवत् है।

"समाज मनोविज्ञान व्यक्ति के व्यवहार तथा अनुभूतियों का सामाजिक परीस्थिति में अध्ययन करने का एक विज्ञान है"।

इस सामान्य परिभाषा का विश्लेषण करने पर निम्न तथ्य प्राप्त होते हैं-

i. समाज मनोविज्ञान एक विज्ञान (Science) है तथा मनोविज्ञान की एक शाखा है।
ii. समाज मनोविज्ञान में व्यक्ति के व्यवहारों एवं अनुभूतियों का अध्ययन किया जाता है।
iii. एक समाज मनोवैज्ञानिक इन व्यवहारों एवं अनुभूतियों का अध्ययन सामाजिक परिस्थिति में करता है।

1.4 समाज मनोविज्ञान का स्वरूप

सामाजिक मनोविज्ञान की परिभाषाओं पर विचार करने पर स्पष्ट होता है कि सामाजिक मनोविज्ञान एक विज्ञान है। यह भी स्पष्ट होता है कि इसमें व्यक्ति के उन व्यवहारों तथा अनुभवों का अध्ययन किया जाता है। जिनका प्रदर्शन या उत्पत्ति सामाजिक परिस्थिति के कारण होता है। ऐसे व्यवहार जिनकी उत्पत्ति सामाजिक कारणों से नहीं होती है वे सामाजिक मनोविज्ञान की परिधि में नहीं आते हैं।

विभिन्न परिभाषाओं के विश्लेषण करने पर सामाजिक मनोविज्ञान के स्वरूप को निम्न प्रकार से व्यक्त किया जा सकता है-

- सामाजिक मनोविज्ञान में व्यक्ति ही अध्ययन का केंद्र बिन्दु होता है।
- इसमें व्यक्ति के सामाजिक व्यवहार तथा अनुभव का अध्ययन किया जाता है।
- सामाजिक कारणों से भिन्न व्यवहार सामाजिक मनोविज्ञान की विषय वस्तु नहीं होती है।
- सामाजिक व्यवहार को समझाना तथा कारणों को स्पष्ट करना इसका मूल उद्देश्य होता है।

- सामाजिक व्यवहार का अध्ययन वैज्ञानिक विधि से किया जाता है, ताकि व्यवहार तथा उसको उत्पन्न करने वाले कारण के बीच वस्तुनिष्ठ संबंध स्थापित किया जा सके।
- सामाजिक व्यवहार सामाजिक अन्तक्रिया या सामाजिक प्रभाव का परिणाम होता है।
- सामाजिक उद्दीपक परिस्थिति का निर्माण अन्य व्यक्ति, अन्य व्यक्तियों के समूहों तथा सांस्कृतिक कारकों से होता है। इनसे प्रभावित होने पर सामाजिक व्यवहार प्रदर्शित होता है।

सामाजिक मनोविज्ञान के स्वरूप से संबंधित बिन्दुओं से स्पष्ट होता है कि मानव अध्ययन का मुख्य केन्द्र विन्दु होता है। इसमें मानव के सामाजिक व्यवहार का अध्ययन किया जाता है। इससे यह स्पष्ट है कि मानव व्यवहार का ही अध्ययन इसमें किया जाता है। मानव व्यवहार की व्यवस्था उसके स्वयं के व्यक्तित्व सामाजिक सम्बन्ध तथा सांस्कृतिक पृष्ठभूमि पर निर्भर करती है।

1.5 कार्यक्षेत्र

सामाजिक मनोविज्ञान का क्षेत्र बहुत व्यापक और विस्तृत है। इसके अन्तर्गत समाज में व्यक्ति के व्यवहार, सामाजिक दशा में व्यवहार, सामाजिक परिस्थितियों से प्रभावित व्यक्ति के व्यवहार तथा इन सभी क्षेत्रों से सम्बन्धित सामाजिक अन्तःक्रियाओं और सम्बन्धित समस्याओं का अध्ययन किया जाता है। समस्याएँ एक व्यक्ति से, एक समूह से, कई समूहों से या अनके व्यक्ति से सम्बन्धित हो सकती हैं। इन समस्याओं का अध्ययन, विश्लेषण और व्याख्या ही मूल रूप से समाज मनोविज्ञान का क्षेत्र है। विकास के साथ-साथ सामाजिक मनोविज्ञान का क्षेत्र भी विस्तृत होता जा रहा है।
अतः इसका क्षेत्र स्थाई व निश्चत नही है। इसके क्षेत्र तथा समस्याओं को सीमाबद्ध करना कठिन है। फिर भी संक्षेप में इसे निम्नवत् स्पष्ट किया जा रहा है-

i. **व्यक्ति के सामाजिक व्यवहार**-मानव के अधिकतर व्यवहार पर सामाजिक कारणों का प्रभाव पड़ना स्वाभाविक है। मनोविज्ञान विभिन्न परिस्थितियों में व्यवहार का विश्लेषण करके व्यवहार तथा कारण के बीच नियमपूर्ण सम्बन्ध स्थापित करता है। अतः जीवन के प्रत्येक पहलू में सामाजिक मनोविज्ञान का क्षेत्र निहित हैं।
ii. **बालक के सामाजीकरण**-शिशु जैसे - बड़ा होता है वैसे-वैसे उसमें सामाजिक समझ भी बढ़ती है। तदनुसार वह सामाजिक व्यवहार भी करने लगता है। शिशु के सामाजिक अधिगम प्रक्रम का जीवन में अत्यधिक महत्व है। अतः बच्चों में अच्छे गुणों का विकास तथा अवांछित व्यवहारों को नियंत्रित करने हेतु उपर्युक्त परिस्थितियाँ उत्पन्न करना सामाजिक मनोवैज्ञानिकों का मुख्य कार्य है।
iii. **सांस्कृतिक कारकों का मूल्यांकन** -सांस्कृतिक परिवेश की जो विशेषताएँ होंगी उसी के अनुरूप व्यक्ति में गुणों का विकास होगा। उदाहरणार्थ-धार्मिक परिवेश में पले बच्चों में दया, धर्म तथा सहनशीलता अधिक होगी और आक्रामक परिवेश में पले बच्चे झगड़ालू असहिष्णु एवं अवांछित हो सकते हैं। इन समस्याओं का अध्ययन समाज मनोविज्ञान का ही कार्य है।

iv. **वैयक्तिक एवं समूह भिन्नता-**किसी विशेष समूह के सदस्यों में समानता के साथ-साथ असमानता भी पायी जाती है। वह समूह भी विशेषता से प्रभावित तो रहता ही है साथ में उसमें उसके अपने विशिष्ट गुण भी होते हैं। उनका अध्ययन एवं विश्लेषण करना समाज मनोविज्ञान के ही कार्य क्षेत्र में आता है।

v. **सामूहिक प्रक्रमों का अध्ययन-**समूहों की रचना कैसे होती है। समूह क्यों स्थिर/अस्थिर हो जाते हैं? समूह स्तरीकरण का विभिन्न सदस्यों के व्यवहारों पर कैसा प्रभाव पड़ता है। विभिन्न समूहों के पारस्परिक सम्बन्ध किस प्रकार बनते हैं। समूह सम्बन्धी इन सभी घटनाओं एवं प्रक्रमों का अध्ययन समाज मनोविज्ञान का एक प्रमुख कार्य है। इसी प्रकार नेतृत्व एवं मनोबल आदि का भी अध्ययन एक महत्वपूर्ण कार्य है।

vi. **सामूहिक व्यवहारों का अध्ययन**-भीड़ (Crowd) एवं श्रोतागण (Audience) आदि जैसी सामूहिक या परिस्थितिजन्य स्थितियों का अध्ययन सामाजिक मनोविज्ञान द्वारा किया जाता है। इनकी विशेषताओं, इनके निर्धारकों तथा व्यक्ति के वैयक्तिक व्यवहार इनके प्रभावों का मूल्यांकन करना समाज मनोविज्ञान का ही कार्य है।

vii. **अभिवृत्ति एवं पक्षपात-**समाज मनोविज्ञान में अभिवृत्तियों के स्वरूप निर्माण तथा परिवर्तन पूर्वाग्रहों (Prejudice) एवं रूढ़िबद्ध धारणाओं (Stereotypes) के भी अर्जन तथा उनके निर्धारकों का अध्ययन समाज मनोविज्ञान में होता है। व्यवहार को एक निश्चित रूप मे प्रदर्शित करने में इनकी अहम् भूमिका होती है। इनके निराकरण का उपाय सुझाना, सामाजिक मनोविज्ञान का मुख्य उद्देश्य होता है।

viii. **सामाजिक व्याधिकी (Social Pathology)-** आज पारिवारिक विघटन, अपराध, बाल विवाह, समूह संघर्ष, बाल अपराध, युद्ध, भिक्षावृत्ति, सामाजिक अशांति, साम्प्रदायिक दंगे धार्मिक असहिष्णुता, शोषण तथा मानसिक विकृतियाँ आदि बहुत साधारण बातें हो गई हैं। अन्य समस्याओं के मानवीय एवं सामाजिक पहलुओं का विश्लेषण करना तथा इनके समाधान के लिए विकल्प तैयार करना समाज मनोविज्ञान की आवश्यक विषय वस्तु है।

ix. **प्रचार** (**Propaganda**)- आज प्रचार का महत्व अत्यधिक बढ़ गया है। इसके द्वारा व्यक्ति के राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक एवं अन्य प्रकारों के व्यवहारों का निर्देशन तथा नियंत्रण होता है। विषयवस्तु लोकप्रिय बनाने के लिए उपयोगी सुझाव देना साथ ही कुप्रचारों से बचने का भी सुझाव देना सामाजिक मनोविज्ञान का कार्य है।

x. राजनैतिक उपयोगिता-आज का युग राजनीतिक युग है। अतः लोगों के विचारों तथा व्यवहारों को प्रभावित करने, समूह संगठनों, दलों के गठन और अपना प्रभुत्व स्थापित करने के लिए समाज मनोवैज्ञानिक नियमों एवं सुझावों का उपयोग किया जा रहा है। इसके अतिरिक्त विभिन्न संगठनों तथा राष्ट्रों के बीच व्याप्त तनाव तथा दूरी को कम करने के लिए भी समाज मनोवैज्ञानिक उपक्रमों का उपयोग किया जा सकता है।

1.6 उपयोगिता/महत्व

मनोविज्ञान व्यक्ति के व्यावहारिक एवं सैद्धान्तिक दोनों प्रकार के पक्षों का अध्ययन करता है। अतः मनोविज्ञान की इस शाखा की उपयोगिता को निम्नलिखित दो भागों में बाँटा जा सकता है-

i. व्यावहारिक उपयोगिता
ii. सैद्धान्तिक उपयोगिता

व्यावहारिक उपयोगिता

- सुखद सामाजिक जीवन स्थापना
- स्वस्थ औद्योगिक विकास
- भेदभाव से मुक्त सामाजिक विकास एवं
- स्वस्थ सामाजिक समायोजन में सामाजिक मनोविज्ञान की उपयोगिता बहुत महत्वपूर्ण है।

i. **सुखद सामाजिक जीवन स्थापना-** प्रत्येक समाज की अपनी-अपनी संस्कृति होती है। अतः प्रत्येक समाज के व्यवहार भी भिन्न-भिन्न होते हैं। सामाजिक व्यवहार भिन्नता के कारण सामाजिक तनाव (Tension), युद्ध, शीत युद्ध, पूर्वाग्रह, रूढ़ियाँ, साम्प्रदायिक दंगे, अन्तर्राष्ट्रीय युद्ध होते ही रहते हैं। इनसे हमारा सामाजिक जीवन कुप्रभावित होता है। समाज मनोविज्ञान हमें सामाजिक तनाव को समाप्त कर एक सुखद सामाजिक जीवन कायम करने में मदद करता है।

ii. **स्वस्थ औद्योगिक विकास-** प्रचार एवं जनमत ऐसे क्षेत्र हैं जहाँ कुशल प्रचार के द्वारा औद्योगिक माल के प्रति अच्छा जनमत तैयार किया जा सकता है। इससे उत्पादित वस्तु की माँग बढ़ जती है। इस प्रकार समाज मनोविज्ञान राष्ट्र के औद्योगिक विकास में मदद करता है। बड़े-बड़े औद्योगिक संस्थानों में समाज मनोवैज्ञानिक मजदूरों एवं मालिकों के बीच उत्पन्न तनाव को कम करके उनके बीच एक सौहार्दपूर्ण सम्बन्ध स्थापित करते हैं। इससे औद्योगिक विकास को बल मिलता है।

iii. **भेदभाव मुक्त सामाजिक विकास** -वर्तमान सामाजिक जीवन में पूर्वाग्रह एवं रूढ़ियाँ काफी व्याप्त हैं। जातीय पक्षपात अपनी चरम सीमा पर है। इनसे सामाजिक जीवन नीरस सा हो गया है। सामाजिक मनोविज्ञान इस नीरसता को दूर करने में काफी सहायक सिद्ध हो रहा है।

iv. **स्वस्थ सामाजिक समायोजन -** आधुनिक समाज में गतिशीलता बहुत अधिक है। परिवर्तन की गति बहुत तीव्र है। सामाजिक जीवन को सजग, सरल एवं सफल बनाए रखने के लिए व्यक्तियों का समायोजन सामाजिक परिवर्तनों के साथ-साथ होना आवश्यक है। समाज मनोविज्ञान सामाजिक मूल्यों, सामाजिक मानको, सामाजिक शक्ति आदि के बारे में यथोचित ज्ञान उपचार कराकर उन्हें स्वस्थ सामाजिक समायोजन करने में मदद करता है।

सैद्धान्तिक उपयोगिता

सामाजिक मनोविज्ञान की कुछ सैद्धान्तिक उपयोगिताएं भी हैं जिसके कारण मनोविज्ञान की यह शाखा काफी लोकप्रिय हो गई है।

- सामाजिक परिस्थिति में व्यक्तियों के अन्तःक्रियाओं का अध्ययन कर समाज मनोवैज्ञानिकों द्वारा ऐसे नियम एवं सिद्धान्त तैयार किए जाते हैं जिससे स्वस्थ सामाजिक क्रम (Social order) बना रहे। निश्चित सामाजिक क्रम एवं सामाजिक व्यवस्था के परिणामस्वरूप व्यक्तियों में खुशहाली छाई रहती है।
- प्रत्येक समाज का एक मानक (Norm) तथा मूल्य (Value) होता है, जिसके अनुसार व्यक्तियों को व्यवहार करना पड़ता है। इन मानकों के आधार पर समाज मनोवैज्ञानिक यह बताने की कोशिश करते हैं कि अमुक व्यक्ति का व्यवहार समाज विरोधी क्यों है। इसके कारण क्या हैं। इनका उपचार कैसे हो सकता है।
- समाज मनोविज्ञान व्यक्तित्व के स्वस्थ विकास में मदद करता है। समाज मनोविज्ञान व्यक्तियों को एक सफल, सजग एवं सुन्दर नागरिक बनाकर एक आदर्श समाज की स्थापना करने में मदद करता है।
- समाज मनोविज्ञान दूसरे व्यक्तियों का सही सही प्रत्यक्षण करने तथा उनके बारे मे सही-सही निर्णय लेने में मदद करता है। सामाजिक मनोवैज्ञानिकों द्वारा व्यक्ति प्रत्यक्षण (Social perception) के क्षेत्र में अनेक सिद्धान्तों एवं नियमों का प्रतिपादन किया गया है। जिनसे अन्य व्यक्तियों को समझने एवं उनके साथ सामाजिक अन्तःक्रिया करने में मदद मिलती है।

इस तरह समाज मनोविज्ञान मानव के लिए बहुत उपयोगी मनोविज्ञान है। इन व्यवहारिक एवं सैद्धान्तिक उपयोगिताओं के आधार पर समाज मनोविज्ञान, आज मनोविज्ञान की एक लोकप्रिय शाखा के रूप में उभर कर लोगों के सामने आ सका है।

1.7 सामाजिक व्यवहार के नियम

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। इन व्यवहारों को समझने के लिए समाज मनोवैज्ञानिकों ने कुछ नियमों का प्रतिपादन किया है। इन नियमों के आधार पर सामाजिक अन्तःक्रिया होती है। मैकडूगल (Mc. Dougal, 1919) के अनुसार इन नियमों को तीन भागों में बांटा जा सकता है-

- अनुकरण (Imitation)
- सुझाव (Suggestion)
- सहानुभूति (Sympathy)

1.7.1 अनुकरण (Imitation)

अर्थ एवं स्वरूप - साधारण भाषा में अनुकरण का अर्थ नकल करना होता है। जब एक बच्चा या व्यक्ति दूसरों के व्यवहार को देखकर वैसा ही व्यवहार करता है तो इस प्रक्रिया को अनुकरण की संज्ञा दी जाती है।

नकल किए जाने वाले व्यवहार का मतलब नकल करने वाला व्यक्ति जानता भी न हो तो भी वह नकल करता है।

उदाहरण-

i. पिता को लिखते हुए देख कर बच्चा भी पेंसिल से रेखाएं खीचना प्रारम्भ कर देता है।
ii. पिता को किसी मूर्ति के सामने झुकते हुए देखकर बच्चा भी सिर झुकाने लगता है।
iii. पिता को चश्मा लगाते देख कर पुत्र भी मौका देखकर चश्मा चढ़ा लेता है।
iv. सिनेमा में अभिनेता एंव अभिनेत्रियों के पहनावा को देखकर युवक-युवतियां उनकी नकल करने लगती हैं।
v. किसी मधुर संगीत को सुनकर व्यक्ति स्वतः अपनी उंगलियों से तान या थाप देना प्रारम्भ कर देता है।

- **चेतन अनुकरण (Conscious Imitation)** - जब कोई व्यक्ति जानबूझकर किसी अन्य व्यक्ति के व्यवहार का अनुकरण करता है तो उसे चेतन अनुकरण कहते हैं। उपर्युक्त 1 से 4 तक के उदाहरण चेतन अनुकरण से सम्बन्धित हैं।
- **अचेतन अनुकरण (Unconscious Imitation) -** अचेतन अनुकरण में व्यक्ति जान बूझकर दूसरे का अनुकरण नहीं करता है। अज्ञात रूप से अपने आप ही नकल हो जाती है। मिलर तथा डोलार्ड ने इस तरह के अचेतन अनुकरण को समेल निर्भरता (Matched Dependent) कहा है। जैसे-किसी मधुर संगीत को सुनकर लय के अनुसार व्यक्ति स्वतः अपनी उगलियों से तान या थाप देने लगता है।

अनुकरण इतना स्वाभाविक एवं व्यापक होता है कि मैकडूगल (Mc. Dougal 1909) ने इसे एक मूलप्रवृत्ति की श्रेणी में रखने की संस्तुति की। आधुनिक मनोवैज्ञानिकों जैसे-मिलर तथा डोलार्ड, एवं मर्फी तथा मर्फी एवं न्यूकाम्ब ने असहमति जताते हुए कहा कि अनुकरण एक मूल प्रवृत्ति नहीं हो सकती, क्योंकि यह एक अर्जित प्रक्रिया (Learnt process) है।

परिभाषाएं

- "एक व्यक्ति द्वारा दूसरे व्यक्ति के क्रिया कलाप और शरीर संचालन की नकल मात्र को अनुकरण कहते हैं"।
  "Imitation is applicable only to the copying by one individual of the actions, the bodily movements of another."- William Mc. Dougal (1909)
- "अनुकरण एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमें किसी दूसरे व्यक्ति की समान क्रियाएं उद्दीपक का कार्य करती हैं"।
  "Imitation is a reaction for which the stimulus is the perception of another's similar reaction."

- "वह व्यवहार जिसका प्रतिरूपण किया जाता है या अन्य किसी की नकल उतारना अनुकरण है"। "Behavior that is modeled upon or copies of this imitation"

इस प्रकार स्पष्ट है कि किसी के व्यवहार को स्वेच्छा अपना लेना या वैसा ही व्यवहार करने लगना अनुकरण है। बच्चे अपने जीवन में अनुकरण द्वारा ही विभिन्न व्यवहारों को सीखते हैं। किशोर-किशोरियाँ तथा वयस्क लोगों में भी अनुकरण देखने को मिलता है। पहले इसे एक तरह की मूलप्रवृत्ति माना जाता है। आजकल इसे अर्जित व्यवहार माना जाता है। इसके बारे में निष्कर्ष निम्नवत है-

i. अनुकरण एक क्रियात्मक प्रक्रिया है।
ii. अनुकरण में किसी अन्य व्यक्ति के कार्य या व्यवहार की पुनरावृत्ति होती है।
iii. अनुकरण यंत्रवत होता है।
iv. अनुकरण व्यक्ति द्वारा प्रयास करके किया जाता है।
v. अनुकरण अधिगम की सरल तकनीक है।
vi. अनुकरण में तदात्मीकरण भी निहित हो सकता है।
vii. व्यवहार या शारीरिक क्रिया ऐसी हो जिसे अनुकरण करने वाला व्यक्ति महत्व देता हो।
viii. अनुकरण चेतन तथा अचेतन दो प्रकार से किया जाता है। जब अनुकरण जानबूझकर या चेतन ढंग से किया जाता है तो उसे नकल (Copy) कहते हैं। अनजाने में या अचेतन रूप से किया जाने वाला अनुकरण समेल निर्भरता (Matched dependent) कहलाता है।

अनुकरण के प्रकार-

i. **सहानुभूति पूर्ण अनुकरण (Sympathetic imitation)-** किसी के दुख, पीड़ा या कष्ट को देखकर व्यक्ति वैसी ही अनुभूति करके उसके जैसा व्यवहार करता है। जैसे किसी को रोता देखकर स्वयं भी रोने लगना।
ii. **विचार चालक अनुकरण (Ideo-motor imitation)-** किसी के व्यहार या कार्य को देखकर कोई अन्य व्यक्ति आन्तरिक रूप से प्रेरित होकर स्वतः वैसा व्यवहार करने लगता है। जैसे- गीत या नृत्य से प्रभावित होकर सिर हिलाना या पैर का थिरकना। इसे स्वाभाविक (Spontaneous) अनुकरण भी कहते हैं।
iii. **आरम्भिक अनुकरण (Rudimentary Imitation)-** ऐसे अनुकरण छोटे बच्चों में प्रायः दिखाई पड़ते हैं। जैसे-किसी के हँसने पर बच्चों का हँसना, जीभ निकालने पर जीभ निकालना या मुँह चिढ़ाने पर मुँह चिढ़ाना आदि इसके उदाहरण हैं। इसे निरर्थक अनुकरण भी कहते हैं।
iv. **तार्किक अनुकरण (RationalImitation) -** इसमें अनुकरणकर्ता किसी व्यक्ति के व्यवहार का सोच समझ कर पुनरोत्पादन करता है। जैसे-किसी प्रशिक्षु द्वारा अपने प्रशिक्षक के व्यवहार का अनुकरण करना।

v. **ऐच्छिक अनुकरण (VoluntaryImitation)-** यदि कोई बालक या व्यक्ति किसी अन्य का अनुकरण अपनी इच्छा से करता है तो उसे ऐच्छिक या उद्देश्यपूर्ण (Deliberate) अनुकरण कहते हैं। इसे चेतन अनुकरण भी कहते हैं।

vi. **अभिनयात्मक अनुकरण (Dramatic Imitation)-** किसी के व्यवहार का अभिनय करना अभिनयात्मक अनुकरण कहा Deliberateहै। जैसे-बच्चों द्वारा पिता का चश्मा पहनना या राजा का व्यवहार आदि करना।

अनुकरण के नियम (Laws of Imitation)

टार्डे (1903) ने अनुकरण संम्बन्धी तीन नियमों का प्रतिपादन किया है:

i. अनुकरण ऊपर से नीचे की ओर चलता हैः- समाज के धनी या प्रतिष्ठित वर्ग या वरिष्ठों द्वारा जो कार्य या व्यवहार पहले किया जाता है, उसका अनुकरण बाद में निचले स्तर के लोगों या बच्चों द्वारा किया जाने लगता है।

ii. अनुकरण अन्दर से बाहर की ओर चलता हैः- अनुकरण पहले अपने परिवार तथा पड़ोस के लोगों का किया जाता है। इसके बाद ही बाहर के समूहों के लोगों का अनुकरण किया जाता है।

iii. अनुकरण ज्यामितीय क्रम में चलता है:-इसका आशय यह है कि अनुकरण की गति काफी तीव्र होती है। अर्थात् अनुकरण की गति प्रारम्भ में जितनी होती है बाद में उससे ज्यादा और आगे चलकर और भी आधिक हो जाती है।

अनुकरण के सिद्धान्त (Theories of Imitation)

i. **थार्नडाइक का सिद्धान्त (Thorndike's Theory) -** व्यक्ति प्रायः उन्हीं कार्यों या व्यवहारों का अनुकरण करना चाहता है जिनके द्वारा उसकी किसी आवश्यकता की पूर्ति होती है। अनुमोदित व्यवहारों का अनुकरण अधिक एवं तिरस्कृत व्यवहारों का अनुकरण कम होता है। प्रयत्न एवं त्रुटि (Trial & Error) सिद्धान्त के आधार पर करते हैं। अतः यदि बालक या व्यक्ति सीखने के लिए तत्पर एवं समुचित अभ्यास करता है तो अनुकरण सरल हो जाता है। यदि अनुकरण प्रभाव सुखद होगा तो उस व्यवहार की पुनरावृत्ति होगी। यदि परिणाम कष्टदायक होगा तो उसका दमन कर दिया जायेगा।

ii. **मिलर एवं डोलार्ड का सिद्धान्त (Miller and Dollard's theory)-** मिलर एवं डोलार्ड (1941) के अनुसार अनुकरणमूलक व्यवहार पर पुरस्कार तथा दण्ड का प्रभाव पड़ता है। पुरस्कृत व्यवहार का अनुकरण शीघ्रता से किया जाता है। दण्डित व्यवहार का अनुकरण नहीं किया जाता है। बच्चों द्वारा किए गये अनुकरण व्यवहार पुरस्कृत करने पर अनुकरण तीव्र गति से होने लगता है।

iii. **बन्दूरा का सिद्धान्त (Bandura's Theory)-** बन्दूरा (1963, 1966, 1969) के अनुसार बच्चे ऐसे व्यक्तियों या प्रतिमानों (Models) के व्यवहारों का अनुकरण करते हैं जो व्यवहार

करते समय पुरस्कृत किए जाते हैं। जिन व्यवहारों के लिए वे दण्डित किए जाते हैं उन व्यवहारों का बच्चों द्वारा अनुकरण नहीं किया जाता है। बन्दूरा ने प्रयोग द्वारा यह बताया कि आक्रमकता का व्यवहार करने पर प्रतिमान (Model) को पुरस्कृत किया गया तब बच्चों ने भी आक्रामकता का अनुकरण किया। दण्डित करने पर आक्रमकता व्यवहार का अनुकरण नहीं किया गया।

अनुकरण का महत्व

i. **सामाजिक अधिगम एवं समायोजन (Social Learning and Adjustment)-** सामाजिक अधिगम के लिए बच्चे अपने मित्रों तथा वरिष्ठों के कार्यों का अनुकरण करते हैं।

ii. **व्यक्तित्व का विकास (Development of Personality)** -अनुकरण के अध्ययन से व्यक्ति साहस एवं धैर्य की भावना विकसित करता है और सामाजिक मूल्यों एवं आदर्शों को ग्रहण करके व्यक्तित्व को गत्यात्मक संगठन (Dynamic organization) का रूप प्रदान करता है।

iii. **आवश्यकता संतुष्टि (Need satisfaction)** -व्यक्ति अपनी जिन आवश्यकताओं की पूर्ति अपने स्वयं के प्रयासों से नहीं कर पाता है, उनकी अपूर्ति अन्य लोगों के व्यवहारों का अनुकरण करके करता है। अतः व्यक्ति के जीवन में अनुकरण का प्रभाव तथा महत्व का काफी व्यापक है।

iv. **सामाजिक प्रगति (Social Progress)-**बच्चे, किशोर या प्रौढ़ व्यक्ति जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में प्रगति के पथ पर अग्रणी लोगों के कार्यक्रमों का अनुकरण करके स्वयं को भी प्रगति के पथ पर अग्रसर होने के लिए प्रेरणा प्राप्त करते हैं। यह प्रेरणा एक समूह या राष्ट्र दूसरे समूह या राष्ट्र से भी ग्रहण करते हैं।

v. **अनुरूपता (Conformity)-**बालक अपने परिवार समूह या समाज के रीति-रिवाजों, नियमों तथा आदर्शों का अनुकरण करते हैं। इससे उनके व्यवहार में एक-रूपता आती है। सामजिक मानकों (Norms) के प्रति सम्मान बढ़ता है।

1.7.2 सुझाव या संसूचन (Suggestion)

सुझाव एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमें एक व्यक्ति अपना विचार या राय इस उम्मीद से दूसरे व्यक्ति के सामने रखता है कि दूसरा व्यक्ति उसे स्वीकार कर लें। इससे स्पष्ट है कि सुझाव में दो पक्ष होते हैं। एक सुझाव देने वाला एक दूसरा स्वीकार करने वाला। सुझाव में दोनों पक्ष क्रियाशील होते हैं।

उदाहरण:- माता-पिता अपने बच्चों को समय पर खाने, पढ़ने, सोने एवं स्कूल जाने का सुझाव देते हैं। शिक्षक अपने छात्रों को गृहकार्य करके लाने भी राय देते हैं। पति अपने पत्नी को सौहार्द्रपूर्ण सम्बन्ध बनाएं रखने का सुझाव देता है।

परिभाषाएँ

"सुझाव, संचार या संप्रेषण की एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके फलस्वरूप एक व्यक्ति द्वारा दी गई राय उपर्युक्त तरकीब के आधार के बिना ही दूसरे के द्वारा विश्वास के साथ स्वीकार की जाती है"। William Mc. Dougall (1909)

"सुझाव शब्दों, चित्रों या ऐसे ही किसी अन्य माध्यम द्वारा किये गये प्रतीक संचार का एक ऐसा स्वरूप है जिसका उद्देश्य प्रतीक को स्वीकार करने के लिए प्रेरित करना होता है"। Kimbal Young (1957)

सुझाव एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके द्वारा किसी व्यक्ति में आलोचना करने की मानसिक क्षमता को कम कर दिया जाता है और व्यक्ति दूसरे स्रोत से मिलने वाली सूचनाओं को बिना संदेह, तर्क तथा आलोचना के ही स्वीकार कर लेता है।''

उपर्युक्त परिभाषा के संयुक्त विश्लेषण करने पर हमें सुझाव प्रक्रिया के सम्बन्ध में निम्नलिखित तथ्य प्राप्त होते हैं-

i. सुझाव के दो महत्वपूर्ण पक्ष होते हैं। एक सुझाव देने वाला दूसरा सुझाव स्वीकार करने वाला।
ii. दोनों ही पक्ष सक्रिय एवं सचेत होते हैं।
iii. सुझाव देने वाला व्यक्ति स्वीकार करने वाले व्यक्ति की तार्किक योग्यता एवं आलोचना करने की क्षमता को कमजोर कर देता है।
iv. सुझाव की प्रक्रिया में स्वीकार करने वाला व्यक्ति बिना तर्क, शंका तथा आलोचना के ही दिए गये विचारों को स्वीकार कर लेता है।
v. सुझाव प्रायः किसी व्यक्ति के कार्य, घटना, तथा विचार से सम्बन्धित होता है।
vi. सुझाव एक संज्ञानात्मक मानसिक प्रक्रिया है।
vii. संसूचन/सुझाव का एक निश्चित उद्देश्य होता है।
viii. संसूचन सुझाव एक निष्क्रिय प्रक्रिया है। क्योंकि तार्किक शक्ति का उपयोग नहीं किया जाता हैं।
ix. संसूचन की सफलता पर व्यक्ति के व्यक्तित्व का प्रभाव पड़ता है ।क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति संसूचनों को समान रूप से स्वीकार नहीं करता है।

सुझाव का वर्गीकरण (Classification of suggestion)-

सुझाव/संसूचन को निम्नलिखित वर्गों में बाँटा जा सकता हैं-

i. **भावात्मक संसूचन (Ide motor suggestion)**-इसकी उत्पत्ति मानसिक भावनाओं से होती है। व्यक्ति के मन में कोई भाव आते ही यदि क्रिया भी प्रारम्भ हो जाय तो इसे भाव चालक संसूचन कहते हैं। यथा-रेडियो द्वारा संगीत सुनकर सिर को हिलाना भावचालक संसूचन है। यह क्रिया अचेतन स्तर पर भी होती है।
ii. **आत्म संसूचन (Auto Suggestion)**-यदि कोई व्यक्ति आपने आप को स्वयं संसूचन देकर उसके अनुरूप कार्य करने लगता है तो उसे आत्म संसूचन कहते हैं। इसमे संसूचन देने वाला तथा

सूचना ग्रहण करने वाला एक ही व्यक्ति होता है। जैस- किसी छात्र द्वारा स्वयं यह सोचना कि अध्ययन करना आवश्यक है अन्यथा परीक्षा में उत्तीर्ण नहीं हो पाऊँगा।

iii. **प्रतिष्ठा संसूचन (Prestige suggestion)-**यदि कोई बात कहते समय उसके साथ प्रतिष्ठित व्यक्तियों का नाम जोड़ दिया जाय तो उसका प्रभाव बढ़ जाता है जैसे-गांधी जी ने कहा था-गरीबों की सेवा नारायण की सेवा है। शेवर (1977) के अनुसार प्रतिष्ठा संसूचन अनुनयात्मक सम्प्रेषण की वह विधि है जिसमें किसी वस्तु के जाने-माने एवं महत्वपूर्ण व्यक्तियों द्वारा अनुकूल बातें कही जाती हैं। वोट के लिए बड़े नेताओं का नाम लेना, सामानों की बिक्री बढ़ाने के लिए फिल्मी कलाकारों के नाम का प्रयोग करना आदि प्रतिष्ठा संसूचन के उदाहरण हैं।

iv. **समूह संसूचन (Mass Suggestion)-**यदि किसी व्यक्ति को सामूहिक सुझाव दिया जाय तो वह संभवतः शीघ्रता से सुझाव को मान लेगा। ऐसी परिस्थिति में वह समझ सकता है कि जो बात इतने लोग कह रहे हैं वह अवश्य ठीक होगी। प्रतिष्ठा संसूचन की तुलना में समूह संसूचन अधिक प्रभावशाली होता है। यथा-भीड़ एवं आन्दोलन में व्यक्ति अपने विवेक का उपयोग न करके तत्कालीन परिस्थिति के अनुरूप व्यवहार करने लगता है।

v. **विपरीत संसूचन (Contra Suggestion)-**इसमें अभीष्ट व्यवहार या कार्य कराने के लिए सीधा सुझाव न देकर विपरीत ढंग से सुझाव दिया जाता है। यदि कोई बालक दूध पी रहा हो तो यह कहिए कि तुम दूध पियो मत नहीं तो अर्पिता पी जायेगी तो वह बालक तुरन्त दूध पी जायेगा।

vi. प्रत्यक्ष संसूचन (Direct Suggestion)-प्रत्यक्ष संसूचन देते समय अभीष्ट वस्तु के बारे मे संसूचन ग्रहणकर्ता के समक्ष जो भी बात कहनी है वह साथ-साथ कही जाती है। यथा- आप किसी कपड़े की दुकान पर जाइए। व्यापारी आपको नमस्कार करेगा और आपको एक से एक माडल के कपड़े दिखाना शुरू करता है और सभी कपड़ों की जमकर तारीफ भी करता है। यह प्रत्यक्ष संसूचन है।

vii. **अप्रत्यक्ष संसूचन (Indirect Suggestion)-**अप्रत्यक्ष संसूचन देते समय अभीष्ट लक्ष्य को तुरन्त सामने नहीं लाया जाता है बल्कि उसका बिना नाम लिए लंबी चौड़ी भूमिका बनायी जाती है तथा तारीफ की जाती है। यथा-बाजार में डालडा वनस्पति की कमी हो जाने पर जाइए तो दुकानदार यह कहता मिलेगा कि साहब आप बड़ी-बड़ी कम्पनियों का चक्कर छोड़िये। देखिए मेरे पास एक नया माल आया है। मेरा निवेदन है कि एक बार इसे आजमाइए और गारंटी है कि दुबारा इसी की माँग करेंगे। ग्राहक उसकी बात से प्रभावित होकर नये सामान की खरीद कर लेगा।

viii. **सकारात्मक संसूचन (Positive Suggestion)-**यदि सुझाव स्वीकारात्मक भाषा में व्यक्त किए जाते हैं तो उन्हें सकारात्मक संसूचन कहते हैं। यथा- किसी छात्र से यह कहना कि अधिक परिश्रम करो ताकि अच्छे अंक से उत्तीर्ण हो जाओ।

ix. **निषेधात्मक संसूचन (Negative suggestion)-**यदि किसी सुझाव में किसी वस्तु का परित्याग करने या किसी कार्य को न करने का निर्देश दिया जाता है। तो उसे निषेधात्मक संसूचन

कहते हैं। यथा-सिगरेट मत पिओ। इससे कैन्सर हो सकता है या सिगरेट पीना स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है।

सामाजिक जीवन में सुझाव का महत्व (Role of Suggestion in social Science)

संसूचन के द्वारा व्यक्ति के व्यवहार को उचित दिशा प्रदान की जा सकती है। इसके द्वारा सामाजिक संरचना एवं सामाजिक प्रक्रियाओं को बल प्रदान किया जा सकता है।

i. **सुझाव से सामाजिक एकता होती है-**सामाजिक सुझाव में व्यक्ति अधिकतर व्यक्तियों के व्यवहारों के अनुकूल अपना व्यवहार करता है। इसका परिणाम यह होता है कि जब व्यक्ति अन्य लोगों के करीब आता है तो अपने आप ही एक तरह की सामाजिक एकता या समानता आती है। सामाजिक सुझाव हमें सामाजिक समूह से प्राप्त होते हैं जो व्यक्तियों के व्यवहारों को समाज की विशेष प्रथा, परम्परा, धर्म, आदर्श के अनुरूप बनाता है।

ii. **सामाजीकरण एवं संसूचन (Socialization and Suggestion)-**व्यक्ति के समाजीकरण में संसूचन की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। वास्तव में संसूचन द्वारा छोटे-छोटे बच्चों में वांछित विचारों एवं गुणों का बीजारोपण किया जा सकता है। उनके परिवार में गलत संसूचन या सुझाव प्राप्त होने के कारण बालकों का व्यक्तित्व दोषपूर्ण हो जाता है। उनमें अपराधी प्रवृत्तियां विकसित हो जाती है।

iii. **सामाजिक नियंत्रण एवं परिवर्तन (Social Control and Social Change)-**संसूचन द्वारा व्यक्ति के अवांछित व्यवहार को समाप्त या नियमित किया जा सकता है और सामाजिक परिवर्तन को उचित बल प्रदान किया जा सकता है। यदि संसूचन किसी विश्वसनीय एवं प्रतिष्ठित वयक्ति द्वारा दिया जाय तो सामाजिक नियंत्रण एवं परिवर्तन को और भी सरल बनाया जा सकता है। यही कारण है कि समाज सुधारक बड़े-बड़े साधुसंत, नेतागण आदि अपने सुझाव द्वारा हमेशा लोगों के व्यवहारों को एक खास दिशा में नियमित करते हैं।

iv. **शैक्षिक एवं व्यावसायिक उपयोग (Educational and Vocational Use)-**छोटे बच्चों को समुचित संसूचन प्रदान करके उनमें अध्ययन के प्रति रूचि पैदा की जा सकती है। यदि शैक्षिक वातावरण यथोचित है तो बच्चे उससे प्रभावित होते हैं और उनमें शैक्षिक गुणों का विकास होता है। शिक्षकों द्वारा कही गई बातों का प्रभाव छात्रों पर अधिक पड़ता है। अतः शिक्षकों को उनके लिए क्रोधपूर्ण तथा आक्रोशपूर्ण शब्द जैसे नालायक, मूर्ख, उल्लू आदि का प्रयोग नहीं करना चाहिए। इससे सम्भव है कि बच्चे अपने आप को ऐसा ही समझने लगें।

v. **राष्ट्रीय संकट में उपयोग (Use in National Crisis)-**राष्ट्रीय संकट के समय नागरिको में घबराहट हाने लगती है। संसूचन के द्वारा इनको दूर किया जा सकता है। बच्चों के मनोबल को उठाया जा सकता है।

vi. **सामाजिक प्रगतिएव संसूचन (Social Progress and Suggestion)-**सामाजिक प्रगति को प्रतिष्ठा संसूचन द्वारा और भी अधिक गति प्रदान की जा सकती है। जैसे-नेहरू जी ने आजादी प्राप्त होने पर देश को प्रगति की ओर ले जाने में 'आराम हराम है'का नारा देकर देशवासियों को

राष्ट्र की पुर्नसंरचना एवं प्रगति के लिए प्रेरित किया। जिसके फलस्वरूप भारत ने अनेक क्षेत्रों में उल्लेखनीय प्रगति की।

vii. **वाणिज्य एवं व्यापारिक उपयोग (Commercial & Trade Uses)**-वाणिज्य एवं व्यापार में सफलता बहुत हद तक विज्ञापनों पर निर्भर करती है। विज्ञापनों के सहारे ही बहुत तरह के नये-नये सुझाव आम जनता को दिए जाते हैं। चूंकि इस तरह का सुझाव सीधे न देकर किसी प्रतिष्ठित व्यक्ति या लोकप्रिय अभिनेता या अभिनेत्री द्वारा दिलवाया जाता है। फलतः उसका प्रभाव जनता पर अधिक पड़ता है तथा जनता उसे तत्परता से स्वीकार कर लेती है। जिसका स्पष्ट परिणाम यह होता है कि उस वस्तु की माँग बढ़ जाती है।

1.7.3 सहानुभूति (Sympathy) अर्थ एवं स्वरूप

जब हम दूसरे के दुख से स्वयं दुखी होकर उसके प्रति दया का भाव अभिव्यक्त करते हैं तो इसे साधारणतः सहानुभूति की संज्ञा दी जाती है। व्यापक अर्थ में सहानुभूति से मतलब समान भावना के संचार या संप्रेषण से होता है। यह समान भाव सिर्फ दया या दुख का ही नहीं होता है बल्कि क्रोध, द्वेष, घृणा का भी हो सकता है। उदाहरण के लिए हम अपने मित्र के दुश्मन के प्रति क्रोध, घृणा तथा द्वेष व्यक्त कर मित्र के प्रति सहानुभूति प्रकट कर सकते हैं। इसका मतलब यह हुआ कि सहानुभूति प्रकट करने वाले व्यक्ति में वैसा ही भाव या संवेग होना चाहिए जो उस व्यक्ति में होता है जिसके प्रति सहानुभूति प्रकट की जा रही है।

सहानुभूति का गुण जानवरों में भी अधिक देखने को मिलता है । जैसे- एक बन्दर को संकट मे फंसा देखकर अन्य सारे बन्दर इकट्ठा हो जाते हैं। एक कौवे के बीमार हो जाने पर बहुत सारे कौवे इकट्ठा हो जाते हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि वे सहानुभूति में एकत्र होते हैं।

परिभाषाएं-

"साधारण अर्थों में सहानुभूति एक प्रकार की कोमलता है जो उस व्यक्ति के प्रति होती हैं जिसके साथ सहानुभूति प्रकट की जाती है। दूसरों के दुख में दुखी होना या दूसरे किसी व्यक्ति या प्राणी में एक विशेष भावना या संवेग का देखकर अपने मे भी उसी तरह की भावना या संवेग का अनुभव करना ही सहानुभूति है।'' *William Mc. Dougal 1908*

"दूसरों के भावों एवं संवेगों के स्वाभाविक अभिव्यक्तिपूर्ण चिन्हों को देखकर उसी प्रकार के भावों एवं संवेगों के अनुभव करने की प्रवृत्ति को सहानुभूति कहते हैं"।-जेम्स ड्रेवर, 1983.

"दूसरों के संवेगों की अभिव्यक्ति के प्रति अनुक्रिया करने की क्षमता को सहानुभूति कहा जाता है"। *Evan 1978*

इन परिभाषाओं को विश्लेषण करने पर हमें सहानुभूति के स्वरूप के बारे में निम्नांकित तथ्य प्राप्त होते हैं-

i. सहानुभूति में दो पक्ष होते हैं-एक पक्ष सहानुभूति दिखाने वाला तथा दूसरा पक्ष सहानुभूति प्राप्त करने वाला होता है।

ii. सहानुभूति में व्यक्ति के संवेगों एवं भाव की प्रधानता उसकी क्रियाओं एवं व्यवहारों से अधिक होती है।

iii. सहानुभूति में सहानुभूति प्रकट करने वाले व्यक्ति में ठीक उसी तरह का संवेग या भाव उत्पन्न होता है जिस तरह का भाव या संवेग सहानुभूति प्राप्त करने वाला व्यक्ति दिखलाता है।

सहानुभूति के प्रकार (Types of Sympathy)

i. **सक्रिय सहानुभूति (Active Sympathy)**-यदि किसी की दशा देखकर उसकी सहायता आगे बढ़ कर की जाती है या उसके साथ सहयोग किया जाता है तो उसे सक्रिय सहानुभूति कहते हैं। जैसे-किसी को रोता हुआ देखकर उसे चुप कराना, दुर्घटना में घायल व्यक्ति के कष्टों का अनुभव करते हुए कोई व्यक्ति अस्पताल तक ले जा कर उसकी चिकित्सा में मदद करना, किसी भिखारी की दयनीय दशा को देखकर एवं उसके शारीरिक कष्टों का अनुभव करते हुए उसे खाने के लिए भोजन तथा पहनने के लिए वस्त्र देना।

ii. **निष्क्रिय सहानुभूति (Passive Sympathy)**-यदि किसी के साथ सहानुभूति अनुभव की जाय परन्तु कुछ किया न जाय तो इसे निष्क्रिय सहानुभूति कहते हैं। यह भावना प्रधान होती है। तात्पर्य यह है कि निष्क्रिय सहानुभूति भावना प्रधान, मौखिक तथा क्रिया रहित होती है। जैसे-कोई व्यक्ति भिखारी की दयनीय दशा देखकर कहता है कि उसे ऐसी दशा में कितनी तकलीफ होती होगी, परन्तु उसकी तकलीफ दूर करने का कोई उपाय नहीं करता है।

iii. **व्यक्तिगत सहानुभूति (Personal Sympathy)**-किसी व्यक्ति या प्राणी विशेष को कष्ट में देख कर उसके प्रति सहानुभूति प्रदर्शित की जाती है तो उसे व्यक्तिगत सहानुभूति कहते हैं। जैसे-किसी कराह रहे व्यक्ति के प्रति हमदर्दी प्रकट करना।

iv. **सामूहिक सहानुभूति (Collective Sympathy)**-लोगों में किसी-किसी समूह को कष्ट में देखकर उनके प्रति सहानुभूति की अनुभूति सामूहिक सहानुभूति कही जाती है। जैसे-शरणार्थियों के शिविर को देखकर पीड़ा अनुभव करना।

सहानुभूति का महत्वः-

i. **सामाजिकता (Sociability)**-सहानुभूति की प्रवृत्ति व्यक्ति में सामाजिकता, मिलनसारिता, मैत्रीभाव, सामूहिकता, एकता तथा संगठन की भावना पैदा करती है। (मैंक्डूगल, 1914).

ii. **मानवता (Humanity)**-सहानुभूति की भावना से व्यक्ति में मानवता बढ़ती है और वह दूसरे की सहायता तथा सेवा को महत्व देने लगता है। वह किसी को कष्ट पहुँचाना अनुचित मानने लगता है। उसमें परिवार की भावना बढ़ती है। यही प्रवृत्ति लोगों को गरीब, यतीमों, विकलांगों की सेवा के लिए प्रेरित करती है।

iii. **आक्रामकता में कमी (Reduction in Aggression)**-सहानुभूति की भावना व्यक्ति में हिंसा, आक्रामकता तथा शोषण की प्रवृत्ति को नियंत्रित करती है। सहानुभूतिपूर्ण भावना से प्रभावित व्यक्ति

दूसरों के दुख से उसी तरह दुख अनुभव करता है जैसे कि वह स्वयं के दुख से कष्टित अनुभव करता है।

iv. **भेदभाव में कमी (Reduction in Discrimination)-**सहानुभूति सामाजिक एवं प्रजातीय भेदभाव कम करने में सहायक है। जिनमें यह प्रवृत्ति प्रवल रूप में पाई जाती है वे जाति धर्म या भाषा के आधार पर लोगों में भेदभाव नहीं करते हैं।

1.10 अभ्यास प्रश्न

1. सामाजिक मनोविज्ञान का वैज्ञानिक इतिहास____________से प्रारम्भ होता है।
2. उचित तर्क के अभाव में किसी बात को मान लेना ____________कहा जाता है।
3. सामाजिक परिस्थिति में किए गये मानव व्यवहार को न्यूकाम्ब (1962) ने ________की संज्ञा दी है।
4. अनुकरण____________दोनों प्रकार से किया जाता है।
5. सुझाव के ____________होते हैं।
6. सहानुभूति में व्यक्ति के____________की प्रधानता रहती है।

1.8 सारांश

उन्नीसवीं शताब्दी के तीसरे दशक तक सामाजिक मनोविज्ञान का स्वरूप दार्शनिक था। समाज मनोविज्ञान का वैज्ञानिक इतिहास 1908 से प्रारम्भ होता है। सामाजिक मनोविज्ञान के अन्तर्गत मानव व्यवहार का ही अध्ययन किया जाता है। मानव व्यवहार की व्यवस्था उसके स्वयं के व्यक्तित्व, सामाजिक संबध तथा सांस्कृतिक पृष्ठभूमि पर निर्भर करती है।

अनुकरण सुझाव तथा सहानुभूति नियमों के आधार पर सामाजिक अन्तः क्रिया होती है। सामाजिक व्यवहार इन्हीं अन्तःक्रियाओं का परिणाम होता है।जब कोई बच्चा या व्यक्ति दूसरों के व्यवहार को देख कर वैसा ही व्यवहार करता है तो इस प्रक्रिया को अनुकरण कहते हैं। अनुकरण चेतन भी हो सकता है अचेतन भी हो सकता है। अनुकरण ऊपर से नीचे, अन्दर से बाहर एवं ज्यामितीय क्रम में चलता है। बच्चे या व्यक्ति किसी व्यवहार का अनुकरण "प्रयत्न एवं त्रुटि" (Trial & Error) के आधार पर करते हैं। पुरस्कृत व्यवहार का अनुकरण किया जाता है। दण्डित व्यवहार का अनुकरण नहीं किया जाता है।

संसूचन (सुझाव) एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमें एक व्यक्ति अपना विचार या राय इस उम्मीद से दूसरे व्यक्ति के सामने रखता है कि दूसरा व्यक्ति उसे स्वीकार कर ले। इसकी उत्पत्ति मानसिक भावना से होती है। संसूचन द्वारा व्यक्ति के व्यवहारों को सही दिशा दी जाती है।

सहानुभूति से मतलब समान भावना के संचार या संप्रेषण से होता है। यह समान भाव सिर्फ दया या दुख का ही नहीं हो सकता है बल्कि क्रोध, घृणा, द्वेष का भी हो सकता है। सहानुभूति से सामाजिकता, एकता, मिलनसारिता, मानवता आती है तथा पक्षपात एवं आक्रामकता में कमी आती है।

1.9 शब्दावली

1. **संसूचन-** सुझाव
2. **अनुकरण-** नकल
3. **आत्म -** स्वयं
4. **अभिनात्मक-** नाटकीय
5. **समेल निर्भरता-** अनजाने में किया गया अनुकरण
6. **नकल -** जानते हुए किया गया अनुकरण
7. **अर्जन -** प्राप्ति
8. **सामाजिक परीस्थिति -** ऐसी परिस्थिति जिसमें दो से अधिक व्यक्तियों या समूहों में अन्तःक्रिया होती है।

1.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. वर्ष 1908
2. संसूचन या सुझाव
3. अन्तःक्रिया
4. चेतन तथा अचेतन
5. दो पक्ष
6. संवेग एवं भाव

1.11 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. सिंह आर0एन0 (2007-208) आधुनिक सामाजिक मनोविज्ञान, अग्रवाल पब्लिकेशन आगरा-7.
2. सिंह आर0एन0-(2005) आधुनिक सामाजिक मनोविज्ञान, साहित्य प्रकाशन, आगरा।
3. सिंह ए0के0 (2010)समाज मनोविज्ञान की रूपरेखा, मोती लाल बनारसीदास दिल्ली-1.
4. सिंह0ए0के0(2002) उच्चतर सामान्य मनोविज्ञान, मोती लाल बनारसीदास दिल्ली-1.
5. श्रीवास्तव, डी0एन0 एवं अन्य (2000-2001) आधुनिक समाज मनोविज्ञान एच0पी0 भार्गव बुक हाउस, आगरा।
6. श्रीवास्तव डी0एन0 (दसवाँ संस्करण) सामाजिक मनोविज्ञान, साहित्य प्रकाशन आगरा।

7. त्रिपाठी आर0बी0 एवं सिंह, आर0एन0 (2002) व्यक्तित्व का मनोविज्ञान, गंगासरन एवं एण्ड ग्रैन्ड सन्स, बांसफाटक वाराणसी।
8. अग्रवाल विमल (2010-11): मनोविज्ञान, एस0 वी0 पी0 डी0 पब्लिकेशन आगरा।
9. राबर्ट ए0 बैरन एण्ड डोन वाइरने (9वाँ संस्करण)सोसल साइकॉलोजी, पीयर्सन एजूकेशन (सिंगापुर) प्रा0लि0 इण्डिया ब्रांच दिल्ली।

1.12 निबन्धात्मक प्रश्न

1. अनुकरण का क्या आशय है ? इसके प्रकार तथा महत्व पर प्रकाश डालिए।
2. संसूचन (सुझाव) से क्या तात्पर्य है ? इसके प्रकार तथा महत्व का वर्णन कीजिए।
3. सहानुभूति से आप क्या समझते हैं ? इसके प्रकार तथा सामाजिक जीवन के महत्व पर प्रकाश डालिए।
4. सामाजिक मनोविज्ञान के स्वरूप एवं कार्यक्षेत्र का वर्णन कीजिए।
5. सामाजिक मनोविज्ञान को परिभाषित करते हुए उसकी उपयोगिता पर प्रकाश डालिए।
6. टिप्पणियां लिखिए:
   i. अनुकरण के सिद्धान्त
   ii. सामाजिक मनोविज्ञान की उपयोगिता
   iii. सुझाव वर्गीकरण

इकाई 2 -प्रयुक्त विज्ञान के रूप में सामाजिक मनोविज्ञान

इकाई संरचना-

2.1 प्रस्तावना
2.2 उद्देश्य
2.3 सामाजिक मनोविज्ञान की सैद्धान्तिक नींव
 2.3.1 अभिप्रेरणात्मक सिद्धान्त
 2.3.2 अधिगम सिद्धान्त
 2.3.3 संज्ञानात्मक सिद्धान्त
2.4 सारांश
2.5 शब्दावली
2.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
2.7 संदर्भग्रन्थ सूची
2.8 निबन्धात्मक प्रश्न

2.1 प्रस्तावना

समाज मनोविज्ञान व्यक्ति के व्यवहार तथा अनुभूतियों का सामाजिक परिस्थिति में अध्ययन करने का विज्ञान है। इसकी प्रवृत्ति वैज्ञानिक है। समाज मनोविज्ञान प्रयुक्त विज्ञान के रूप में शोध/अध्ययन एवं अभ्यास करता है। शोधों एवं अध्ययनों का उद्देश्य मानव सामाजिक व्यवहारों को समझना, समस्याओं का पता लगाना तथा इनका समुचित सुझाव ढूँढ़ना है। गरीबी, जनसंख्या वृद्धि, अन्तःसमूह संघर्ष, अपराध, अर्थ का असमान वितरण, पूर्वाग्रह तथा विभेदन, संबंध विच्छेद, आक्रामकता, वेश्यावृत्ति आदि प्रमुख समस्यायें हैं जिनका मनोवैज्ञानिक अध्ययन/शोध कर समाधान किया जा सकता है। इस प्रकार के अध्ययन प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से सामाजिक मनोविज्ञान के सिद्वान्तों से संबंधित होते हैं। इससे सामान्य नियम बनाने, किसी घटना की भविष्यवाणी करने तथा उसे नियंत्रित करने में सहायता मिलती है। अभिप्रेरणा सिद्धान्त, अधिगम सिद्धान्त एवं संज्ञानात्मक सिद्धान्त बहुत ही उपयोगी सिद्धान्त हैं। अभिप्रेरणा सिद्धान्त मानव व्यवहार को सक्रिय करता है, निर्देशित करता है तथा किसी लक्ष्य की ओर बनाए रखता है। सामाजिक व्यवहार सीखे हुए व्यवहार होते हैं। संज्ञानात्मक सिद्धान्त की मान्यता यह है कि व्यक्ति के सामाजिक व्यवहार वातावरण के संज्ञान के साथ -साथ आन्तरिक मानसिक प्रक्रियाओं पर भी निर्भर करते हैं। इस प्रकार निर्धारित पाठ्यक्रम के अनुसार सामाजिक मनोविज्ञान के वैज्ञानिक स्वरूप,

प्रयुक्त मनोवैज्ञानिक स्वरूप एवं कतिपय सिद्धान्तों की व्याख्या विस्तृत रूप से की गई है। आशा है प्रस्तुत पाठ्य सामग्री स्व अध्ययन के लिए काफी उपयोगी होगी।

2.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के पश्चातआप-

1. समाज मनोविज्ञान की प्रयुक्त वैज्ञानिक स्वरूप को समझ सकें।
2. समाज मनोविज्ञान की सैद्धान्तिक नींव/आकार को जान सकें।
3. अभिप्रेणात्मक सिद्धान्तों के विषय में अवगत हो सकें।
4. अधिगम सिद्धान्त एवं संज्ञानात्मक सिद्धान्त की भूमिका पर प्रकाश डाल सकें।
5. मानव व्यवहार को उचित दिशा प्रदान करने के लिए चर्चित विषय वस्तु एवं नियमों का समुचित उपयोग कर सकें।

समाज मनोविज्ञान की वैज्ञानिक प्रकृति

"समाज मनोविज्ञान व्यक्ति के व्यवहार तथा अनुभूतियों का सामाजिक परिस्थिति में अध्ययन करने का विज्ञान है"।सामाजिक मनोविज्ञान की इस सामान्य परिभाषा का विश्लेषण करने पर ज्ञात होता है कि समाज मनोविज्ञान की प्रकृति वैज्ञानिक है। सामाजिक मनोविज्ञान की समस्याओं के अध्ययन में वैज्ञानिक पद्धतियों का ही उपयोग किया जाता है, विशेषकर आज प्रयोगात्मक विधि को विशेष महत्व दिया जा रहा है। वैज्ञानिक पद्धति से प्राप्त परिणाम भी वैज्ञानिक होते हैं। सामाजिक मनोविज्ञान की अधिकांश समस्याओं के अध्ययन में वैज्ञानिक अध्ययन की तरह प्रमाणिकता, वस्तुनिष्ठता, भविष्यवाणी की योग्यता, सार्वभौमिकता जैसे गुणों के साथ-साथ अध्ययनकर्ता का दृष्टिकोण भी वैज्ञानिक होता है।

सामाजिक मनोविज्ञान का "प्रयुक्त वैज्ञानिक" स्वरूप

समाज मनोविज्ञान, मनोविज्ञान की एक प्रमुख 'प्रयुक्त शाखा' है। इसे प्रयुक्त समाज मनोविज्ञान भी कहा जा सकता है। समाज मनोविज्ञान अथवा प्रयुक्त समाज मनोविज्ञान का स्वरूप ''प्रयुक्त विज्ञान'' का है। समाज मनोविज्ञान, प्रयुक्त विज्ञान के रूप में वास्तविक परिस्थिति में सामाजिक मनोवैज्ञानिक शोध एवं अध्ययन/अभ्यास करता है। इन शोधों/अभ्यासों का उद्देश्य मानव सामाजिक व्यवहारों को समझना, समस्याओं का पता लगाना तथा इन समस्याओं का समुचित समाधान, समस्याओं का पता लगाना तथा इन समस्याओं का समुचित समाधान प्रदान करता हैं। गरीबी, जनसंख्या वृद्धि, अन्तःसमूह संघर्ष, अपराध, अर्थ का असमान वितरण, पूर्वाग्रह तथा विभेदन, संबध विच्छेद आक्रामकता, वेश्यावृत्ति आदि प्रमुख सामाजिक समस्यायें है। इस प्रकार सामाजिक मनोविज्ञान के स्वरूप एवं कार्यों को निम्नवत व्यक्त कर सकते हैं।

स्वरूप ...... प्रयुक्त विज्ञान

कार्य परिस्थिति ...... वास्तविक परिस्थिति में

कार्य......

i. सामाजिक मनोवैज्ञानिक शोध, अध्ययन एवं अभ्यास करना।
ii. अध्ययनों से समस्याओं की पहचान करना।

उद्देश्य .... पहचान की गई समस्याओं का समाधान प्रस्तुत करना।

समस्यायें .... सामाजिक समस्यायें जैसे- गरीबी, जनसंख्या वृद्धि, अपराध, अन्तःसमूह संघर्ष, अर्थ का असमान वितरण से उत्पन्न समस्या, पूर्वाग्रह एवं विभेदन, संबध विच्छेद, आक्रामकता, वेश्यावृत्ति आदि।

प्रयुक्त समाज मनोविज्ञान के मुख्य दो मूलाधार हैं-

i. सभी मानवीय समस्याओं में सामाजिक अन्तःक्रिया के तत्व तथा
ii. समाज में मानवीय संबंधों को उन्नत करने के लिए धीरे-धीरे जागरूकता में वृद्धि।

दोनों ही मूलाधारों के सन्दर्भ में समाज मनोविज्ञान एक प्रयुक्त विज्ञान के रूप में विकसित हो रहा है। सामाजिक समस्याओं को समझने तथा उसका समुचित समाधान ढूँढ़ने में सामाजिक मनोविज्ञान प्रयत्नशील है। इस प्रयत्न में समाज मनोवैज्ञानिक मानव मूल्यों पर अधिक बल दे रहे हैं। सामाजिक मनोवैज्ञानिकों में कुर्ट्ज (Kurtz, 1968, 71), जानसन (Johnson, 1973) केलमन (Kelman, 1969) तथा स्मिथ (Smith, 1974) आदि प्रधान हैं। इन लोगों ने एक मत होकर इस तथ्य पर बल डाला है कि समाज मनोविज्ञान का दृष्टिकोण मानवीय एवं वैज्ञानिक दोनों ही होने चाहिए ताकि समाज मनोवैज्ञानिक उपलब्ध विवेकपूर्ण विधियों का प्रयोग कर सामाजिक समस्याओं का समाधान करने में पूर्णतः सफल हो सकें।

समाज मनोविज्ञान को एक प्रयुक्त विज्ञान के रूप मे पूर्ण सफलता पाने के लिए उसके सिद्धान्त, शोध एवं अभ्यास पहलू एक दूसरे को पुनर्बलित करते हैं और समाज मनोवैज्ञानिकों के हाथ मजबूत करते हैं। इसके लिए समाज मनोवैज्ञानिकों को इन तीनों पहियों को सही पथ पर रखना होगा। इस प्रकार समाज मनोविज्ञान प्रयुक्त विज्ञान के रूप मे काफी महत्वपूर्ण सिद्ध हुआ है।

2.3 सामाजिक मनोविज्ञान की सैद्धान्तिक नींव

सिद्धान्त का उद्देश्य घटनाओं के घटित होने की और भविष्य में घटनाओं के घटित होने की व्यवस्था करना है। (मैथसन एवं उनके साथी, 1970)। सिद्धान्त तथ्यों के संबंध को स्पष्ट करता है और उनमें व्याप्त संबंधों को व्यस्थित तथा सार्थक रूप में प्रस्तुत करता है। गुड और हाट (1952), करलिंगर (1986) के अनुसार-''परस्पर संबंधित प्रत्ययों, परिभाषाओं और प्रस्थापनों (Proposition) का व्यवस्थित वह दृष्टिकोण है जिससे घटनाओं की क्रमबद्ध व्यवस्था इस आशय से की जा सके कि उसमें व्याप्त चरों के

संबंध स्पष्ट हो सकें उनकी व्यवस्था की जा सके और घटनाओं के घटित होने की भविष्यवाणी की जा सके।

सामाजिक मनोविज्ञान में सामाजिक मनोविज्ञान से संबंधित अनेक प्रकार के अनुसंधान किए जाते हैं। अनुसंधान/अध्ययन समस्याओं के समाधान के लिए किए जाते हैं। इस प्रकार के अनुसंधान प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से सामाजिक मनोविज्ञान के सिद्धान्तों से संबंधित होते हैं। कोई भी विज्ञान घटनाओं को समझने, स्पष्ट करने और व्यवस्था करने का प्रयास करता है। इससे घटना के विषय में विस्तृत जानकारी प्राप्त होती है। घटना से सम्बन्धित चरों की सूक्ष्म जानकारी प्राप्त करने में मदद मिलती है। इन सब के आधार पर घटना के सम्बन्ध में सामान्य नियम बनाये जाते हैं तथा घटना की भविष्यवाणी की जाती है। घटना को नियंत्रित किया जा सकता है। इन सामान्य नियमों को अन्तःसंबंधित करने, क्रमबद्ध करने एवं तर्क संगत करने से जो व्यवस्थित रूप प्राप्त होता है, उसे सिद्धान्त कहते हैं। एक सिद्धान्त का उद्देश्य घटनाओं के मध्य व्याप्त संबंध को इस उद्देश्य से स्पष्ट किया जाता है कि जिससे उसके घटित होने के आधार की व्याख्या की जा सके और उसके संबंध में भविष्यवाणी की जा सके।

सिद्धान्त के तत्व या विशेषतायें-

i. सिद्धान्त अन्तःसंबंधित प्रत्ययों और तर्क वाक्यों का एक सेट है।
ii. एक सिद्धान्त से यह स्पष्ट होता है कि घटना से संबंधित चरों के क्या-क्या प्रभाव पड़ते हैं अथवा क्या-क्या घटनाएं घटित होती हैं।
iii. एक सिद्धान्त घटना से संबंधित चरों के पारस्परिक संबंधों को स्पष्ट करता है।
iv. एक सिद्धान्त घटना से संबंधित चरों की व्यवस्थित व्यवस्था प्रस्तुत करता है।
v. एक सिद्धान्त द्वारा स्पष्ट होता है कि घटना के घटित होने को कैसे नियंत्रित किया जा सकता है।
vi. एक सिद्धान्त के आधार पर घटना के संबंध में विश्वसनीय भविष्यवाणी भी की जाती है।
vii. एक सिद्धान्त में क्रमबद्धता और तार्किकता पर्याप्त मात्रा में पाये जाते हैं।

सामाजिक मनोविज्ञान में सामाजिक व्यवहार की व्यवस्था के लिए अनेक प्रकार के सिद्धान्त हैं। इनमें से कुछ सिद्धान्त अधिक प्रचलित और उपयोगी हैं। उपर्युक्त तथ्यों से स्पष्ट है कि किसी सामाजिक शोध/अध्ययन के लिए सिद्धान्त सामाजिक मनोविज्ञान की नींव है।

इन सिद्धान्तों मे कोई भी सिद्धान्त अपने आप में पूर्ण नहीं है। सामाजिक मनोविज्ञान के यह सभी सिद्धान्त अनेक उपागमों (approaches) से संबंधित हैं।

2.3.1 अभिप्रेरणात्मक सिद्धान्त (Motivational Theories)

"मनोविज्ञान में हम लोग अभिप्रेरणा को एक काल्पनिक आन्तरिक प्रक्रिया के रूप में परिभाषित करते हैं जो व्यवहार करने के लिए शक्ति प्रदान करता है तथा एक खास उद्देश्य की ओर व्यवहार को ले जाता है" - (Baron, Byrne & Kantowitz,1980)।

"अभिप्रेरणा से तात्पर्य एक प्रेरक तथा कर्षण बल से होता है जो खास लक्ष्य की ओर व्यवहार को निरन्तर ले जाता है"। -(Margan, King, weisz & schopler, 1986)

"अभिप्रेरणा अवस्थाओं का एक ऐसा समुच्चय है जो व्यवहार को सक्रिय करता है, निर्देशित करता है तथा किसी लक्ष्य की ओर उसे बनाए रखता है"। (Witting & William III, 1984)

उपर्युक्त विचारों का विश्लेषण करने पर हम अभिप्रेरणा को संक्षिप्त रूप से लिम्नलिखित प्रकार वर्णन कर सकते हैं-

InternalState & Activities & Fixed Goal & Motivated Behavior

आन्तरिक अवस्था- क्रियाएं- निश्चित लक्ष्य- अभिप्रेरित व्यवहार

अभिप्रेरित व्यवहार उत्पन्न होने के लिए उद्देश्य की प्राप्ति तक जारी रहता है।

उदाहरणः-मान लीजिए कि आपको भूख लगी है। किसी होटल में जाते हैं। भोजन कर भूख मिटाते हैं। इसकी व्यवस्था निम्नवत है-

आन्तरिक व्यवस्था	**क्रियाएं**	**निश्चित लक्ष्य**	**अभिप्रेरित व्यवहार**
Need	Drive	Incentive	Motivational Behavior
भूख	अंतर्नोद होटल ढूंढना भोजन के बारे में पूछताछ करना	भोजन की प्राप्ति	क्रियाशीलता की अवस्था तब तक पाई जाती है जब तक भोजन मिल नहीं जाता है।

यह मनोवैज्ञानिकों का आवश्यकता, अन्तर्नाद, प्रोत्साहन सूत्र रहा है। मनोवैज्ञानिकों ने अभिप्रेरकों की व्यांख्या करने के लिये कई सिद्वान्तों का प्रतिपादन किया है। प्रमुख सिद्वान्तों का वर्णन निम्नवत है-

- मूल प्रवृत्ति सिद्वान्त (Instinct theories)
- प्रणोद सिद्वान्त (Drive theories)
- प्रोत्साहन सिद्वान्त (Incentive theories)
- विरोधी प्रक्रिया सिद्वान्त (Opponent process theories)
- आदर्श स्तर सिद्वान्त (Optimal-level theories)
- आवश्यकता-पदानुक्रम सिद्वान्त (Need hierarchies theories)

1. **मूल प्रवृत्ति सिद्वान्त (Instinct Theories)-** इसका प्रादुर्भाव 20वीं शताब्दी के प्रारंभिक वर्षों में हुआ है। मूलप्रवृत्ति से तात्पर्य प्राणी को उत्तेजित करने पर एक खास ढंग से अनुक्रिया करने की जन्मजात प्रवृत्ति से होता है। 1980 में मशहूर मनोवैज्ञानिक विलियम जेम्स (William James) ने यह मत जाहिर किया था कि मनुष्य अपने व्यवहार के नियंत्रण एवं निर्देशन में पशुओं की तुलना में मूल प्रवृत्तियों का अधिक सहारा लेता है। विलियम मैकडूगल (1988) ने इस सिद्वान्त के अन्तर्गत मूलप्रवृत्ति को ऐसी जन्मजात प्रवृत्ति के रूप में परिभाषित किया जिसमें तीन तत्व प्रधान होते हैं-सामान्य उत्तेजन पहलू, क्रिया पहलू ,तथा लक्ष्य निर्देशन पहलू। परन्तु उन्होंने यह भी स्वीकार किया कि मानव स्वभाव मूलतः अनैतिक (Immoral) एवं अहंकारी (Egoistic) होता है। अतः समाज द्वारा उसे नैतिकता का पाठ पढ़ाकर सामाजिक नियंत्रण में लाया जा सकता है।

   सिगमंड फ्रायड के अनुसार श्रोत (Resources), उद्देश्य (Aims) वस्तु (Object) तथा प्रेरक शक्ति ये चार मूल प्रवृत्ति की प्रमुख विशेषताएं होती हैं। पूरे जीवन काल में मूलप्रवृत्ति का स्रोत शारीरिक आवश्यकताएं, उसका उद्देश्य शारीरिक आवश्यकताओं की आपूर्ति होता है या जिससे मूलप्रवृत्ति की संतुष्टि होती है। जैसे-मूलप्रवृत्ति भूख के लिये भोजन वस्तु (Object) है। प्रेरक शक्ति (Impetus) का अर्थ मूलप्रवृत्ति की शक्ति या बल से होता है। फ्रायड ने दो प्रकार की मूलप्रवृत्तियां बतायी हैं-

   a. जीवन मूल प्रवृत्ति इससे संरचनात्मक कार्यों के करने की प्रेरणा मिलती है। फ्रायड ने यौन मूलप्रवृत्ति को जीवन मूलप्रवृत्ति का सबसे उत्तम उदाहरण बताया हैं।
   b. मृत्यु मूल प्रवृत्तियह व्यक्ति को सभी तरह के विनाशात्मक एवं ध्वंसात्मक व्यवहार को करने की प्रेरणा देता है। आत्महत्या, दूसरों के प्रति आक्रामक व्यवहार, दूसरों को जान से मार देना जैसे व्यवहार की प्रेरणाशक्ति यही मृत्यु मूल प्रवृत्ति होती है।

      यह दोनों मूलप्रवृत्तियां एक साथ मिलकर व्यक्ति के व्यवहार को अभिप्रेरित कर सकती हैं या एक दूसरे को तटस्थ कर सकती हैं या वे एक दूसरे का विरोध कर सकती हैं या कभी-कभी मृत्यु मूलप्रवृत्ति जीवन मूलप्रवृत्ति से अधिक ऊपर उठकर भी व्यक्ति के व्यवहार को अभिप्रेरित करने लगती हैं। जैसे- भोजन करने के व्यवहार में दोनों मूलप्रवृत्तियाँ एक दूसरे के साथ मिलकर कार्य करती हैं। भोजन करने में व्यक्ति का अस्तित्व बना रहता है। जीवन मूलप्रवृत्ति तथा भोजन करने में व्यक्ति भोजन वस्तु को मुँह में रखकर दांत से काटता है, फिर चबाता है तथा निगलता है (मृत्यु मूलप्रवृत्ति)। फ्रायड का यह भी मत था कि अधिकतर मूलप्रवृत्तियाँ अचेतन स्तर पर कार्य करती हैं और व्यक्ति के चेतन विचार एवं व्यवहार को अभिप्रेरित करती है तथा उसे प्रभावित करती हैं।

      पशु एवं अमानव (Non Humans) संबद्ध व्यवहार इसलिए कर पाते हैं क्योंकि इनमें इन व्यवहारों को करने में एक विशेष मूलप्रवृत्ति पायी जाती है। मधुमक्खियों की भोजन तलाश,

चिड़ियों का घोंसला बनाना, सालमोन मछली द्वारा अपने अस्तित्व को बचाने में किया गया विशेष व्यवहार इसके उदाहरण हैं।

आलोचनाएं

i. रूथ वेनडिक्ट (Ruth Bendict, 1959) तथा मार्गरेट मीड (1939) ने बताया कि एक संस्कृति से दूसरे संस्कृति में व्यक्ति के व्यवहारों एवं मूलप्रवृत्तियों में काफी भिन्नता पायी जाती है। जिससे मूलप्रवृत्तियों के स्वरूप को जन्मजात तथा सार्वभौमिक कहना उचित नहीं है।

ii. बर्नार्ड (Bernard1924) द्वारा किए गये अध्ययनों के आधार पर करीब 10000 मानव मूल प्रवृत्तियों का पता चला है, जिनसे व्यवहार प्रेरित पाये गये हैं। बाद में किए गये अध्ययनों से पता चला है कि मूलप्रवृत्तियाँ सचमुच में व्यवहार की व्याख्या नहीं करती हैं। बाल्कि वे अस्पष्ट क्रिया पैटर्न (Unexplained action patterns) के लिए मात्र एक नया नाम देती हैं।

iii. अधिगम मनोवैज्ञानिकों ने यह दिखलाया है कि प्रत्येक व्यवहार अर्जित होता है न कि जन्मजात। इस प्रेक्षण से मूलप्रवृत्ति सिद्वान्त पर पानी फिर जाता है।

इन आलोचनाओं के कारण अभिप्रेरणा का मूल प्रवृत्ति सिद्वान्त 1930 तथा 1940 वाले दशक में अन्य सिद्वान्त जिसे प्रणोद सिद्वान्त कहा जाता है प्रतिस्थापित हो गया है।

2. **प्रणोद सिद्वान्त (Drive Theories) -**इस सिद्वान्त के अनुसार, अभिप्रेरणा का स्रोत पशु या व्यक्ति में पायी जाने वाली एक अवस्था है। इस अवस्था को प्रणोद (Drive) कहते हैं। प्राणी में प्रणोद की उत्पत्ति उसकी शारीरिक आवश्यकता (Bodily need) या फिर वाह्वय उद्दीपक (External Stimuli) से उत्पन्न होता है। प्रणोद की दशा में व्यक्ति काफी क्रियाशील (Active) हो जाता है। उसका व्यवहार उद्देश्यपूर्ण (Goal directed) हो जाता है। वह एक निश्चित लक्ष्य के लिए अग्रसर होने लगता है। लक्ष्य प्राप्त हो जाने पर प्रणोद की तीव्रता कम हो जाती है। तनाव करीब करीब कम हो जाता है। कुछ समय बाद प्रणोद की स्थिति पुनः उत्पन्न होती है। फलतः उसका व्यवहार पुनः लक्ष्य की ओर अग्रसर होने लगता है।

   इस प्रकार अभिप्रेरक की व्याख्या निम्नलिखित चार क्रमों में होती है-

   i. प्रणोद की अवस्था होती है, जो शारिरिक आवश्यकता (Bodily Needs) या वाह्वय उद्दीपक (External Stimuli) से उत्पन्न होती है।
   ii. प्रणोद अवस्था से व्यक्ति का व्यवहार लक्ष्य की ओर निर्देशित (Directed) होता है।
   iii. लक्ष्य निर्देशित व्यवहार के फलस्वरूप (Goal Directed behavior) के परिणाम स्वरूप व्यक्ति को उपयुक्त लक्ष्य की प्राप्ति होती है।
   iv. उपयुक्त लक्ष्य की प्राप्ति से व्यक्ति में प्रणोद की कमी तथा उसे संतुष्टि होती है। कुछ समय के बाद प्राणी में फिर से पहली अवस्था उत्पन्न होती है और कभी तीनों अवस्थाओं की पुनरावृत्ति होती है।

आलोचना

i. इस सिद्वान्त द्वारा सिर्फ जैविक अभिप्रेरकों (Biological Motives) जैसे - भूख, प्यास, काम आदि कि व्यवस्था वैज्ञानिक ढंग से हो पाती है। परन्तु अर्जित अभिप्रेरकों की व्याख्या ठीक ढंग से नहीं हो पाती है।

ii. मात्र प्रणोद तथा उसकी कमी (Reduction) से भी अभिप्रेरक की पूर्ण व्यवस्था नही हो पाती है, क्योंकि प्रणोद अपने आप में अभिप्रेरित व्यवहार पैदा तब तक नहीं करता है जब तक व्यक्ति के सामने उस प्रणोद को कम करने के लिए उचित प्रोत्साहन (Incentive) भी मौजूद न हो।

3. **प्रोत्साहन सिद्वान्त (Incentive theories) या प्रत्याशा सिद्वान्त (Expectancy theories)** - इस सिद्वान्त के अनुसार- प्रणोद महत्वपूर्ण नहीं होता है। बल्कि लक्ष्य या प्रोत्साहन महत्वपूर्ण होता है। इसमें व्यक्ति का व्यवहार इस प्रत्याशा में होता है कि अमुक व्यवहार करके वांछित परिणाम या प्रोत्साहन प्राप्त कर सकता हैं। इसलिए इसे प्रत्याशा सिद्वान्त भी कहते हैं। व्यक्ति को धनात्मक प्रोत्साहन की ओर बढ़ने तथा धनात्मक प्रोत्साहन से दूर हटने में खुशी होती है। उदाहरण- बिल्लियों के दो समूह को 4-4 घंटे तक भूखा रखा गया। दोनों समूहों की भूख (प्रणोद) समान हो जायेगी। फिर एक समूह को अच्छा एवं स्वादिष्ट खाना दिया गया। दूसरे समूह को काफी साधारण तथा स्वादहीन भोजन दिया गया। यह पाया गया कि पहले समूह द्वारा खूब मन से अधिक खाना खाया गया उसकी अपेक्षा दूसरे समूह ने कम खाया। इससे स्पष्ट होता है कि प्रोत्साहन या लक्ष्य के कुछ गुण होते हैं, जिनसे प्राणी का अभिप्रेरित व्यवहार प्रभावित होता है।

आलोचनाएं

यह सिद्वान्त प्रोत्साहन को महत्व देता है। परन्तु आन्तरिक अवस्था प्रणोद को महत्व नहीं देती। क्योंकि वातावरण में प्रोत्साहन स्पष्ट रूप से उपलब्ध रहने तथा प्रणोद के न रहने पर अभिप्रेरित व्यवहार उत्पन्न नहीं हो पायेगा। उदाहरण के लिए-यदि आप 1 घंटे पहले पानी पी चुके हैं। अर्थात् प्रणोद लगभग समाप्त हो गया है। ठंढ़े पानी से भरा हुआ गिलास इस स्थिति में आपके लिए महत्वहीन हो जाता है। आप पानी नही पीयेंगे। इससे स्पष्ट है कि अभिप्रेरित व्यवहार के लिए मात्र प्रोत्साहन का ही होना अनिवार्य नहीं है बल्कि प्रणोद का भी होना अनिवार्य है। जिस तरह से प्रणोद के अभाव से प्रोत्साहन अर्थहीन है ठीक उसी प्रकार प्रोत्साहन के अभाव में सिर्फ प्रणोद अर्थहीन होता है।

4. **विरोधी-प्रक्रिया सिद्वान्त (Opponent-Process Theory)** -इस सिद्वान्त का प्रतिपादन सोलोमन तथा कोरबिट (1974) द्वारा किया गया। बाद में 1980 में सोलोमन द्वारा इसमें परिवर्तन किया गया। इस सिद्वान्त के अनुसार सभी तरह के सांवेगिक उद्दीपकों में दो तरह की एक दूसरे की विरोधी अवस्थाएं उत्पन्न होती हैं।

A →	A’ →	B →	B’
प्रसन्नताकी अवस्था	कम प्रसन्नताकी अवस्था	अप्रसन्नताकी अवस्था	तीव्र अप्रसन्नताकी अवस्था
विशेष सत्ता	सत्ता में कुछ कमी		
या उपलब्धि	या उपलब्धि में कुछ कमी		

उदाहरण-यदि किसी व्यक्ति को कोई विशेष सत्ता या उपलब्धि प्राप्त होती है, तो A अवस्था (प्रसन्नता की अवस्था) उत्पन्न होती है। बार-बार सफलता प्राप्त होने से कम प्रसन्नता की अवस्था A फिर अप्रसन्नता की अव्यवस्था B तथा अन्त में तीव्र अप्रसन्नता की स्थिति ठष् प्राप्त होती है। इस अवस्था में व्यक्ति को और ऊँची उपलब्धि प्राप्त करने तथा सत्ता संबंधी व्यवहार (Power related behavior) करने के लिए अभिप्रेरित करता है, जिससे पुनः A की अवस्था आ जाती है। यदि उपलब्धि काफी अधिक हुई तो सीधे। अवस्था फिर से प्राप्त हो जाती है।

आलोचनाएं

i. कुछ मनोवैज्ञानिकों का मत है कि इस सिद्वान्त द्वारा जैविक अभिप्रेरकों की व्यख्या नहीं होती है।
ii. सभी तरह के उद्दीपकों से दो तरह की अवस्थाएं जो आपस में एक दूसरे की विरोधी हों, उत्पन्न हो ये आवश्यक नहीं है।

5. **आदर्श -स्तर सिद्वान्त (Optimal-Level Theories)** -फिस्क एवं माडी (Fiske & Maddi, 1961) बर्लिन (Berlyne, 1971) डुफ्फी (1957) तथा हेब (Hebb, 1955)) के अनुसार-प्रत्येक व्यक्ति के सामने क्रियाशीलता या सचेतता (Arousal) का एक निश्चित स्तर होता है, जिसे आदर्श स्तर कहते हैं। इस स्तर पर किए गये व्यवहार पर व्यक्ति को प्रसन्नता होती है। आदर्श स्तर से ऊपर तथा नीचे दोनों स्थितियों के व्यवहार से व्यक्ति को उतनी खुशी नहीं मिलती है जितनी आदर्श स्तर पर होती है। उच्च तथा निम्न दोनों स्थितियों में व्यक्ति का प्रयास यही रहता है कि वह व्यवहार को आदर्श स्थिति में ला सके।

   उदाहरण- मान लीजिए किसी दिन आपके पास लगातार मिलने वाले बहुत अधिक लोग आ जाते हैं। उसी समय में आपको अपना कार्य भी करने को होगा। ऐसी अवस्था में आप की क्रियाशीलता का स्तर आदर्श स्तर से ऊँचा होगा। अतः आप अपने सचेतना स्तर को कम करके आदर्श स्तर पर लाना चाहेंगे। ऐसी अवस्था में आप नौकर से कह सकते हैं कि अब किसी मिलने

वाले को मत भेजना। यह भी कह सकते हैं कि कह दो कि वे नहीं हैं। टेलीफोन को बन्द भी कर सकते हैं। इसके विपरीत यदि मिलने वालों की संख्या नगण्य हो तो क्रियाशीलता का स्तर आदर्श स्तर को नीचे चला जायेगा। इस अवस्था में आप अपनी क्रियाशीलता स्तर को ऊपर बढ़ा कर आदर्श स्तर तक ले जाने का प्रयास करते हैं। अतः इस अवस्था में आप अपने दोस्तों को बुला लेते हैं अथवा सिनेमा देखने चले जाते हैं। इस तरह आप अपने क्रियाशीलता स्तर को बढ़ाकर आदर्श स्तर तक ले आते हैं जिससे अपको प्रसन्नता होती है।

आलोचनाएं

i. धनार्जन की स्थिति में क्रियाशीलता आदर्श स्तर से काफी ऊँचे होने पर भी व्यक्ति की प्रसन्नता बढ़ती जाती है। जो एक सिद्वान्त के विपरीत है।
ii. नीस (Niess, 1990) के अनुसार प्रायोगिक अध्ययन में स्वतंत्र चर उत्तेजन (Arousal) कभी शुद्ध स्तर पर चर नहीं रहा है। प्रयोगकर्ता व्यक्ति को दैहिक रूप से उत्तेजित करने के लिए कुछ करता है। इससे उसके संवेग एवं संज्ञान दोनों में परिवर्तन होता है। ऐसी परिस्थिति में कैसे कहा जा सकता है कि निष्पादन के स्तर में होने वाले परिवर्तन का व्यवहार मात्र उत्तेजक है।
iii. प्रायः यह पहले से तय नहीं किया जा सकता है कि अमुक कार्य या परिस्थिति के लिए उत्तेजन का आदर्श स्तर क्या होगा? ऐसी परिस्थिति में इस सिद्वान्त के आधार पर कुछ भी पूर्वकथन करना संभव नहीं है।
iv. जुकरमैन (Zukerman, 1984) के अनुसार कुछ लोग ऐसे होते हैं जो उच्च उत्तेजन स्तर को आदर्श समझते हैं, क्योंकि उन्हें उत्कृष्ट संवेदन प्राप्त करने में आनन्द आता है। दूसरी तरफ कुछ लोग ऐसे होते हैं जो उत्तेजन के निम्न स्तर को ही आदर्श मानते हैं। फलतः उत्तेजन स्तर सिद्धान्त द्वारा व्यक्ति के अभिप्रेरक व्यवहार के बारे में कुछ भी संगत पूर्वकल्पना करना एक टेढ़ी खीर है।

यद्यपि उत्तेजन स्तर सिद्वान्त की परिसीमाएं अवश्य हैं फिर भी यह सिद्वान्त अभिप्रेरित व्यवहार की उत्पत्ति के स्वरूप पर बहुत हद तक प्रकाश डालने में समर्थ है।

6. **आवश्यकता पदानुक्रम सिद्वान्त (Need hierarchy theories)**

मैस्लो (Maslow, 1954) ने सर्वप्रथम आत्म-सिद्वि (Self-actualization) को एक महत्वपूर्ण अभिप्रेरणा बताया। उन्होंने बतलाया कि मानव आवश्यकताओं या मानव अभिप्रेरकों की व्याख्या एक अनुक्रम या सीढ़ी के रूप में की जा सकती है।

मैस्लो का कहना है कि व्यक्ति सबसे पहले शारीरिक आवश्यकताओं जैसे-भूख, प्यास एवं सेक्स आदि की संतुष्टि चाहता है। इसके पूर्ण हो जाने के उपरान्त वह शारीरिक एवं सांवेगिक दुर्घटनाओं से अपनी सुरक्षा चाहता है। इन दोनों आवश्यकताओं की संतुष्टि के बाद सदस्य होने तथा स्नेह पाने या देने की आवश्यकता आती है। इस आवश्यकता के कारण व्यक्ति परिवार, स्कूल, धर्म, प्रजाति राजनैतिक पार्टी आदि के साथ तादात्म्य स्थापित करता है। उपर्युक्त तीनों आवश्यकताओं की पूर्ति के बाद व्यक्ति में सम्मान की आवश्यकता उत्पन्न होती है। इस आवश्यकता में

आन्तरिक सम्मान कारक जैसे- आत्म सम्मान, उपलब्धि, स्वायत्तता तथा वाहय सम्मान कारक जैसे-पद, कदरदानी आदि सम्मिलित होते हैं। मैस्लो के सिद्वान्त में अन्तिम स्तर 'आत्मसिद्धि की आवश्यकता' का होता है। आत्मसिद्धि का तात्पर्य अपने अन्दर छिपी क्षमताओं की पहचान करना है। व्यक्ति की अपनी क्षमताओं को विकसित करने की आवश्यकता को आत्म सिद्धि कहा जाता है। कुछ व्यक्तियों मे आत्म सिद्धि की आवश्यकता ही नहीं उत्पन्न होती है। वे निम्न स्तर की आवश्यकताओं से संतुष्ट रहते हैं। जिनमें आत्मसिद्धि पूर्ण होती है उन्हें अपने व्यक्तिगत विकास से काफी संतुष्टि होती है। ऐसे व्यक्तियों में डर, दुश्चिन्ता, आदि नहीं के बराबर होता है। अतः ऐसे व्यक्तियों में परिस्थितियों का प्रत्यक्षण सही-सही होता है।

मैस्लो ने शारीरिक आवश्यकताओं तथा सुरक्षा की आवश्यकता को निम्नस्तर की आवश्यकताओं में रखा है। बाकी तीनों आवश्यकताओं को उच्च स्तर की आवश्यकताओं में रखा है जिनकी उच्च स्तर की आवश्यकताएं संतुष्ट हो जाती है उनकी निम्न स्तर की आवश्यकताएं भी संतुष्ट हो जाती है। ऐसा भी हो सकता है कि उसकी निम्न स्तर की आवश्यकता संतुष्ट हो जाय तथा उच्च स्तर की आवश्यकता संतुष्ट न हों।

सीमाएं

आलोचकों का मत है कि मैस्लो ने अपने सिद्वान्त के प्रतिपादन के लिए आकड़े केवल उच्च स्तर एवं मध्यम स्तर के व्यक्तियों से प्राप्त किए थे। अतः उनका सिद्धान्त इन्हीं वर्गों के लिए ही उचित है। निम्न लोगों की आवश्यकताएं कभी पूर्णतः संतुष्ट नहीं होती हैं। अतः वे अनुक्रम के आगे की आवश्यकताओं के बारे मे सोच भी नहीं सकते।

i. मैस्लो की पूर्वकल्पना है कि प्रत्येक व्यक्ति अपनी निचली आवश्यकताओं से ऊपर स्तर की ओर बढ़ते हैं। एक स्तर की संतुष्टि के बाद ही वह अगले स्तर की आवश्यकताओं के तरफ बढ़ते हैं। मैस्लो प्रयोग द्वारा अपनी इस पूर्वकल्पना को नही सिद्ध कर सके। उनकी दूसरी पूर्वकल्पना कि एक स्तर की आवश्यकता संतुष्ट हो जाने पर ही दूसरे स्तर पर जाती है। आलोचकों का यह कहना है कि ऐसा ही हो यह आवश्यक नहीं है। ऐसा भी हो सकता है कि सबसे निम्न स्तर की आवश्यकताओं की संतुष्टि करने के बाद तीसरे स्तर ही आवश्यकता न उत्पन्न होकर चौथे स्तर की आवश्यकता उत्पन्न हो जाय। (Williams & Page, 1989)।

ii. मैस्लो ने जिन मानवीय आवश्यकताओं का वर्णन किया है उनके दैहिक या शारीरिक तथा मनोवैज्ञानिक आधारों को नहीं बतलाया गया हैं। जैसे-व्यक्ति में भूख की आवश्यकता होती है। परन्तु किन-किन शारीरिक परिवर्तनों से यह उत्पन्न होती है, इसका वर्णन उन्होंने नहीं किया है।

iii. मैस्लो ने अपने सिद्धान्त में व्यक्तियों के मात्र व्यक्तिगत इतिहास (Case History) को प्रस्तुत किया है। प्रयोगात्मक सबूत के अभाव में सिद्धान्त की मान्यता कम हो जाती है।

आलोचनाओं के बावजूद यह एक महत्वपूर्ण सिद्धान्त है। क्योंकि इस सिद्धान्त में अभिप्रेरणा की व्याख्या करने में जैविक (Biological), सामाजिक (Social), व्यवहारपरक (Behavioral) प्रभावों को सम्मिलित किया जाता है।

2.3.2 अधिगम सिद्धान्त (Learning Theories)

अधिगम से सम्बन्धित सभी सिद्धान्तों की मान्यता यह है कि व्यक्ति के जितने भी सामाजिक व्यवहार होते हैं वह सभी सामाजिक व्यवहार सीखे हुए होते हैं। जैविक उपागम में जहाँ सभी व्यवहार जन्मजात माने जाते हैं वहीं इस उपागम में मनुष्य के सामाजिक व्यवहार अधिमित होते हैं।

पैवलाव का प्राचीन अनुबंधन सिद्वान्त

व्यक्ति के सामाजिक व्यवहारों की व्याख्या पैवलाव-द्वारा प्रतिपादित अनुबन्धन सिद्धान्त और नैमित्तिक अनुबंधन सिद्धान्त के आधार पर की जाती है।

पैवलाव ने एक कुत्ते को एक कमरे में रखा। इसके बाद वह बार-बार घंटी बजाने के तुरन्त बाद कुत्ते को भोजन देता था। सात दिनों तक बार-बार घंटी बजने पर बाद भोजन कुत्ते को दिया गया। प्रत्येक बार घंटी बजने पर भोजन देखकर कुत्ते के मुँह में लार आ जाती थी। इस प्रकार एक ऐसी स्थिति आई कि केवल घंटी सुनकर ही कुत्ते की मुँह में लार आ जाती थी। भले ही भोजन न दिया गया हो। कुत्ते के इस व्यवहार को अनुबंधित व्यवहार कहते हैं।

1. टी (CS---------- (सिर घुमाना, कान खड़े करना),- प्रशिक्षण
2. घंटी (CS) एवं भोजन (UCS) --------- लार का आना (UCR)- प्रशिक्षण के बाद
3. घंटी (CS)-------- लार का आना (CR)

सामाजिक अधिगम सिद्वान्त (Social Learning Theory)

समाजिक अधिगम सिद्वान्त का प्रतिपादन अलबर्ट बंदूरा द्वारा 1977 में किया गया। बन्दूरा के सामाजिक अधिगम सिद्वान्त में अनुकर्णात्मक अधिगम और प्रेक्षणात्मक अधिगम (Observational learning) की व्याख्या प्रबलन (Reinforcement) के आधार पर की गयी है। सामाजिक मनोविज्ञान के अन्तर्गत आने वाले सामाजिक व्यवहार जैसे- आक्रामकता, परोपकार, अन्तःवैयक्तिक आकर्षण, अभिवृत्तियों का निर्माण और परिवर्तन तथा पूर्वाग्रह आदि से सबंधित व्यवहारों की व्याख्या सामाजिक अधिगम सिद्वान्तों के आधार पर की गई है।

बंदूरा द्वारा बोबोडाल (एक हवा भरा बड़ा सा गुड्डा) एक प्रयोग किया गया है। नर्सरी के छात्रों के दो समूह लिए गये। प्रथम समूह प्रयोगात्मक समूह था, जिसमें एक वयस्क व्यक्ति द्वारा बच्चों के सामने बोबो डॉल के साथ आक्रमकतापूर्ण व्यवहार किया गया, मारपीट की गई। दूसरा नियंयित समूह था। इसमें वयस्क बच्चों के सामने बोबो डॉल को उनके सामने पुनः ले जाया गया। प्रयोगात्मक समूह के बच्चों ने बोबो डॉल के साथ आक्रमकतापूर्ण तथा नियंत्रित समूह के बच्चों द्वारा सहृदयतापूर्ण व्यवहार किया गया। दोनों

समूह के बच्चों ने जैसा व्यवहार वयस्क द्वारा करते हुए देखा था वैसा ही व्यवहार उस कमरे में बोबो डॉल के साथ करते पाये गये। इससे स्पष्ट है कि व्यक्ति ठीक वैसा ही व्यवहार करता है जैसा वह देखता है।

अन्तर्दृष्टि अधिगम सिद्वान्त (Insight learning theory-or gestalt theory)

इस सिद्वान्त का प्रतिपादन सन् 1917 में कोहलर ने किया। कोहलर ने अपने प्रयोग में एक वनमानुष को पिजड़े में बन्द किया। पिजड़े से कुछ दूरी पर एक केला रखा जो वनमानुस को स्पष्ट दिखाई दे रहा था। पिजड़े में एक छड़ी रखी थी। पिजड़े में चिम्पैजी को स्वच्छन्द विचरण करने के लिए पर्याप्त स्थान भी था। पिजड़े के अन्दर बन्द वनमानुष केले को देखकर उसे पाने का प्रयास करने लगा। कुछ देर तक असफल रहने पर उसमें एक सूझ उत्पन्न हुई। उसने तुरन्त छड़ी की सहायता से केले को अपनी ओर खींच लिया और खा लिया।

कोहलर ने अपने दूसरे प्रयोग में केले को पिजड़े से अधिक दूरी पर रखा तथा पिजड़े में इस बार एक के स्थान पर दो छड़ियां रखीं, जो हिलने डुलने पर आपस में जुड़कर लम्बी हो सकती थीं। वनमानुष ने पूर्व की भाँति एक छड़ी का प्रयोग किया परन्तु केला पाने में असफल रहा। वह पिजड़े में दोनों छड़ियों के साथ उछल कूद करने लगा। ऐसा करने पर दोनों छडियां आपस में जुडकर लम्बी हो गई। वनमानुष ने अपनी सूझ का प्रयोग करते हुए तुरन्त उसका प्रयोग कर केला अपनी ओर खींच लिया और खा लिया इसके बाद केले को खीचने में पूर्व की अपेक्षा कम समय लगा।

कोहलर ने सूझ के द्वारा सीखने सम्बन्धी अन्य प्रयोग किया। इस बार पिजड़े से बाहर रखने के स्थान पर पिजड़े के अन्दर छत से लटका दिया। इस बार वनमानुष ने कुछ देर तक प्रयास किया तत्पश्चात् उसने रखे हुए लकड़ी के संदूकों को एक के ऊपर एक रखा और चढ़कर केले का गुच्छा उतार लिया और खा लिया।

इस प्रकार कोहलर ने यह निष्कर्ष निकाला कि समस्याओं के समाधान हो जाने पर उसमें सूझबूझ का अधिक महत्व होता है। जिसे अन्तर्दृष्टि की समझ कहा गया है। जब अध्ययन का विषय जीवन का एक अंग बन जाती है तब उसमें अन्तर्दृष्टि प्रकट होती हैं।

अधिगम का सामाजिक विनिमय सिद्वान्त (Social Exchange Theory of Learning)

यह सिद्वान्त पुरस्कार एवं दण्ड प्रत्ययों पर आधारित है। इस सिद्वान्त का प्रतिपादन टोलमैन द्वारा किया गया। अपने प्रयोग में पहेली सिखाने के लिए उन्होंने चूहों के तीन वर्गों पर प्रयोग किया। पहले वर्ग के चूहों को सीखने पर भोजन दिया गया। दूसरे वर्ग के चूहों को बाहर निकलने पर भोजन नहीं दिया गया। तीसरे वर्ग के चूहों को पहले के कुछ प्रयासों में भोजन नहीं दिया गया, परन्तु बाद के प्रयासों में भोजन दिया गया।

प्रयोग के परिणाम में देखा गया कि अन्य वर्गों के चूहों की तुलना में पहले वर्ग के चूहों ने सबसे कम समय में पहेली बाक्स से बाहर निकलना सीख लिया। दूसरे वर्ग के चूहे बहुत प्रयास करने के बाद ही पहेली बाक्स से बाहर निकल सके। तीसरे वर्ग के चूहे भोजन मिलना प्रारम्भ होने से ही सीखने में प्रगति दिखाने लगे और पहले बाक्स से शीघ्र बाहर निकलने लगे।

यद्यपि पुरस्कार न मिलने पर भी चूहों ने पहेली बाक्स से बाहर आना सीख लिया। परन्तु पुरस्कार मिलने से उसमें सहायता मिली। यहां पर टोलमैन ने दूसरे वर्ग के चूहों के सीखने पर विशेष जोर देते हुए यह बतलाया कि प्रेरणा अथवा पुरस्कार के अभ्यास से भी चूहों ने पहेली बाक्स से बाहर निकलना सीख लिया था। स्पष्ट है कि सीखने के लिए प्रेरणा अनिवार्य नहीं है। दूसरी ओर टोलमैन शिक्षण को अभिव्यक्त करने में प्रेरणा को आवश्यक मानते हैं। तीसरे वर्ग के चूहों के संबध में यह देखा जा सकता है कि यद्यपि उन्होंने पहेली बाक्स से निकलना सीख लिया था, परन्तु प्रेरणा के अभाव में वे उसे व्यक्त नहीं कर सके।

इस प्रकार टोलमैन ने यह निष्कर्ष दिया कि अप्रबलित समूह के चूहों ने भूल-भुलैया संबंधी रेखाचित्र को खोज कर शीघ्रता के साथ अधिगम किया। चूहों ने मात्र अपने अधिगम का प्रदर्शन प्रबलन प्रदान होने तक नहीं किया। चूहों ने अपने लक्ष्य को प्राप्त करने हेतु आवश्यक परिस्थितियों एवं दशाओं को संज्ञानात्मक मानचित्र के द्वारा ग्रहण किया।

क्रिया प्रसूत अनुबन्धन सिद्वान्त (Operant Conditioning Theory)

इस सिद्वान्त के प्रतिपादक स्किनर (1969, 1983) हैं। इस सिद्वान्त के अनुसार क्रिया प्रसूत अनुक्रिया के बाद जब पुनर्बलित उद्दीपक को दिया जाता है तो इससे उसकी शक्ति बढ़ जाती है। इस प्रकार इनकी निम्नलिखित दो विशेषताएँ दिखाई पड़ती हैं-

a. कोई भी क्रियाप्रसूत अनुक्रिया जिसके बाद पुनर्बलित उद्दीपक दिया जाता है। उसे प्राणी दोहराता है।
b. पुनर्बलित उद्दीपक वह उद्दीपक होता है जिससे क्रियाप्रसूत अनुक्रिया के होने की संभावना में वृद्धि हो जाती है।

स्पष्टतः क्रियाप्रसूत अनुबन्धन में व्यवहार तथा उसके परिणाम पर बल दिया गया है। क्रिया प्रसूत अनुबंधन के लिए यह आवश्यक है कि प्राणी इस ढंग से अनुक्रिया करे कि उससे उसे पुनर्बलित उद्दीपक की प्राप्ति हो सके। इसका स्पष्ट अर्थ यह हुआ कि क्रियाप्रसूत अनुबन्धन में सापेक्ष पुनर्बलन (Contingent reinforcement) पर बल डाला जाता है।

क्रियाप्रसूत अनुबन्धन कक्ष (Operant condition chamber) का बाद में नाम स्किनर चैम्बर पड़ गया) में एक जाली का फर्श, रोशनी, एक लीवर तथा एक भोजन का कप होता है। इसमें चूहा को लीवर दबाने की अनुक्रिया को सिखलाया जाता है। क्रियाप्रसूत अनुबन्धन कक्ष में स्किनर ने एक भूखा चूहा रखा। लीवर को दबाया एवं छोड़ा जा सकता था। कभी चूहा जब उछलकर लीवर को नीचे दबा देता उसी समय भोजन के टुकड़े कप में आ जाते थे। इस क्रिया में सबसे पहले एक खट की आवाज भी आती थी, तुरन्त उसके बाद चूहा लीवर को नीचे दबा देता था और उसे भोजन के टुकड़े मिल जाते थे। वह लीवर को तभी दबाता था जब खट की आवाज सुनता था। पैवलाव के क्लासिकल अनुबन्धन के यह बिल्कुल समान है। अन्तर केवल यह है कि स्किनर के चूहे काफी सक्रिय हैं। उद्देश्य की प्राप्ति के लिए चूहे का व्यवहार बिल्कुल नैमित्तिक है। अतः इसे (Instrumental Conditioning) नैमित्तिक अनुबन्धन भी कहते हैं।

सभी सामाजिक अधिगम सिद्वान्तवादियों का मानना है कि व्यक्ति के सामाजिक व्यवहार अधिगमित होते हैं और इन सामाजिक व्यवहारों की व्याख्या साहचर्यात्मक अधिगम, अनुकरणात्मक अधिगम, पुरस्कार और दण्ड के आधार पर की गई है। सामाजिक व्यवहार की व्यवस्था में अधिगम सिद्वान्त बहुत अधिक लोकप्रिय रहे हैं।

2.3.3 संज्ञानात्मक सिद्वान्त (Cognitive Theories)

संज्ञानात्मक सिद्वान्तों की मान्यता यह है कि व्यक्ति के जितने भी सामाजिक व्यवहार होते हैं वे सभी सामाजिक व्यवहार व्यक्ति अपने वातावरण के संज्ञान के आधार पर करता है। इस दिशा में पहला सिद्वान्त गेस्टाल्टवाद के नाम से प्रचलित हुआ। गेस्टाल्ट मनोविज्ञान के अनुसार मनोविज्ञान की विषयवस्तु सम्पूर्ण मानव अनुभव है। इसमें प्रयोज्य अपने अनुभवों को जिस रूप में ग्रहण करता है उसी रूप में व्यक्त करने का प्रयास करता है। गेस्टाल्टवाद के अनुसार सम्पूर्ण (Whole) अपने भिन्न-भिन्न भागों का योगफल नहीं होता है। बल्कि उससे भिन्न होता है। सम्पूर्ण में एक निर्गामी गुण (Emergent Quality) उत्पन्न होता है जो इसके किसी भी अंश में नहीं देखा जाता। संज्ञानात्मक मनोविज्ञान के विकास में गेस्टाल्टवाद ने काफी योगदान किया। गेस्टाल्टवादी मनोवैज्ञानिकों ने प्रयोगकरण की अनेक तकनीकों का विकास किया। इन तकनीकों के आधार पर अन्तः वैयक्तिक संम्प्रेक्षण अभिवृत्ति परिवर्तन और समूह संरचना से संबंधित सामाजिक व्यवहारों का प्रायोगिक अध्ययन किया जाने लगा। गेस्टाल्टवाद के आधार पर इन सामाजिक व्यवहारों की अधिक सामाजिक ढंग से व्यांख्यां की गई। व्यवहारवादी उपागम के बढ़ते हुए प्रभुत्व के कारण अन्तरिक मानसिक क्रियाओं यथा-प्रत्यक्षण, चिंन्तन, समस्या समाधान, भाषा, विवेक आदि संज्ञानात्मक कारकों का महत्व गौण होता चला गया। एक लम्बे समय के बाद संज्ञानात्मक मनोवैज्ञानिकों ने इस आंतरिक प्रक्रियाओं के महत्व को समझा और कहा कि व्यवहारवाद एक अपूर्ण मनोवैज्ञानिक उपागम है जो व्यवहार की व्याख्या केवल उसकी बाह्य विशेषताओं के आधार पर करता है और आंतरिक विशेषताओं की उपेक्षा करता है। अतः संज्ञानात्मक उपागम व्यवहार की समुचित व्याख्या करता है। क्योंकि यह बाह्य विशेषताओं के साथ-साथ आन्तरिक मानसिक प्रक्रियाओं पर भी बल देता है। इस अर्थ में संज्ञानात्मक उपागम वास्तव में संरचनावाद, प्रकार्यवाद तथा व्यवहारवाद का एक सुन्दर समाकलन है।

संज्ञानात्मक सैद्धान्तिक उपागम की आधारभूत मान्यता यह है कि सामाजिक व्यवहार किसी न किसी क्षेत्र (Field) में घटित होता है। यह क्षेत्र व्यक्ति के विगत अनुभवों, प्रत्यक्षीकरण और संबंधित कारकों पर ही निर्भर नहीं होता है बल्कि सामाजिक व्यवहार की व्यवस्था समग्रता नियम के आधार पर भी की जाती है। संज्ञानात्मक सैद्धान्तिक उपागम में सामाजिक मनोविज्ञान में गुणारोपण सिद्वान्त (Attribution theory) सबसे अधिक लोकप्रिय रहा है।

हाइडर (1958) (Heider’s Attribution) का गुणारोपण सिद्वान्त हाइडर के सिद्वान्त के अनुसार किसी व्यवहार या घटना के प्रदर्शित होने में दो प्रकार के कारक महत्वपूर्ण होते हैं। इन्हें व्यक्तिगत शक्तियां या आंतरिक कारक एवं पयावरणीय शक्तियां या बाह्य कारक कहते हैं। उदाहरणार्थ - मान लें कि एक व्यक्ति (अभिकर्ता) के समक्ष नदी पार करने की समस्या उत्पन्न हो गई है। यदि उसमें तैरने की योग्यता नहीं है या

कम है तो नदी पार नहीं कर पायेगा। क्योंकि उसकी क्षमता कार्य की कठिनाई की तुलना में पर्याप्त नहीं है। अतः ऐसा होने पर वह चाहे जितना भी प्रयत्न करे समस्या का हल नहीं मिल पायेगा।

हाइडर के अनुसार आन्तरिक कारकों को सर्वप्रथम चेष्टा या अभिप्रेरणा एवं योग्यता (AbilityPossibility) में विभक्त कर सकते हैं। योग्यता का संबंध प्रत्यक्षतः कार्य कठिनता (Task difficulty) से है । क्योंकि कार्य संपन्न होने की संभावना (Task difficulty) योग्यता पर निर्भर होती है।

हाइडर के अनुसार चेष्टा (अभिप्रेरण) को अभिप्राय या लक्ष्य एवं प्रयत्न में विभक्त किया जा सकता है। अर्थात् समस्या हल करने के लिए अभिकर्ता में इच्छा होनी चाहिए या उसे यथोचित प्रयत्न करना चाहिए।

हाइडर के इस गुणारोपण सिद्धान्त पर गेस्टाल्ट मनोविज्ञान और कुर्टलेविन के क्षेत्र सिद्वान्त का प्रभाव था। हाइडर के इस सिद्वान्त को जान्स और डेविस (1965), केली (1967-1971) आदि मनोवैज्ञानिकों ने आगे विकसित किया। वाइनर (1972-1980) ने गुणारोपण सिद्धान्त को वृहद सामाजिक मनोविज्ञान सिद्वान्त के रूप में प्रस्तुत किया। गुणारोपण के सिद्धान्त के आधार पर व्यक्ति के संज्ञान के रूप में प्रस्तुत किया। गुणारोपण सिद्धान्त के आधार पर व्यक्ति के संज्ञान के प्रत्यक्षीकरण, व्यक्ति की संवेगात्मक अनुक्रियाओं, उपलब्धि अभिप्रेरणा संबंधी व्यवहार, अभिवृत्ति परिवर्तन और परोपकारी व्यवहार आदि की व्याख्या की गई है।

सामाजिक व्यवहार में अन्तःक्रियात्मक व्यवहार की व्याख्या संज्ञानात्मक विसन्नादिता सिद्धान्त (Dissonance theory) के आधार पर की जाती है, जिसका प्रतिपादन फेस्टिंगर (1957) ने किया। इस व्यवहार की व्याख्या संतुलन सिद्धान्त के आधार पर भी की जाती हैं जिसका प्रतिपादन हाइडर (1946) और रोजनवर्ग (1958) आदि मनौवैज्ञानिकों ने किया।

अभ्यास प्रश्न

1. सामाजिक परिस्थिति में व्यक्ति के व्यवहार का_________अध्ययन ही सामाजिक मनोविज्ञान है।
2. सामाजिक मनोविज्ञान में_________योग्यता का गुण पाया जाता है।
3. सामाजिक मनोविज्ञान में_________का गुण पाया जाता है।
4. सामाजिक मनोविज्ञान में विज्ञान _________पायी जाती है।
5. व्यक्ति के समस्त व्यवहार___________होते हैं।
6. संज्ञानात्मक उपागम सिद्धान्त बाह्य विशेषताओं के साथ-साथ _______पर भी बल देता है।

2.4 सारांश

- समाज मनोविज्ञान व्यक्ति के व्यवहार तथा अनुभूतियों का सामाजिक परिस्थिति में अध्ययन करने का विज्ञान है। वैज्ञानिक स्वरूप के कारण इसमें प्रामाणिकता, भविष्यवाणी की योग्यता, सार्वभौमिकता, वस्तुनिष्ठता आदि के गुण पाये जाते हैं।

- समाज मनोविज्ञान प्रयुक्त विज्ञान के रूप में शोध/अध्ययन कर समस्याओं का पता लगाता है तथा उनका समुचित समाधान करता है।
- घटना से संबंधित चरों के प्रभाव, चरों के पारस्परिक संबंधो, चरों की व्यवस्थित व्याख्या, नियंत्रण, विश्वसनीय भविष्यवाणी, क्रमबद्धता एवं ताकिर्कता आदि के कारण जो व्यवस्थित रूप प्राप्त होता है उसे सिद्धान्त कहते हैं।
- अभिप्रेरणा अवस्थाओं का एक ऐसा समुच्चय है जो व्यवहार को सक्रिय करता है, निर्देशित करता है तथा किसी लक्ष्य की ओर उसे बनाए रखता है।
- मनोवैज्ञानिकों ने अभिप्रेरकों की व्याख्या करने के लिए 1.मूलप्रवृत्ति सिद्धान्त 2. प्रणोद सिद्धान्त 3. प्रोत्साहन सिद्धान्त 4. विरोधी प्रक्रिया सिद्धान्त 5. आवश्यकता पदानुक्रम सिद्धान्त आदि प्रमुख सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया है।
- समस्त सामाजिक व्यवहार सीखे हुए होते हैं।
- संज्ञानात्मक सिद्वान्त व्यवहार की समुचित व्याख्या करता है। क्योंकि यह बाह्य विशेषताओं के साथ-साथ आन्तरिक मानसिक प्रक्रियाओं के अध्ययन पर भी बल देता है।

2.5 शब्दावली

1. **प्रयुक्त -** व्यावहारिक
2. **विभेदन -** भेदभाव
3. **पुनर्बलन-** और मजबूत करना
4. **परस्पर-** आपस में
5. **कर्षण-** खिंचाव
6. **अधिगम-** सीखना
7. **प्रणोद-** अभिप्रेरणा का स्रोत
8. **प्रत्याशा-** प्राप्त होने शारीरिक आवश्यकता जैसे - भूखकी आशा, प्यास।
9. **अनुक्रम-** सीढ़ी
10. **आत्म सिद्धि-** अपने अन्दर की क्षमताओं को पहचानना

2.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. वैज्ञानिक
2. भविष्यवाणी का गुण
3. प्रामाणिकता, सार्वभौमिकता एवं वस्तुनिष्ठता
4. के आवश्यक तत्व या विशेषताएं
5. सीखे हुए

6. आन्तरिक मांनसिक प्रक्रियाओं

2.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. सिंह, आर0एन0 (2007-2008) आधुनिक सामाजिक मनोविज्ञान, अग्रवाल पब्लिकेशन, आगरा।
2. सिंह, आर0एन0 (2005) आधुनिक सामाजिक मनोविज्ञान, साहित्य प्रकाशन, आगरा।
3. सिंह, ए0के0 (2002) समाज मनोविज्ञान की रूप रेखा, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली-1.
4. सिंह, एक0के0 (2000) उच्चतर सामान्य मनोविज्ञान, मोतीलाल बनासीदास, दिल्ली-1
5. श्रीवास्तव, डी0एन0 एवं अन्य (2000-2001) आधुनिक समाज मनोविज्ञान, एच0पी0 भार्गव बुक हाउस, आगरा।
6. श्रीवास्तव, डी0एन0 (दसवाँ संस्करण) सामाजिक मनोविज्ञान, साहित्य प्रकाशन, आगरा।
7. त्रिपाठी, आर0बी0 (2002) व्यक्तित्व का मनोविज्ञान, गंगासरन एण्ड सन्स, बांसफाटक, वाराणसी।

2.8 निबन्धात्मक प्रश्न

1. अभिप्रेरणात्मक सिद्वान्त की व्याख्या करते हुए इसके प्रकारों का वर्णन कीजिए।
2. अधिगम सिद्वान्त की विवेचना कीजिए।
3. संज्ञानात्मक सिद्वान्त व्यवहार की समुचित व्याख्या करता है। विवेचन कीजिए।
4. संक्षिप्त नोट लिखिए-
   i. सामाजिक मनोविज्ञान के प्रयुक्त विज्ञान का स्वरूप।
   ii. किसी सामाजिक शोध के लिए 'सिद्धान्त' सामाजिक मनोविज्ञान की नींव है।

इकाई 3 -सामाजिक मनोविज्ञान की विधियाँ

इकाई संरचना-

3.1 प्रस्तावना
3.2 उद्देश्य
3.3 प्रेक्षण विधि
3.4 सर्वेक्षण विधि
3.5 व्यक्ति इतिहास लेखन विधि
3.6 सामाजमितीय विधि
3.7 प्रयोगात्मक विधि
3.8 सारांश
3.9 शब्दावली
3.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
3.11 संदर्भ ग्रन्थ सूची
3.12 निबन्धात्मक प्रश्न

3.1 प्रस्तावना

प्रारम्भ में सामाजिक मनोविज्ञान से संबंधित समस्याओं के अध्ययन की विधियां कल्पना और अनुमान पर आधारित थीं। अर्थात् व्यक्ति के व्यवहार के अध्ययन की विधियाँ प्रायः आत्मनिष्ठ थीं। परन्तु अब अध्ययन की विधियाँ प्रायः वस्तुनिष्ठ हो गई हैं। मनोविज्ञान का स्वरूप वर्तमान में वैज्ञानिक हो गया है। अतः मनोविज्ञान की वैज्ञानिक हैसियत, इसकी विधि पर निर्भर करती है। जैसे-जैसे समाज मनोविज्ञान का कार्यक्षेत्र बढ़ता जा रहा है वैसे - वैसे समाज मनोविज्ञान की विधियाँ भी विकसित होती जा रही हैं। प्रस्तुत इकाई में प्रेक्षणविधि, सर्वेक्षण विधि, व्यक्ति इतिहास लेखन विधि, सामाजमितीय विधि एवं प्रयोगात्मक विधि का वर्णन किया गया है। आशा है प्रस्तुत पाठ्य सामग्री विश्वविद्यालय के छात्रों के लिए काफी उपयोगी होगी।

3.1 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के पश्चात् आप-

1. सामाजिक मनोविज्ञान विधि को परिभाषित कर सकेंगे।
2. सामाजिक मनोविज्ञान की प्रेक्षण विधि को समझ सकेंगे।
3. सर्वेक्षण विधि से अवगत हो सकेंगे।

4. व्यक्ति इतिहास लेखन विधि से अवगत हो सकेंगे।
5. समाजमितीय विधि से अवगत हो सकेंगे।
6. प्रयोगात्मक विधि को समझ सकेंगे।
7. उपर्युक्त विधियों के अध्ययन के उपरान्त सामाजिक मनोविज्ञान की समस्याओं के अध्ययन में इन विधियों का दक्षता से उपयोग कर सकेंगे।

3.2 प्रेक्षण विधि

प्रेक्षण वह प्रक्रिया है जिसमें प्रेक्षक व्यक्तियों के व्यवहारों को एक खास समय तक कभी हल्का हस्तक्षेप करते हुए तथा कभी बिना किसी तरह के हस्तक्षेप किए ही देखता तथा सुनता है, उनका एक रिकार्ड तैयार करता है जिसकी बाद में विश्लेषणात्मक व्याख्या की जाती है।

“विज्ञान का शुभारम्भ प्रेक्षण से होता है और अन्ततः तथ्यों के प्रमाणीकरण में भी इसी का उपयोग होता है”।

W.J. Goode and P.K. Hatt 1964

“प्रेक्षण स्पष्टतः वैज्ञानिक जांच की एक प्रतिष्ठित विधि है। वस्तुतः प्रेक्षण करने में कानों एवं वाणी की अपेक्षा नेत्रों का उपयोग किया जाता है”।- C.A. Moser 1958

प्रेक्षण विधि की अवधारणा का तात्पर्य परिकल्पना विहीन जांँच, प्राकृतिक परिवेश में घटनाओं का निरीक्षण, शोधकर्ता द्वारा हस्तक्षेप का अभाव, अचयनात्मक रूप में विवरण संग्रह और स्वतंत्र परिवर्त्यों में प्रहस्तन न करना है। - Weiek, 1969

उपर्युक्त परिभाषाओं से स्पष्ट है कि प्रेक्षण विधि के अन्तर्गत विभिन्न प्रकार के सामाजिक व्यवहारों का अध्ययन किया जाता है। इसमें अध्ययन नेत्रों द्वारा निरीक्षण करके किया जाता है। इसके द्वारा भीड़ श्रोता, सामाजिक विकास,सामाजिक अन्तःक्रिया, समूह व्यवहार एवं संस्कृति आदि का स्वाभाविक परिवेश में अध्ययन कर सकते हैं। प्रेक्षण के आधार पर प्राप्त प्रदत्तों एवं सूचनाओं का सावधानीपूर्वक विश्लेषण करके व्यवहार तथा उसे उत्पन्न करने वाले सामाजिक कारक के बीच उचित संबंध स्थापित कर सकते हैं। (Ruthus, 1984)

प्रेक्षण विधि के उपयोग की परिस्थिति

समाज मनोवैज्ञानिक जब अध्ययन किए जाने वाले चर (Variable) में जोड़ तोड़ नहीं कर पाते हैं तो इस विधि का सहारा लेते हैं। जैसे - एक समाज मनोवैज्ञानिक दुश्चिंता के प्रभाव का अध्ययन करने के लिए प्रयोज्यों को एक ऐसी परिस्थिति में रखे जहां यह कहा जाय कि उनके पिता या माता की मृत्यु हो गई है तो यह नैतिकता के विरूद्ध होगा।

प्रेक्षण विधि के सोपान

i. प्रेक्षण योजना (Observation schedule) - इसके अन्तर्गत प्रतिदर्श, प्रेक्षण स्थल, उपकरण एवं व्यवहार अंकन की विधि सुनिश्चित करना आता है।
ii. व्यवहार का प्रेक्षण (Observation behavior) - प्राकृतिक परिवेश में व्यवहार का निरीक्षण किया जाता है। कभी-कभी इसमें कैमरे का भी प्रयोग किया जाता है।
iii. व्यवहार का अंकन (Recording of behavior) - प्रेक्षण से प्राप्त सूचनाओं को पूर्व निर्धारित तथा तात्कालिक उद्देश्यों के अनुसार अंकन किया जाता है। इस कार्य में कैमरा आदि का प्रयोग किया जा सकता है।
iv. सारणीयन एवं विश्लेषण (Tabulation and Analysis) - यदि सूचनाएं मात्रात्मक प्राप्त की गई हैं तो उन्हें सारणीबद्ध कर देना चाहिए। इससे विश्लेषण में सुविधा हो जाती है।
v. व्याख्या एवं निष्कर्ष (Interpretation and conclusion) - प्राप्त सूचनाओं तथा प्रदत्तों के विश्लेषण से जो परिणाम मिलते हैं उनकी यथोचित व्यवस्था की जाती है और सामाजिक व्यवहार एवं समस्याओं के बारे में निष्कर्ष तथा अनुमान आदि प्रस्तुत किए जाते हैं।

प्रेक्षण के प्रकार (Types of observation)

रीस (Reiss ,1971) ने प्रेक्षण की वैज्ञानिक सूचनाएं उत्पन्न करने की क्षमता के आधार पर दो भागों में बाँटा है-

i. अक्रमबद्ध प्रेक्षण (Unsystematic Observation) - इसमें प्रेक्षक व्यक्तियों के व्यवहारों का अध्ययन मात्र अपने दिन प्रतिदिन के अनुभवों के ही आधार पर कर लेता है। इसमें न तो कोई स्पष्ट नियम होता है और न ही कोई तार्किक क्रम पर अपने प्रेक्षण को आधारित करता है। जब कोई शोधकर्ता बस में बैठे व्यक्तियों के भीड़ व्यवहार का अचानक प्रेक्षण करना शुरू कर देता है तो यह अक्रमबद्ध प्रेक्षण का एक उदाहरण है।
ii. क्रमबद्ध प्रेक्षण (Systematic Observation)) - इसमें प्रेक्षण का आधार एक निश्चित तथा स्पष्ट नियम होता है ताकि इस तरह के प्रेक्षण की पुनरावृत्ति की जा सके। इस तरह के प्रेक्षण की नियमावली एक वैज्ञानिक एवं तार्किक क्रम पर आधारित होती है।
   उदाहरण- यदि कोई समाज मनोवैज्ञानिक बच्चों में आक्रमणशीलता का अध्ययन करने के लिए उन्हें एक खास जगह में ले जाता है और अपने पूर्वनियोजित कार्यक्रम के अनुसार कुछ इस प्रकार की क्रियाओं की शुरूआत करता है जिनमें बच्चे एक दूसरे के प्रति आक्रमणशीलता दिखा सकें तो यह क्रमबद्ध प्रेक्षण का उदाहरण होगा। समाज मनोविज्ञान में इसका प्रयोग अधिक हुआ है।

प्रेक्षक भूमिका के अनुसार प्रेक्षण विधि के प्रकार

i. सहभागी प्रेक्षण (Participant Observation) - इस तरह के प्रेक्षण में प्रेक्षक व्यक्तियों के समूह की क्रियाओं में स्वयं हाथ बँटाता है और उनके व्यवहारों का प्रेक्षण भी करता जाता है। रिकार्ड भी तैयार करता है। वह समूह का पूर्णकालिक या अंशकालिक सदस्य बना रहता है। समूह की

क्रियाओं में सक्रिय रूप से भाग लेता है। इस तरह के प्रेक्षण में प्रेक्षक अपना परिचय सदस्यों से प्रायः छिपा कर रखता है।

ii. असहभागी प्रेक्षण (Non Participant Observation) - जब प्रेक्षक किसी सामाजिक व्यवहार का प्रेक्षण स्वाभाविक परिस्थिति में करता है। परन्तु प्रेक्षण किए जाने वाले व्यवहारों या क्रियाओं के करने में वह हाथ नहीं बँटाता है, तब इसे असहभागी प्रेक्षण विधि कहते हैं। इस प्रकार का प्रेक्षण संगठित होता है। अतः प्रेक्षक को पहले से ही प्रेक्षण की योजना बना कर स्वाभाविक परिस्थितियों में उत्पन्न करने में सुविधा होती है।

सहभागी तथा असहभागी प्रेक्षण में अन्तर

	सहभागी प्रेक्षण	**असहभागी प्रेक्षण**
1.	प्रेक्षक व्यक्तियों की क्रियाओं के साथ सक्रिय रूप से भाग लेता है।	प्रेक्षक ऐसी क्रियाओं के साथ भाग नहीं लेता है। बल्कि निष्क्रिय रहता है।
2.	प्रेक्षक का परिचय छिपा रहता है।	प्रेक्षक का परिचय छिपा नहीं रहता है।
3.	सहभागी प्रेक्षण असंगठित होता है।	असहभागी प्रेक्षण संगठित होता है।
4.	अपेक्षाकृत कम विश्वसनीय एवं कम निरूपक होता हैं	अधिक विश्वसनीय एवं निरूपक होता है।
5.	सहभागी प्रेक्षण असहभागी प्रेक्षण की तुलना में कम वैज्ञानिक है।	असहभागी प्रेक्षक को सामाजिक व्यवहार के किसी विशेष पहलू पर अधिक प्रश्नों का समाधान ढने के लिए उसे अधिक से अधिक अवसर मिलता है। अतः यह अधिक वैज्ञानिक है।
6.	प्रेक्षक परिचय छिपा रहने के कारण अध्ययन किए जाने वाले व्यवहारों की स्वाभाविकता अप्रभावित रहती है।	प्रेक्षक की उपस्थिति से अध्ययन किए जाने वाले व्यवहार की स्वाभाविकता प्रभावित होती है। कुछ मनोवैज्ञानिकों द्वारा इसका खण्डन भी किया गया है।

3.4 सर्वेक्षण विधि (Survey Method)

कम समय, कम खर्च में किसी सामाजिक व्यवहार, घटना, मत, समस्या या भावी विचारों के बारे में अधिक लोगों की राय जानने की आवश्यकता हो तो सर्वेक्षण विधि का उपयोग किया जाता है। व्यवहार, घटना या विचार से संबंधित प्रश्न या कथन व्यापक स्तर पर लोगों में प्रस्तुत कर उनकी प्रतिक्रियाएं प्राप्त की जाती हैं। प्रतिक्रियाओं का विश्लेषण करके संबधित व्यवहार, घटना या समस्या के बारे में निष्कर्ष निकाला जाता है।

“जनसंख्या या जनसंख्या के प्रतिदर्श से व्यक्तिगत साक्षात्कार या प्रदत्त संग्रह की अन्य विधियों द्वारा क्रमबद्व रूप में प्रदत्त संग्रह करना सर्वेक्षण कहा जाता है”।’ ऐसे अध्ययन लोगों के बड़े या काफी विस्तृत समूहों पर किए जाते हैं।

"Survey is ------the systematic collection of data from population or samples of population through the use of personal in interviews or other data gathering devices-----These studies are specially concerned when large or widely dispersed groups of people."

"आम जनसंख्या में से चुने गये प्रतिदर्शों का अध्ययन करके सामाजिक एवं मनोवैज्ञानिक कारकों या विशेषताओं के घटित होने की संभावना उनका विवरण एवं उनमें पाये जाने वाले संबंधों की खोज करना सर्वेक्षण का मुख्य उद्देश्य है"।

"Survey research is that branch of social scientific investigation that studies large and small population (or universe) by selecting and studying samples chosen from this population to discover the relative incidence, distribution and inter relations of sociological cl and psycho ecological variables." Kerlinger, 1973

"सर्वेक्षण शोध का तात्पर्य प्रतिदर्श तथा प्रश्नावली विधियों द्वारा जनमत के साधन से है"।

"Survey research refers to the measurement of public opinion by the use of sampling and questionnaire techniques."

"सर्वेक्षण शोध एक ऐसा शोध है जिसमें व्यक्तियों के प्रतिनिधिक समूह से उनके व्यवहार, मनोवृत्ति या विश्वास के संबंध में अनेक प्रश्न पूछे जाते हैं"।

"Survey research is a research in which a representative group of people (respondents) are asked a series of question regarding their behavior attitudes or beliefs." Feldman, 1985

इस प्रकार सर्वे विधि में शोधकर्ता एक प्रतिनिधिक प्रतिदर्श लेकर किसी सामाजिक समस्या के प्रति व्यक्तियों की मनोवृत्ति, मत, विचार आदि का अध्ययन साक्षात्कार या प्रश्नावली द्वारा करता है। सर्वे विधि में प्रायः एक बड़ी जनसंख्या के भिन्न-भिन्न वर्गों के लोगों को प्रतिदर्श के रूप में सम्मिलित किया जाता है। आजकल चुनावों के दौरान मतदाताओं की राय जानने के लिए इसका प्रायः उपयोग किया जाता है।

सर्वेक्षण सोपान (Steps of Survey)

i. **समस्या चयन (Selecting a Problem) -** समस्या विषय निर्धारण करना जैसे - जनसंख्या, गरीबी, महंगाई या दहेज की समस्यायें अध्ययन के लिए निर्धारित हो सकती हैं।
ii. **प्रतिदर्श चयन (Selecting a Sample) -** समस्या चयन के उपरान्त प्रतिदर्श का चयन किया जाता है। प्रतिदर्श अधिक से अधिक बड़ा व्यापक तथा प्रतिनिधात्मक होना चाहिए।
iii. **प्रश्न सूची तैयार करना (Preparing Schedule of Questions) -** समस्या सें संबंधित प्रश्न सूची दूसरे चरण में तैयार की जाती है। प्रश्न यथासंभव लघु एवं स्पष्ट भाषा में निर्मित करने चाहिए।

iv. **प्रदत्त संग्रह (Collection of Data) -** तैयार की गई प्रश्नावलियों के उत्तर लोगों से प्राप्त किए जाते हैं। सभी उत्तरदाताओं के समक्ष प्रश्नों का स्वरूप एक जैसा तथा संख्या भी बराबर होनी चाहिए।

v. **प्रदत्त विश्लेषण (Analysis of Data) -** सूचनाओं का वर्गीकरण, पक्ष एवं विपक्ष के आधार पर उन्हें अलग करना और आवश्यकतानुसार सांख्यिकीय विधियों का उपयोग करना इत्यादि प्रदत्त विश्लेषण के महत्वपूर्ण पक्ष हैं। जैसे-संकेतन, सारणीयन, प्रतिशतता, गा्रफिक प्रदर्शन आदि।

vi. **व्याख्या तथा निष्कर्ष (Interpretation and Conclusion) -** प्राप्त प्रदत्तों के विश्लेषण के पश्चात् उनकी व्याख्या की जाती है तथा निष्कर्ष प्रस्तुत किए जाते हैं। परिणामों को ध्यान में रखते हुए भविष्यवाणी भी की जा सकती है। जैसे-यह भविष्यवाणी करना कि आगामी चुनाव में अमुक पार्टी के कितने विधायक जीतेंगे।

सर्वेक्षण के प्रकार (Types of Survey)

i. **संगणना या यथापूर्ण सर्वेक्षण (Census or Status Survey) -** इस प्रकार के सर्वेक्षण में पूरी जनसंख्या का अध्ययन किया जाता है और आवश्यक सूचनाएं प्राप्त की जाती हैं। जैसे - जनसंख्या स्कूल गणना आदि। इस प्रकार के सर्वेक्षण का बहुत कम उपयोग होता है। इसमें समय एवं धन का व्यय अधिक होता है। सभी परिस्थितियों में इसका उपयोग काफी कठिन होता है।

ii. **प्रतिदर्श सर्वेक्षण (Sample Survey) -**इस प्रकार के सर्वेक्षण में जनसंख्या का अध्ययन न करके बल्कि उसके किसी अंश या प्रतिदर्श का अध्ययन किया जाता है। प्राप्त सूचनाओं को पूरे विश्व या जनसंख्या पर लागू किया जाता है। प्रतिदर्श को यथासंभव प्रतिनिधिक बनाने का प्रयास किया जाता है।

व्यावहारिक दृष्टिकोण से संगणना या यथापूर्ण सर्वेक्षण की अपेक्षा प्रतिदर्श सर्वेक्षण अधिक उपयोगी है। इस प्रकार के सर्वेक्षण में समय, श्रम तथा मुद्रा की बचत होती है। इसका उपयोग सामाजिक मनोविज्ञान, समाजशास्त्र, मानवशास्त्र, राजनीतिशास्त्र आदि में व्यापक रूप से होता है।

सर्वेक्षण विधियां या उपकरण (Methods or Tools of Survey)

साक्षात्कार एवं अनुसूची (Interview & schedules)-इसमें व्यक्तिगत या सामूहिक साक्षात्कार द्वारा सूचनाएं प्राप्त की जाती हैं। साक्षात्कार के समय अनुसूचियों का प्रयोग किया जा सकता है।

i. **डाक प्रश्नावली (Mail Questionnaire) -** प्रश्नावली डाक द्वारा सूचना दाताओं के पास भेज दी जाती है। उनसे अनुरोध किया जाता है कि वे इसे भरकर यथासंभव शीघ्र वापस कर दें।

ii. **टेलीफोन सर्वेक्षण (Telephone Survey)** – यहां सूचनादाताओं से टेलीफोन से संपर्क किया जाता है। सर्वेक्षण समस्या के अनुकूल व्यक्तिगत तथा समाज वैज्ञानिक तथ्यों के संबंध में सूचना देने के लिए उसे अनुरोध किया जाता है। इसकी उपयोगिता बहुत सीमित होती है।

iii. **प्रेक्षण सर्वेक्षण (Observation Survey) -** सर्वेक्षण बड़े प्रेक्षण के आधार पर प्राप्त किया जाता है।

iv. **घटक विश्लेषण (Content analysis) -** सर्वेक्षण की इस तकनीक के द्वारा संचार के व्यक्त घटक का वस्तुगत, क्रमबद्ध तथा परिमाणात्मक अध्ययन किया जाता है। सर्वेक्षण की यह विधि जटिल सामाजिक, राजनैतिक तथा मनोवैज्ञानिक समस्याओं के अध्ययन के लिए उपयोगी है। भिन्न-भिन्न समाजों, संस्कृतियों या राष्ट्रों के व्यक्तियों की मनोवृत्तियों, विश्वासों, मूल्यों आदि के अध्ययनों में यह विधि उपयोगी है। इसका सबसे बड़ा दोष यह है कि घटकों के विश्लेषण पर सर्वेक्षण के पक्षपातों का प्रभाव पड़ता है, जिससे इसकी विश्वसीयता कम हो जाती है।

v. **पैनल सर्वेक्षण (Panel Survey) -** इस सर्वेक्षण में उत्तरदाताओं के एक प्रतिदर्श का चुनाव कर लिया जाता है। इस प्रतिदर्श का सर्वेक्षण एक से अधिक बार करने पर लोगों के मत में समय-समय पर होने वाले परिवर्तनों का भी सटीक अनुमान लगाया जा सकता है। आजकल चुनावों के दौरान ऐसे सर्वेक्षण कराकर विभिन्न पार्टियों के जीत हार की संभावना का पता लगाना काफी प्रचलन में है।

वैसे लोगों का स्थानान्तरण बीच की अवधि में, कुछ उत्तरदाताओं की मृत्यु और अन्य कारणों से उत्तरदाताओं का भाग न ले पाना निष्कर्ष की विश्वसनीयता सीमित कर देते हैं।

सर्वेक्षण विधि के लाभ (Advantages of Survey Method)

i. इसके द्वारा कम समय में ही अधिक लोगों की राय, अभिवृत्ति एवं प्रतिक्रिया प्राप्त की जा सकती है।
ii. सामाजिक एवं स्वास्थ्य संबंधी विभिन्न समस्याओं के प्रति लोगों के विचार आसानी से प्राप्त हो जाते हैं।
iii. अध्ययनकर्ता अपनी आवश्यकतानुसार प्रश्नों की सूची तैयार कर सकते हैं।
iv. सर्वेक्षण की पुनरावृत्ति करके पैनल सर्वेक्षण की विश्वसनीयता बढ़ाई जा सकती है।
v. मनोविज्ञान के अतिरिक्त अन्य सामाजिक विज्ञानों में भी इसका उपयोग है।
vi. इसमें उत्तरदाताओं से प्रत्यक्ष सम्पर्क होता है और उन्हें समीप से समझने का अवसर प्राप्त होता है।
vii. छाटे प्रतिदर्श से समय तथा धन की बचत होती है।
viii. बड़ा प्रतिनिध्यात्मक प्रतिदर्श चुनकर निष्कर्षों की विश्वसनीयता में वृद्धि की जा सकती है।

सर्वेक्षण विधि के दोष (Demerits of Survey Method)

i. सर्वेक्षण विधि पर यह आरोप लगाया जाता है कि इसमें केवल सतही सूचनाएं ही प्राप्त होती हैं। (Kerlinger, 1986)
ii. उचित प्रतिदर्श का चयन न होने पर परिणामों की विश्वसनीयता कम हो जाती है। (Campbell and Katona, 1953)
iii. अध्यनकर्ता की अपनी विचारधारा से प्रभावित होने पर परिणामों की वस्तुनिष्ठता घट जाती है।

iv. कभी-कभी उत्तरदाता सही प्रतिक्रिया व्यक्त नहीं करते हैं। इससे इस विधि की उपयोगिता सीमित हो सकती है।
v. यदि अध्ययनकर्ता अप्रशिक्षित है तो वह सर्वेक्षण कार्य ठीक से नहीं कर पायेगा।
vi. व्यापक पैमाने पर अध्ययन करने पर समय और श्रम काफी अधिक लगता है।

3.5 व्यक्ति इतिहास लेखन विधि (Case History Method)

इस विधि में शोधकर्ता किसी व्यक्ति का, कुछ व्यक्तियों के समूह के जीवन की प्रमुख घटनाओं का एक लेखा-जोखा तैयार करता है। लेखा तैयार करने मे वह घटना विशेष से संबंधित कुछ प्रश्नों को पूछता है, ताकि उसे इस निष्कर्ष पर पहुँचने में सुविधा हो कि कौन-कौन सामाजिक कारकों (Social Factors) तथा किन-किन सामाजिक परिस्थितियों के कारण व्यक्ति को या व्यक्तियों के समूह को अमुक व्यवहार करना पड़ा। इस विधि की सफलता बहुत हद तक शोधकर्ता की व्यक्तिगत कार्यकुशलता तथा बुद्धिमत्ता पर निर्भर करती है।

''व्यक्ति इतिहास विधि'' का उद्देश्य सम्पूर्ण जीवनचक्र अथवा एक व्यक्तिगत इकाई, परिवार, संस्था, सामाजिक समूह या समुदाय के इस चक्र की निश्चित प्रक्रियाओं का अध्ययन करना हैं''।

उदाहरण- एक शोधकर्ता इस विधि द्वारा तलाक संबंधी व्यवहार का अध्ययन करना चाहता है तो इसके लिए वह ऐसे व्यक्तियों का एक समूह तैयार करेगा जिनको कोर्ट द्वारा तलाक की अनुमति मिल गई है। शोधकर्ता इन तलाकशुदा व्यक्तियों से सौहार्द्रपूर्ण संबंध स्थापित कर तलाक से पूर्व के महत्वपूर्ण प्रश्नों के उत्तर प्राप्त कर लेखा-जोखा तैयार करेगा। बाद में शोधकर्ता इतिहास का विश्लेषण करेगा तथा तलाक से संबंधित कारणों का पता लगाएगा। इस प्रकार वह तलाक से सम्बंन्धित कुछ प्राक्कल्पना बना सकने में समर्थ हो पायेगा, जिसकी जांच फिर किसी अन्य विधि जैसे - प्रयोगात्मक विधि द्वारा कर सकता है।

व्यक्ति इतिहास लेखन विधि के प्रमुख गुण

i. जीवन के प्राप्त वास्तविक तथ्यों के आधार प्राप्त निष्कर्ष काफी विश्वसनीय होते हैं। इन तथ्यों से अवगत होने पर अनुसंधानकर्ता की संज्ञानात्मक क्षमता में वृद्धि होती है।
ii. इस विधि से प्राप्त तथ्य समाज मनोवैज्ञानिकों को शोध करने में मदद करता है।

व्यक्ति इतिहास लेखन विधि के प्रमुख दोष

i. प्रायः यह देखा गया है कि व्यक्ति अपने जीवन की घटनाओं के बारे में सही विवरण नहीं देता है। कुछ तथ्यों को वह छिपा लेता है तथा कुछ तथ्यों को बढ़ा-चढ़ा कर बता देता। अतः इन तथ्यों पर आधारित निष्कर्ष बहुत सत्य एवं वैध नहीं हो सकते।
ii. वर्केल तथा कूपर के अनुसार इस विधि का प्रयोग अन्य विधियों के समान (जैसे - प्रयोगात्मक विधि के समान) किसी प्राक्कल्पना की जांच करने में नहीं किया जा सकता है। इन्हीं लोगों के अनुसार ''हम लोग व्यक्ति इतिहास विधि का प्रयोग प्राक्कल्पनाओं को बनाने में करते हैं न कि जांच करने में करते हैं।

व्यक्ति इतिहास लेखन विधि में कुछ अवगुण होते हुए भी इस विधि की लोकप्रियता समाप्त नहीं हुई है। इसका प्रयोग समाज मनोवैज्ञानिकों तथा समाजशास्त्रियों द्वारा अभी भी किया जा रहा है।

3.6 समाजमितीय विधि (Sociometric Method)

यह विधि मोरेनो (Moreno 1934, 1943) द्वारा विकसित की गई है। इसका प्रतिपादन इनकी प्रसिद्ध पुस्तक Who Shall survive में किया गया था। ''यह एक ऐसी विधि है जिसके द्वारा समूह में सदस्यों के बीच दूरी, स्वीकृति एवं विकर्षण का मापन करके सामाजिक प्रस्थिति, संरचना तथा विकास की जांच, वर्णन और मूल्यांकन किया जाता है।''- मोरेनो,1934.

"समूह के सदस्यों में अन्य सदस्यों के साथ होने या सहयोग करने के संम्बंध में उनकी वरीयताओं के बारे में भावनात्मक प्रदत्त प्राप्त करने की विधि को समाजमितीय अध्ययन कहा जाता है"।- सिकोर्ड एण्ड बेकमैन, 1974.

"समाजमिति एक विस्तृत पद है, जिससे समूह में व्यक्तियों के पसंद, संचार एवं अन्तःक्रिया पैटर्न से संबंधित आकड़ों को इकट्ठा करने एवं विश्लेषण करने से कई विधियां सम्मिलित होती हैं। कोई यह कह सकता है कि समाजमिति सामाजिक पसन्द के मापन एवं उसका एक अध्ययन है। इसे समूहों के सदस्यों के आकर्षण एवं विकर्षण को अध्ययन करने का भी एक साधन कहा गया है"। - कर्लिंगर

उपर्युक्त परिभाषाओं से स्पष्ट है कि सामाजमितीय विधि द्वारा सदस्यों के बीच पारस्परिक संबंधों का अध्ययन किया जाता है (Stanley and Hopkins, 1972)। इस विधि में समूह के सदस्य पारस्परिक आकर्षण या विकर्षण की अभिव्यक्ति करते हैं। इसमें समूह का प्रत्येक सदस्य कुछ निश्चित क्रियाओं या कार्यों में साथ रखने के लिए अन्य सदस्यों को नामित करता है (Lindzey and Borgatta, 1954) जैसे - सदस्यों से यह पूछा जाता है कि वे पिकनिक, सिनेमा या खेलकूद में किसका साथ चाहेंगे और किसका नहीं (Kerlinger, 1986)। जिस कार्य के लिए वरीयता माँगी जाती है उसे कसौटी (Criterion) कहते हैं। इस विधि का उपयोग अनेक रूपों में किया गया है। (Proctor and Loomis, 1951 and Jenkins,1948)

उदाहरण - कक्षा में छात्रों से पूछा जा सकता है कि आप उस छात्र का नाम दिए गये कागज के टुकड़े पर लिख दें जिसके साथ खेलना या खाना पसन्द करते हैं। उसी ढंग से कर्मचारियों के समूह में प्रत्येक सदस्य से यह पूछा जा सकता है कि अन्य तीन ऐसे कर्मचारियों का नाम दिये गए कागज के टुकड़े पर लिख दें जो आपकी नजर में अधिक प्रतिष्ठित हैं आदि। समूहों के प्रत्येक सदस्य अपनी पसन्द को दिए गये प्रश्न या कसौटी के आधार पर व्यक्त करता है और इस तरह से अध्ययनकर्ता को समूह के बारे में एक खास तरह के आँकड़े (Data) मिल जाते हैं। बाद में वह इन आँकड़ों का विश्लेषण कर समूह की संरचना तथा सदस्यों के पारस्परिक संबंधों के बारे में एक निश्चित निष्कर्ष पर पहुंचता है।

समाजमितीय अध्ययन की प्रविधियाँ (**Procedure of Sociometric Study**) समाजमिति (Sociometry) विधि से प्राप्त आँकड़ों के विश्लेषण की तीन प्रविधियाँ हैं-

a. समाजमितीय मैट्रिक्स (Sociometric matrix)
b. समाज आलेख (Sociogram)
c. समाजमितीय सूची (Sociometric index)

समाजमितीय मैट्रिक्स-(Sociometric matrix) - मैट्रिक्स संख्या के एक आयताकार प्रदर्शन को कहा जाता है। उदाहरणार्थ -

8x8 समाजमितीय मैट्रिक्स

चुनने वाले	पसन्द किए गये/चुने गये सदस्य							
	A	B	C	D	E	F	G	H
A	0	√	√	0	0	0	0	0
B	√	0	0	0	√	0	0	0
C	√	0	0	0	√	0	0	0
D	0	√	√	0	√	0	0	0
E	0	0	0	√	0	√	0	0
F	0	0	0	0	√	0	0	0
G	0	0	0	0	√	√	0	0
H	0	0	0	0	√	√	0	0
योग	2	2	2	1	5	2	0	0

i. 8 छात्रों का एक समूह है। इन छात्रों को क्रमशः A,B,C,D,E,F,G,H से दर्शा कर (8x8) की मैट्रिक्स उपरोक्तानुसार बनाई गई है।
ii. "तुम किन अन्य छात्रों के साथ खेलना पसन्द करोगे - कसौटी वाक्य है।
iii. प्रत्येक छात्र की पसन्द को मैट्रिक्स में (√) से दर्शाया गया है। । A ने B और C को पसन्द किया है। अन्य किसी को पसन्द नहीं किया है। इसी प्रकार B ने A तथा E को पसन्द किया है। अन्य किसी को पसंद नहीं किया है। मैट्रिक्स में इसी प्रकार अन्य छात्रों की पसंद को (√) दर्शाया गया है।
iv. मैट्रिक्स में प्रत्येक छात्र की पसन्द स्वयं वह छात्र कभी भी नहीं हो सकता। अर्थात्A की पसन्द Aनहीं, B की पसन्द B नहीं दर्शाया जा सकता है आदि।
v. मैट्रिक्स के योग (Row) में कालम E में सबसे अधिक अंक '5' तथा कालम G, H में सबसे कम अंक '0' प्राप्त हुआ है। इसका तात्पर्य यह है कि छात्र E को सबसे अधिक छात्र पसन्द करते

हैं और छात्र G & H को कोई भी छात्र पसन्द नहीं करता है। अतः E को समूह का नायक कहा जायेगा। G & H को कोई वरीयता प्राप्त न होने के कारण बहिष्कृत छात्र कहा जायेगा।

vi. समूह में कुछ व्यक्ति ऐसे होते हैं जो तीन का एक समूह बना लेते हैं, जिसमें वे सभी एक दूसरे को पसन्द करते हैं, किसी अन्य को नहीं और न तो कोई दूसरा ही इन तीनों को पसन्द करता है। इस तरह के समूह को गुट (clique) कहा जाता है। मैट्रिक्स में A,B,C, ने एक गुट का निर्माण किया है।

vii. कुछ व्यक्ति समूह में दो-दो का एक समूह बना लेते हैं जिसमें सिर्फ वे ही दोनों एक दूसरे को पसन्द करते हैं। इस तरह के युग्म (Pair) को पारस्परिक युग्म कहा जाता है। तालिका में A तथा B, DE, EF, & FG पारस्परिक युग्म के उदाहरण हैं।

समूह में कुछ सदस्य ऐसे भी होते हैं जो किसी भी अन्य सदस्य को पसन्द नहीं करते हैं और न तो कोई दूसरा व्यक्ति ही इन्हें पसन्द करता है। इस तरह के सदस्य को अकेला सदस्य कहा जाता है। तालिका में G एक अकेला सदस्य का उदाहरण है।

समाज आलेख (Sociogram)

इस विधि में समूह के सदस्यों द्वारा एक दूसरे के प्रति किए गए पसदों को एक आलेख पर या सादे कागज पर चित्र बना कर दिखलाते हैं। पसन्दों को ठोस तीर रेखाओं से तथा नापसंदगी को खण्डित रेखाओं से दर्शाया जाता है। सदस्यों को उनके नाम या क्रमांक से वृत्त के भीतर किया जा सकता है।

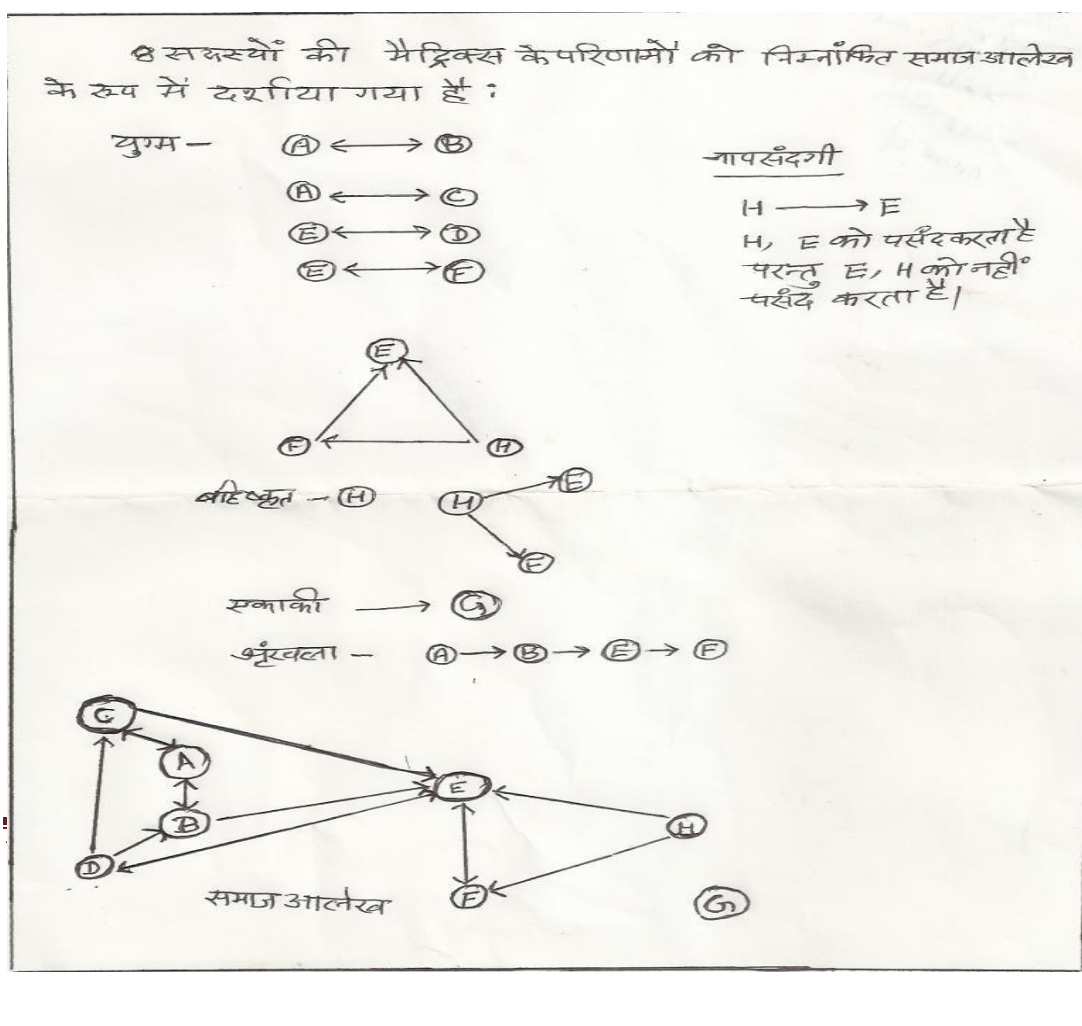

समाजमितीय सूचनांक (Sociometric Index)

समाजमितीय सूचनांक से सदस्यों के अन्तवैयक्तिक संबंधों का अन्दाज लगाया जा सकता है। सूचनांक विश्लेषण द्वारा समूह के सदस्यों के सामाजिक संबंधों का विस्तार तथा समूह की एकता के बारे में भावनात्मक परिणाम प्राप्त होते हैं (Proctor and Loomis, 1951)। सूचनांक विश्लेषण करने के लिए सदस्यों को वरीयता संख्या देने के लिए स्वतंत्र होना चाहिए। वरीयता की संख्या निश्चित नहीं की जानी चाहिए।

i. व्यक्ति का धनात्मक विस्तार (**Positive Expansiveness Person**) से पता चलता है कि समूह में किसी व्यक्ति का कितने लोगों से पारस्परिक संबंध है।

PEP= किसी सदस्य द्वारा दी गयी कुल वरीयता / N-1 =2/8-1=2/7=.3 (A केलिए)

ii. समूह विस्तार (**Group Expansiveness**) - समूह के सदस्य एक दूसरे को जितना अधिक पसन्द करते हैं, समूह का विस्तार (आपसी मेल जोल) उतना ही अधिक माना जाता है।

GEV= सभी सदस्यों के वरीयताओं का योग / N = 14/8=1.75

iii. समूह सशक्तता = युग्मों की संख्या / युग्मों की वास्तविक संख्या
GC= युग्मों की संख्या / N(N-1/2=4/8(8-1)/2 =1/7=0.14

iv. समूह एकता =1/ एकाकी संख्या = 1/1=1

समाजमितीय विधि के गुण (Merits of Sociometric Method)

i. इससे सदस्यों के बीच संबंधों की जानकारी होती है।
ii. छोटे समूहों की रागात्मक संरचना ज्ञात करने की यह महत्वपूर्ण विधि है।
iii. इसके द्वारा अन्तवैयक्तिक के साथ-साथ विकर्षण का भी पता चलता है।
iv. इसका उपयोग अनेक रूपों में किया जाता है।
v. इसके द्वारा समूह सशक्तता, मनोबल, नेतृत्व एवं समूह की प्रभावशीलता इत्यादि का अध्ययन किया जा सकता है।
vi. यदि सदस्य परस्पर अच्छी तरह परिचित हैं तो समूह की आन्तरिक स्थिति के बारे में विश्वसनीय जानकारी अवश्य प्राप्त होती है।

समाजमितीय विधि के दोष (Demerits of Sociometric Method)

vii. इसके द्वारा केवल छोटे समूहों की संरचना का ही अध्ययन कर सकते हैं।

i. यदि सदस्य भलीभाँति परिचित नहीं हैं तो विश्वसनीय परिणाम प्राप्त नहीं होता है।

ii. यदि अध्ययन की पुनरावृत्ति की जाय तो परिणामों में अन्तर की संभावना रहती है। इससे विश्वसनीयता घटती है।

iii. इसके द्वारा समूह का सतही अध्ययन ही हो पाता है, गहन जानकारी नहीं मिल पाती है। क्योंकि सदस्य अपनी पसंदगी-नापसंदगी खुलकर व्यक्त नहीं करना चाहते हैं।

प्रयोगात्मक विधि (Experimental Method)

सामाजिक व्यवहार के अध्ययन में प्रयोगात्मक विधि का प्रयोग किया जाता है। किसी नियंत्रित परिस्थिति में किया गया निरीक्षण प्रयोग कहलाता है। इस प्रकार यह एक वैज्ञानिक पद्वति है। इसे किसी समय दोहराया जा सकता है। इसमें कार्य कारण संबंधों की खोज भी जाती है। किसी कारण या चर में हेर फेर करने से उस सामाजिक व्यवहार में होने वाले परिवर्तनों का अध्ययन इस विधि द्वारा किया जाता है। जिस चर में हेरफेर किया जाता है उसे स्वतंत्र चर कहते हैं तथा इस हेरफेर से प्रभावित होने वाले चर (मानव व्यवहार) को आश्रित चर कहते हैं। परिणाम की विश्वसनीयता के लिए स्वतंत्र चरों का यादृच्छिक प्रतिचयन आवश्यक होता है।

- "प्रयोग वैज्ञानिक जांच की एक विधि है जिसमें स्वतंत्र परिवर्त्य के प्रभाव संबंध की खोज की जाती है"।

  "Experiment is a method of scientific investigation that seeks to discover cause and effect relationships by introducing independent variables and observing their effects on dependent variables" - Rathus, 1984

- "नियंत्रित दशाओं में प्रेक्षण ही प्रयोग है"

  Experiment is observation under controlled conditions –गैरेट

उदाहरण- किसी विश्वसनीय व्यक्ति के प्रभाव से सहशिक्षा के प्रति, व्यक्तियों की मनोवृत्ति में परिवर्तन होता है या नहीं। इस अध्ययन के लिए प्रयोगकर्ता किसी विद्य़ालय के 30 छात्रों का यादृच्छिक रूप से चयन करता है। इन छात्रों में से यादृच्छिक रूप से चयन कर 15-15 छात्रों के दो समूह बनाता है। प्रथम समूह में प्रयोगकर्ता किसी ऐसे व्यक्ति द्वारा सहशिक्षा से संबंधित सूचनाएं या भाषण दिलवाएगा जो उस समूह के लिए विश्वसनीय व्यक्ति हो। दूसरे समूह में प्रयोगकर्ता ठीक वही भाषण या सूचना ऐसे व्यक्ति द्वारा दिलवाता है जो समूह के लिए बिल्कुल ही विश्वसनीय नहीं हो। पहला समूह प्रयोगात्मक समूह तथा दूसरा नियंत्रित समूह कहलाता है। परीक्षण में पाया गया कि प्रयोगात्मक समूह (प्रथम समूह) के प्रयोज्यों की मनोवृत्ति में दूसरे समूह की अपेक्षा अधिक परिवर्तन हुआ है।

प्रयोग विधि के प्रकार (Types of Experimental Methods)

i. **प्रयोगशाला प्रयोग विधि (Laboratory Experiment Method)-** प्रयोगिक अध्ययन किसी प्रयोगशाला में होता है। इसमें प्रयोज्यों की एक सीमित संख्या का यादृच्छिक रूप से चयन कर उसे आवश्यकतानुसार प्रयोगात्मक समूह एवं नियंत्रित समूह में बाँटकर प्रयोगशाला में प्रयोग करते हैं। इसे उद्दीपन-अनुक्रिया शोध भी कहते हैं। जैसे-जब बच्चों को आक्रमणशीलता का दृश्य (स्वतंत्र चर) दिखलाया जाता है तो इसे देखकर उनमें आक्रमणशीलता की वास्तविक स्तर (आश्रित चर) अधिक बढ़ जाती है। (Libert & Baron, 1972)। प्रयोगशाला विधि अधिक विश्वसनीय होती हैं। इसमें आन्तरिक वैधता तो होती है। परन्तु प्रयोज्यों की संख्या सीमित होने तथा कृत्रिमता के कारण वाह्य वैधता नहीं होती है। वाह्य वैधता से तात्पर्य प्राप्त परिणामों के जिन्दगी के वास्तविक हालातों तक सही- सही लागू करने से होता है।

ii. **क्षेत्र प्रयोग विधि (Field Experiment Method) -**इसका प्रयोग भी मनोवैज्ञानिकों द्वारा अधिक किया गया है। भीड़, क्रान्ति, राजनैतिक आन्दोलन कुछ ऐसी सामाजिक समस्यायें हैं जिनका अध्ययन प्रयोगशाला में नहीं किया जा सकता। इस प्रविधि में शोधकर्ता वास्तविक परिस्थिति में जिसे समाज मनोवैज्ञानिकों ने क्षेत्र (field) कहा है किया जाता है। स्वाभाविक परिस्थितियों में स्वतंत्र चर में जोड़ - तोड़ कर अश्रित चर पर प्रभाव को देखा जाता है। अतः प्रयोज्य को प्रयोग का पता न रहने के कारण वास्तविक अनुक्रिया करता है। इसमें वाह्य वैधता अधिक होती है। क्षेत्र में प्रयोग के समय पर्यावरणीय कारक जिन पर प्रयोगकर्ता नियंत्रण नहीं कर पाता है आश्रित चर को प्रभावित करते हैं। जैसे - बारात के बैंड बाजों से प्रयोज्यों का ध्यान बंट जाता है। कार्य की तरफ से ध्यान का बँटना का अर्थ है परिणाम का कुछ सीमा तक प्रभावित हो जाना। क्षेत्र में प्रयोगात्मक एवं नियंत्रित समूह का ठीक ढंग से गठन नहीं हो पाता है। अतः क्षेत्र प्रयोग में परिणाम के सामान्यीकरण का गुण तो होता है, परन्तु उसमें यह गुण प्रायः वहिरंग चरों पर नियंत्रण की कुर्बानी की कीमत पर विकसित होता है।

iii. **स्वाभाविक प्रयोग विधि (Natural Experiment Method)-** मनोवैज्ञानिकों द्वारा इस विधि का उपयोग बहुत कम किया जाता है। ऐसे सामाजिक व्यवहारों का अध्ययन स्वाभाविक प्रयोग विधि से किया जाता है जिनमें स्वतंत्र चर में जोड़ - तोड़ प्रयोगशाला में संभव नहीं होता। इसमें नैतिकता अथवा कानूनी प्रतिबंध भी लगा रहता है। महामारी छुआछूत की बिमारियाँ, स्कूल या कालेज में असफलता, परिवार में किसी महत्वपूर्ण सदस्य की मृत्यु, बाढ़, भूकम्प आदि ऐसे कारक हैं जिनमें मानव व्यवहार पर पड़ने वाले प्रभावों के अध्ययन के लिए प्रयोगकर्ता द्वारा उत्पन्न करना संभव नहीं होता है। यह प्राकृतिक कारण स्वतः उत्पन्न होने पर ही मानव व्यवहार पर पड़ने प्रभाव का अध्ययन करना संभव हो पाता है। इसे ही स्वभाविक प्रयोग विधि की संज्ञा दी जाती है।

यह प्रयोग स्वाभाविक, या वास्तविक परिस्थिति में होता है। अतः वैधता बनी रहती है। किसी नियोजन या किसी विशेष नियंत्रण की आवश्यकता नहीं पड़ती है।

प्राकृतिक घटनाओं को इन्तजार करना पड़ता है। अतः अनिश्चितता बनी रहती है। समय नष्ट होता है। प्रयोज्य कोई भी मिल जाता है। उसे ले लिया जाता है। इससे परिणाम दोषपूर्ण हो जाता है।

गुण-दोष के होने के बावजूद भी सामाजिक मनोवैज्ञानिक प्रयोगशाला प्रयोग को सबसे अधिक पसन्द करते हैं। हाँ , जहाँ इस विधि का प्रयोग करने में पूरी असमर्थता उत्पन्न हो जाती है वहाँ वे क्षेत्र प्रयोग विधि का सहारा लेते हैं। जहाँ तक स्वाभाविक प्रयोग विधि का प्रश्न है, उसकी बारम्बारता इसमें व्याप्त कठिनाइयों के कारण काफी कम है।

अभ्यास प्रश्न

1. विज्ञान का शुभारम्भ____________से होता है।
2. प्रेक्षण विधि में कानों एवं वाणी की अपेक्षा____________का उपयोग किया जाता है।
3. अध्ययन की वह विधि जिसमें स्वतंत्र परिवर्त्य का प्रभाव अश्रित परिवर्त्य पर देखा जाता है उसे____________कहते हैं।
4. समस्या का तात्पर्य____________है।
5. किसी समस्या का प्रस्तावित हल____________को कहते हैं।
6. वस्तुएं जो अनेकानेक रूपों की मात्राओं में घटित होती हैं, उन्हें____________कहते हैं।
7. कारक या दशा जिसका प्रभाव ज्ञात करने के लिए उसे प्रहस्तित किया जाता है____________.कहते हैं।
8. समाजमितीय विधि को ____________ने विकसित किया।
9. सर्वेक्षण एवं क्षेत्र अध्ययन विधियाँ____________हैं।

3.8 सारांश

- प्रेक्षण विधि में व्यक्यिों के व्यवहारों का प्रेक्षण प्रायः एक स्वाभाविक परिस्थिति में प्रेक्षक द्वारा किया जाता है। मनोवैज्ञानिक जब अध्ययन किए जाने वाले चर में जोड़-तोड़ नहीं कर पाते हैं तब इस विधि का सहारा लेते हैं। वैज्ञानिक सूचनाएं उत्पन्न करने की क्षमता के आधार पर प्रेक्षण को अक्रमबद्ध तथा क्रमबद्ध भागों में बाँटा गया। प्रेक्षक की भूमिका के आधार पर प्रेक्षण को सहभागी प्रेक्षण तथा असहभागी प्रेक्षण में बाँटा गया है।
- सर्वेविधि में शोधकर्ता एक प्रतिनिधि प्रतिदर्श लेकर किसी सामाजिक समस्या के प्रति व्यक्तियों की मनोवृत्ति, मत, विचार आदि का अध्ययन साक्षात्कार द्वारा या डाक प्रश्नावली द्वारा करता है। संगणना या याथार्थपूर्ण सर्वेक्षण तथा प्रतिदर्श सर्वेक्षण, सर्वे विधि के दो प्रकार हैं।

- व्यक्ति इतिहास लेखन विधि में अध्ययन किए जाने वाले सामाजिक व्यवहार से संबंधित व्यक्तियों के जीवन की घटनाओं का एक इतिहास तैयार किया जाता है, जिसका बाद में विश्लेषण करके एक निष्कर्ष पर पहुंचा जाता है।
- समाजमितीय विधि मोरनो (Moreno 1934, 1943) द्वारा विकसित की गई है। इसका प्रतिपादन उसकी प्रसिद्व पुस्तक Who Shall Survive में किया गया है। समाजमितीय विधि का प्रयोग करके समाजमनोवैज्ञानिक समूह की संरचना, नेतृत्व तथा समूह में व्यक्तियों के दोस्ताना संबंधों का अध्ययन करते हैं। समाजमितीय मैट्रिक्स, समाजआलेख एवं समाजमितीय सूचनांक ये तीन समाजमितीय अध्ययन की प्रविधियांँ हैं।
- समाज मनोविज्ञान की अनेक विधियों में से प्रयोगात्मक विधि सबसे प्रमुख है। इस विधि में प्रयोगकर्ता कुछ चरों में जोड़-तोड़ करके उनके प्रभाव को दूसरे चर पर देखता है और फिर इन दोनों में कार्य-करण संबंध स्थापित करता है। प्रयोगात्मक विधि के तीन प्रकार हैं- 1. प्रयोगशाला प्रयोगविधि 2. क्षेत्र प्रयोग विधि तथा 3. स्वाभाविक प्रयोग विधि।

3.9 शब्दावली

1. **रिकार्ड -** अभिलेख
2. **संग्रह -** एकत्रित करना
3. **परिवेश -** पर्यावरण
4. **प्रहस्तन -** जोड़-तोड़ परिवर्तन
5. **प्रदत्तों -** आकड़ों
6. **यथोचित -** ठीक
7. **पूर्व नियोजित -** पहले से निर्धारित
8. **सहभागी -** साथ - साथ कार्य करना
9. **सोपान -** चरण
10. **विकर्षण -** दूर हटना

3.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. समाधान का अभाव
2. परिकल्पना/उपकल्पना
3. प्रायोगिक विधि
4. समाधान क अभाव
5. परिकल्पना/उपकल्पना
6. परिवर्त्य

7. स्वतंत्र परिवर्त्य
8. मोरनो
9. समान नहीं

3.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. सिंह, आर0एन0 (2007-2008) आधुनिक सामाजिक मनोविज्ञान, अग्रवाल पब्लिकेशन, आगरा-7
2. सिंह, आर0एन0 (2005) आधुनिक सामाजिक मनोविज्ञान, साहित्य प्रकाशन, आगरा।
3. सिंह, ए0के0 (2002) समाज मनोविज्ञान की रूपरेखा, मोती लाल बनारसीदास, दिल्ली-1
4. सिंह, ए0के0 (2002) उच्चतर समाज मनोविज्ञान, मोती लाल बनारसीदास, दिल्ली-1
5. श्रीवास्तव, डी0एन0 एवं अन्य (2000-2001) आधुनिक समाज मनोविज्ञान, एच0पी0 भार्गव बुक हाउस, आगरा।
6. श्रीवास्तव, डी0एन0 (दसवाँ संस्करण) सामाजिक मनोविज्ञान, साहित्य प्रकाशन, आगरा।
7. त्रिपाठी, आर0बी0 (2002) व्यक्तित्व का मनोविज्ञान, गंगासरन एण्डसन्स, बाँसफाटक, वाराणसी।

3.12 निबन्धात्मक प्रश्न

1. प्रेक्षण विधि का वर्णन करते हुए सहभागी तथा असहभागी प्रेक्षण में अन्तर को स्पष्ट कीजिए।
2. सर्वेक्षण विधि के स्वरूप पर प्रकाश डालते हुए उसका मूल्यांकन कीजिए।
3. व्यक्ति इतिहास लेखन विधि क्या है? इसके गुण-दोष का वर्णन करें।
4. समाजमितीय विधि का आशय तथा उपयोगिता स्पष्ट कीजिए।
5. प्रयोगशालागत प्रयोग विधि से क्या तात्पर्य है ? उदाहरण सहित वर्णन कीजिए।
6. निम्नलिखित में से किसी दो पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए-
    a. सहभागी तथा असहभागी प्रेक्षण में अन्तर।
    b. क्रमबद्व प्रेक्षण एवं अक्रमबद्व प्रेक्षण में अन्तर ।
    c. सर्वेक्षण विधि
    d. समाजमितीय मैट्रिक्स
    e. प्रयोग विधि के प्रकार

इकाई4 -अभिवृत्ति का अर्थ और विशेषताएँ, अभिवृत्ति का निर्माण एवं परिवर्तन

इकाई संरचना-

4.1 प्रस्तावना
4.2 उद्देश्य
4.3 अभिवृत्ति का अर्थ एवं परिभाषाएँ
4.4 अभिवृत्ति की विशेषताएँ
4.5 अभिवृत्ति का निर्माण
4.6 अभिवृत्ति में परिवर्तन
4.7 साराशं
4.8 परिभाषिक शब्दावली
4.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
4.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
4.11 निबन्धात्मक प्रश्न

4.1 प्रस्तावना

सामाजिक अभिवृत्तियों की गणना सामाजिक मनोविज्ञान के बहुत ही महत्वपूर्ण सम्प्रत्ययों में की जाती है। एक समय था जब कुछ मनोवैज्ञानिक सामाजिक मनोविज्ञान एंव अभिवृत्ति के अध्ययन को एक जैसा मानते थे। परन्तु सन् 1940 के आते-आते इस दृष्टिकोण को परिवर्तन आया और सन् 1950 तक समूह गतिकी पर सामाजिक मनोवैज्ञानिक का ध्यान केन्द्रित हो गया। यह प्रभाव भी 1960-70 के दशक में कम हो गया और एक बार पुनः अभिवृत्ति पर होने वाले अध्ययनों की संख्या बढ़ने लगी और तब से लेकर अभी तक यह सम्प्रत्यय मनोविज्ञान में एक महत्वपूर्ण सम्प्रत्यय बना हुआ है। ऐसा इसलिए हैं क्योंकि मानव जीवन में इसका प्रभाव सर्वत्र दिखाई पड़ता है। किसी भी वस्तु, व्यक्ति या विचार के प्रति हमारा व्यवहार कैसा होगा। यह हमारी अभिवृत्तियों पर निर्भर करता है। यही कारण है। कि सामाजिक मनोविज्ञान में अभिवृत्तियों पर व्यापक स्तर पर सैद्धान्तिक एंव आनुभविक कार्य हुए है।

4.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के उपरान्त -

1. अभिवृत्ति का अर्थ क्या है।
2. अभिवृत्ति की कौन-कौन सी विशेषताएँ है।

3. अभिवृत्ति के निर्माण में कौन से कारक सहायक है।
4. अभिवृत्ति परिवर्तन कितने प्रकार से होता है तथा किन कारणों द्वारा अभिवृत्ति में परिवर्तन होता है।

4.3 अभिवृत्ति का अर्थ अभिवृत्ति का अर्थ एवं परिभाषाएँ

अभिवृत्ति शब्द की उत्पत्ति "Aptus" शब्द से हुई है। Aptus शब्द लैटिन भाषा का शब्द है। जिसका अर्थ योग्यता या सुविधा है। अभिवृत्ति को प्रत्यक्ष रूप से देखा नहीं जा सकता है। लेकिन इसके प्रभावों को अनुभव किया जा सकता है। अभिवृत्ति का सम्बन्ध अनुभव और व्यवहार के सगंठन से है। अभिवृत्ति एक ऐसा शब्द है जिसका प्रयोग हम दिन प्रतिदिन की जिन्दगी में हमेशा करते हैं। साधारण अर्थ में अभिवृत्ति व्यक्ति में मन की एक विशिष्ट दशा होती है। जिसके द्वारा वह समाज की परिस्थितियों, वस्तुओं, व्यक्तियों, आदि के प्रति अपने विचार या मनोभाव को प्रकट करता है। जैसे माता-पिता अपनी सयानी बेटी के बारे में एक निश्चित मनोभाव रखते है। उसी तरह से विधवा विवाह तथा बाल विवाह के प्रति भी लोग एक खास मनोभाव रखते है।

- आइजेन्क (Eysenck 1972)- के अनुसार "सामान्यतः अभिवृत्ति की परिभाषा किसी वस्तु या समूह के सम्बन्ध में प्रत्यक्षात्मक बाह्य उत्तेजनाओं की उपस्थिति में व्यक्ति की स्थिति और प्रत्युत्तर तत्परता के रूप् में की जाती है।"
- फिशबीन तथा आजेन(Fishbein&Ajzen]1975) के अनुसार "किसी वस्तु के प्रति संगत रूप से अनुकूल या प्रतिकूल ढंग से अनुक्रिया करने की अर्जित पूर्वप्रवृत्ति को मनोवृत्ति कहते हैं।"
- सिकार्ड एंव बैकमैन (Secord and Backman 1974)- के अनुसार-"अपने परिवेश के कुछ तत्वों के प्रति व्यक्ति के नियमित भाव, विचार एंव कार्य करने की पूर्ववृत्ति को अभिवत्ति कहते हैं।"
- मायर्स (Myers 1988) के अनुसार- "अभिवृत्ति का आशय किसी वस्तु या व्यक्ति के प्रति की जाने वाली उस विद्येयात्मक या निषेधात्मक मूल्यांकनपरक प्रतिक्रिया से है। जिसका प्रदर्शन व्यक्ति के विश्वासों, भावों या निर्दिष्ट व्यवहार के माध्यम से होता है।"

समाज मनोविज्ञानिकों ने अभिवृत्ति को परिभाषित करने के लिए तीन दृष्टिकोणों को अपनाया है-

i. **एक विमीय दृष्टिकोण(One Dimensioned Approach)** -इस दृष्टिकोण के अनुसार अभिवृत्ति एक सीखी गयी प्रवृत्ति है जिसके कारण किसी वस्तु, घटना, व्यक्ति या व्यक्तियों के समूह के प्रति अनुकूल या प्रतिकूल ढंग से व्यवहार करता है।
ii. **द्वि-विमीय दृष्टिकोण (Two Dimensioned Approach)-** इस दृष्टिकोण के अनुसार अभिवृत्ति की व्याख्या करने के लिए दो विमाओं (Dimensions) का सहारा लिया जाता है- भावात्मक संघटक (Affective Component) तथा संज्ञानात्मक संधटक (Cognitive

Component) संज्ञानात्मक संघटक से तात्पर्य किसी घटना का वस्तु के सम्बन्ध में व्यक्ति के विश्वास से होता है। भावात्मक संघटक से तात्पर्य किसी वस्तु घटना या व्यक्ति के प्रतिसुखद या दुखद भाव की तीव्रता से होता है। सुखद भाव के होने पर व्यक्ति, वस्तु या घटना को पसन्द करता है और दुखद भाव के होने पर उसे नापसन्द करता हैं।

iii. **त्रिविमीय दृष्टिकोण (Three Dimensional Approach)-** इस दृष्टिकोण के अनुसार अभिवृत्ति में पहले से चले आ रहे दो संघटकों में एक तीसरे संघटक अर्थात व्यवहारात्मक संघटक (Behavioral) को जोड़ने की व्याख्या की गयी है। इन लोगों का विचार है कि अभिवृत्ति संज्ञानात्मक संघटक, भावात्मक संघटक तथा व्यवहारात्मक संघटक का एक संगठित तंत्र है। इसे आधुनिक समाज मनोवैज्ञानिकों एवं समाजशास्त्रियों ने मनोवृत्ति का ABC माना है। यहाँ A से भावात्मक सघंटक (Affective Component½ B से व्यवहारात्मक संघटक (Behavioral Component), तथा C से संज्ञानात्मक संघटक (Cognitive Component), का बोध होता है।

क्रेच, क्रेचफिल्ड तथा बैलेची (Kretch Crutchfield &Ballachy 1982) के अनुसार किसी एक वस्तु के सम्बन्ध में तीन संघटकों का स्थायी तत्रं अभिवृत्ति कहलाता है- संज्ञानात्मक संघटक यानि वस्तु के बारे में विश्वास, भावात्मक संघटक यानि वस्तु से सम्बन्धित भाव तथा व्यवहारात्मक संघटक यानि उस वस्तु के प्रति क्रिया करने की तत्परता।

सामान्यतया यह कहा जा सकता है कि किसी उद्दीपक के साथ हमारे अनुभव बारम्बार होते हैं तो इस उन उद्धीपकों के प्रति जो भाव, संज्ञान तथा व्यवहारात्मक प्रवृत्तियाँ निर्मित करते हैं वे परस्पर सगंत होती हैं तथा इन तीनों के आधार पर अभिवृत्ति बनती है।

4.4 अभिवृत्ति की विशेषताएँ

- **अभिवृत्ति जन्मजात नहीं होती-** अभिवृत्तियों को किसी घटना, वस्तु, व्यक्ति या समूह आदि के सम्बन्ध में सीखा जाता है। भोजन करना व्यक्ति सीखता है। भोजन के सम्बन्ध में व्यक्तियों की अभिवृत्तियाँ भिन्न-भिन्न होती हैं। अभिवृत्तियों के सीखने में व्यक्ति का ज्ञान, अनुभव और प्रत्यक्षात्मक योग्यताऐं सहायक हैं।
- **अभिवृत्ति अपेक्षाकृत स्थायी होती है-** व्यक्ति सामाजिक प्राणी के रूप में विभिन्न अभिवृत्तियाँ सीखता है और समय-समय पर आवश्यकतानुसार उसमें परिवर्तन भी करता रहता है। जब व्यक्ति अपना पर्यावरण औरसमाज छोड़कर दूसरे समाज और पर्यावरण में चला जाता है तो उसकी अभिवृत्ति भी नये समाज और पर्यावरण के अनुसार बदल सकती है। अभिवृत्तियों मे निरन्तरता और स्थिरता का गुण तो अवश्य होता है,परन्तु पुनर्संगठन होने पर अभिवृत्तियाँ बदल जाती है। यह पुनर्संगठन तभी होता है जब व्यक्ति दूसरे लगभग स्थाई वातावरण और समाज में आता है।

- **अभिवृत्तियाँ व्यवहार को दिशा प्रदान करती हैं-** अभिवृत्तियाँ मानव व्यवहार को प्रभावित ही नहीं करती अपितु उसे एक दिशा भी प्रदान करती हैं। व्यक्तियों में आकर्षण-विकर्षण, घृणा-प्रेम, रूचि-अरूचि, पक्ष-विपक्ष आदि का मूल कारण हमारी अभिवृत्तियॉ ही हैं। एक व्यक्ति की अभिवृत्तियों का ज्ञान हो जाने पर उसके व्यवहार को अपेक्षाकृत सरलता से समझा जा सकता है। अभिवृत्तियों का ज्ञान प्राप्त हो जाने पर व्यक्ति के भविष्य व्यवहार के सम्बन्ध में पूर्व कथन कर सकते हैं, क्योंकि प्रायः व्यक्ति अभिवृत्तियों के निर्देशन में ही कार्य करता है।
- **अभिव्यक्ति का सम्बन्ध हमेशा किसी विषय घटना या विचार आदि से होता है-** अभिवृत्ति की उत्पत्ति होने के लिए कोई न कोई विषय, घटना या विचार का होना अनिवार्य है। जैसे व्यक्ति सती प्रथा, विधवा विवाह, बाल विवाह, अर्न्तजातीय विवाह, भारत-चीन सम्बन्ध आदि के बारे में एक प्रतिकूल या अनुकूल अभिवृत्ति विकसित कर सकता है क्योंकि ये सभी विषय एवं घटनाऐं महत्वपूर्ण हैं।
- **अभिवृत्ति में प्रेरणात्मक गुण होता है-** अभिवृत्ति व्यक्ति को किसी विशेष व्यक्ति, वस्तु, घटना अथवा परिस्थिति आदि के सम्बन्ध में एक विशेष प्रकार के क्रिया करने के लिए प्रेरित कर सकती है।
- **अभिवृत्तियाँ संवेगों और अनुभूतियों से सम्बन्धित होती है-**वस्तु या परिस्थिति के सम्बन्ध में भिन्न अभिवृत्तियों के कारण जब वाद-विवाद होता है तो ऐसी अभिवृत्तियों का सम्बन्ध अनुभूतियों और संवेगों से होता है।

4.5 अभिवृत्ति का निर्माण

अभिवृत्तियों का निर्माण आवश्यकताओं की सन्तुष्टि की प्रक्रिया के सन्दर्भ में होता है। व्यक्ति का समूह सम्बन्ध उसकी अभिवृत्तियों के निर्माण में अधिक महत्वपूर्ण होता है। निम्नलिखित कारक अभिवृत्ति कि निर्माण में सहायक होते हैं-

i. **आवश्यकता पूर्ति-** अभिवृत्ति का निर्माण व्यक्ति की आवश्यकताओं की सन्तुष्टि पर निर्भर करता है। बहुधा यह देखा गया है कि व्यक्ति की जिन आवश्कताओं की सन्तुष्टि होती है उसके प्रति उसमें धनात्मक अभिवृत्ति का निर्माण होता है। परन्तु जिन आवश्यकताओं की सन्तुष्टि नहीं हो पाती है उनके प्रति व्यक्ति में निषेधात्मक अभिवृत्ति का विकास होता है। इसी प्रकार के लक्ष्य प्राप्ति में सहायक व्यक्तियों के प्रति धनात्मक अभिवृत्ति तथा बाधक व्यक्तियों के प्रति निषेधात्मक अभिवृत्ति का विकास होता है। M-B- Smith] J-S-Bruner] R-W-White(1956) ने अपने अध्ययन में देखा कि व्यक्ति की आवश्यकताएँ, रूचियाँ तथा आकाक्षाएं भी अभिवृत्तियों को सार्थक एवं महत्वपूर्ण ढंग से प्रभावित करती हैं।

ii. **दी गयी सूचनाएँ-** आधुनिक समाज में भिन्न-भिन्न माध्यमों से व्यक्ति को सूचनाएँ दी जाती हैं। हम माध्यमों में रेडियों, टेलीविजन, अखबार, पत्रिकाएँ आदि प्रधान हैं। इन माध्यमों से ही गयी

सूचनाओं के अनुसार व्यक्ति अपनी मनोवृत्ति विकसित करता है। इन माध्यमों के अलावा अन्य माध्यमों से भी व्यक्ति को सूचनाएँ मिलती हैं। और इनके अनुसार व्यक्ति अपनी मनोवृत्ति विकसित करता है। जैसे-माता-पिता, भाई बहनों, साथियों एवं पड़ोसियों से भी व्यक्तियों को सूचनाएँ मिलती हैं और इसके अनुसार व्यक्ति अभिवृत्ति का विकास करता है।

iii. **सामाजिक सीखना-** जिस तरह व्यवहार के भिन्न-भिन्न रूपों को व्यक्ति सीखता है। ठीक उसी तरह अभिवृत्ति के विकास में भी सीखने की प्रक्रिया महत्वपूर्ण होती है। समाज मनोवैज्ञानिकों द्वारा किए गए अध्ययनों से यह स्पष्ट हो गया है कि अभिवृत्ति कि निर्माण में सीखने की तीन तरह की प्रक्रियाओं का महत्वपूर्ण स्थान है- क्लासिकी अनुकूलन, साधनात्मक अनुकूलन तथा प्रेक्षणात्मक सीखना।

- **क्लासिकी अनुकूलन *(*Classical Conditioning*)*** -इस सिद्धान्त के अनुसार जब कोई तटस्थ उद्दीपन को अनुक्रिया उत्पन्न करने वाले उद्दीपन के साथ बार-बार उपस्थित किया जाता है। तो वैसी परिस्थिति में कुछ समय बाद तटस्थ उद्दीपन में भी उसी तरह की अनुक्रिया करने की क्षमता उत्पन्न हो जाती है लोर्ह तथा स्टार्टस (Lohr & Staats1973) द्वारा किए गए अध्ययनों से स्पष्ट हो गया है कि क्लासिकी अनुकूलन द्वारा किसी खास भाषा या संस्कृति के लोगों में ही नही बल्कि सभी भाषा-भाषी या संस्कृति में पले व्यक्तियों में इस नियम द्वारा अभिवृत्ति का विकास होता है।
- **साधनात्मक अनुकूलन (Instrumental Conditioning) -** साधनात्मक अनुकूलन का नियम इस बात पर बल डालता है जिस अनुक्रिया के करने से व्यक्ति को पुरस्कार मिलता है। उसे वह सीख लेता है। तथा जिस अनुक्रिया को करने से उसे दण्ड मिलता है उसे वह दोहराना नहीं चाहता है। बच्चों में ठीक वैसी अभिवृत्ति बहुत जल्दी विकसित होती है जैसी उनके माता-पिता की होती है। माता-पिता बच्चों को समान अभिवृत्ति दिखलाने पर पुरस्कार देते हैं। तथा विपरीत अभिवृत्ति दिखलाने पर डॉट फटकार देते हैं। फलस्वरूप वे इस तरह विपरीत अभिवृत्ति नहीं विकसित कर पाते हैं।
- **प्रेक्षणात्मक सीखना-** इस नियम के अनुसार मानव दूसरे की क्रियाओं को एवं उसके परिणामों को देखकर नयी अनुक्रिया करना सीख लेता है। इस नियम के प्रमुख प्रवर्तक बैण्डुरा हैं। समाज मनोवैज्ञानिकों का विचार है कि प्रेक्षणात्मक सीखना द्वारा बच्चे प्रायः वैसी अभिवृत्ति को भी अपने में विकसित कर लेते हैं जिन्हें उनके माता-पिता स्वयं सीखने के लिए प्रोत्साहित नहीं करते हैं। बच्चे वैसी अभिवृत्ति जल्दी विकसित कर लेते हैं, जिसे वे स्वयं अपने सामने होता देखते हैं।

iv. **समूह सम्बंधन**- समूह सम्बंधन से तात्पर्य व्यक्ति का किसी खास समूह से सम्बन्ध कायम करने से होता है। यह निश्चित है कि जब व्यक्ति अपना सम्बन्ध किसी खास समूह से जोड़ता है तो वह उस समूह के मूल्यों, मानदण्डों, विश्वासों, तौर-तरीकों को भी स्वीकार करता है। ऐसी परिस्थिति

में व्यक्ति इन मूल्यों एव मानदण्डों के स्वरूप के अनुसार अपने में एक नयी अभिवृत्ति विकसित करता है। समाज मनोवैज्ञानिकों ने दो प्रकार के समूह सम्बन्धन का अभिवृत्ति विकास पर पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन किया है-

a. **प्राथमिक समूह (Primary Group)-** प्राथमिक समूह वैसे समूह को कहा जाता है जिसमें सदस्यों की संख्या कम होती है तथा जिसमें सदस्यों में घनिष्ठ एंव आमने-सामने का सम्बन्ध होता है। जैसे परिवार, खिलाड़ियों का समूह। प्राथमिक समूह के सदस्यों में अधिक सहयोग, भाईचारा एवं सहानुभूति का गुण पाया जाता हैं। अतः इसका एक सदस्य ठीक वैसी ही अभिवृत्ति विकसित करता है जैसा कि अन्य सदस्यों की होती है। बच्चा जब जन्म लेता है तो उस समय उसका मस्तिष्क एक कोरा कागज होता है। परिवार के अन्य सदस्यों विशेषकर अपने माता-पिता के व्यवहारों एवं अनके साथ हुई अन्तः क्रियाओं से उत्पन्न अनुभवों के अनुसार वह एक खास मनोवृत्ति विकसित करता है।
b. **सन्दर्भ समूह (Reference Group)-** सन्दर्भ समूह से तात्पर्य वैसे समूह से होता है जिसके साथ व्यक्ति आत्मीकरण कर लेता है। चाहे वह समूह का सदस्य औपचारिक रूप से हो या न हो। प्रायः सन्दर्भ समूह व्यवहार एवं चरित्र में ठीक वैसा ही परिवर्तन लाता है जैसा कि इन लक्ष्यों एवं मूल्यों से अपेक्षित है। सन्दर्भ समूह का प्रभाव अभिवृत्ति के निर्माण में काफी अधिक होता है। उदाहरणार्थ जब एक मध्यवर्गीय परिवार का व्यक्ति उच्च वर्गीय परिवार को अपना सन्दर्भ समूह मानता है तो स्वभावतः अपनी अभिवृत्ति में परिर्वतन करके वह एक ऐसी अभिवृत्ति विकसित करेगा जो उच्च वर्गीय परिवार के सदस्यों की अभिवृत्ति के अनुकूल हो जाती है।

v. **सांस्कृतिक कारक (Cultural factors)-**अभिवृत्ति के निर्माण में सांस्कृतिक कारकों का महत्वपूर्ण स्थान है। प्रत्येक संस्कृति का अपना मानदण्ड, मूल्य, परम्पराएँ, धर्म आदि होते हैं। प्रत्येक व्यक्ति का पालन-पोषण किसी न किसी संस्कृति में होता है। फलस्वरूप उसका सामाजीकरण इन्हीं सांस्कृतिक कारकों द्वारा अधिक प्रभावित होता है। व्यक्ति अपनी अभिवृत्ति इन्हीं सांस्कृतिक प्रारूप के अनुसार विकसित करता है एक समाज की संस्कृति दूसरे समाज की संस्कृति से भिन्न होती हैं। इसी सांस्कृतिक भिन्नता के कारण भिन्न-भिन्न संस्कृति के व्यक्तियों की अभिवृत्ति में भिन्नता पायी जाती है। परन्तु एक ही संस्कृति के सभी लोगों की अभिवृत्ति करीब-करीब एक समान होती है। जैसा कि मुस्लिम संस्कृति तथा हिन्दू संस्कृति की तुलना करने पर हमें मिलता है। मुस्लिम संस्कृति में पले व्यक्तियों की अभिवृत्ति मौसेरे व चचेरे भाई-बहनों से शादी के प्रति अनुकूल होती है परन्तु हिन्दू संस्कृति में पले व्यक्तियों की अभिवृत्ति इस तरह की शादी के प्रति प्रतिकूल होती है।

vi. **व्यक्तित्व कारक (Personality Factors)-** व्यक्ति उन अभिवृत्तियों को जल्दी सीख लेता है जो इसके व्यक्तित्व के शीलगुणों के अनुकूल होती है। समाज मनोवैज्ञानिकों ने भिन्न-भिन्न तरह की अभिवृत्तियों जैसे धार्मिक अभिवृत्ति, राजनैतिक अभिवृत्ति, संजातिकेन्द्रवाद

(Ethnocentrisms) में व्यक्तित्व कारकों के महत्व का अध्ययन किया है। फ्रेंच (French] 1947½) ने अपने अध्ययन में धार्मिक अभिवृत्ति के विकास में व्यक्तित्व कारकों के महत्व का अध्ययन किया है। इन्होंने अपने अध्ययन में पाया है कि अधिक संगठित धार्मिक अभिवृत्ति रखने वाले व्यक्तियों ने अपने व्यक्तित्व के गुण एवं दोषों को चेतन रूप से स्वीकार कर लिया जबकि कम संगठित अभिवृत्ति रखने वाले व्यक्ति अपने व्यक्तित्व से सम्बन्धित ऐसे तथ्यों को खुलकर स्वीकार नहीं किया करते। अतः ऐसे लोगों में दमन करने की प्रवृत्ति अधिक थी।

vii. मैकलोस्काई (Mc- Closky] 1958) ने राजनीति में व्यक्तित्व कारकों के महत्व को दिखलाया है। उन्होंने अपने अध्ययन में पाया कि कम पढ़े लिखे तथा मन्द बुद्धि के लोगों में अनुदार अभिवृत्ति अधिक पायी जाती है। इन्होंने अपने अध्ययन के आधार पर यह भी बतलाया है कि अधिक अनुदार अभिवृत्ति रखने वाले व्यक्ति अधिक शक्की, झगड़ालू, अपनी कमजोरी या गलती के लिए दूसरों पर दोष लगाने वाले, वैरपूर्ण, आक्रामक आदि होते हैं।

viii. संजातिकेन्द्रवाद एक ऐसी अभिवृत्ति है जिसमें व्यक्ति अपने समूह या वर्ग को अन्य सभी समूह या वर्ग को अन्य सभी समूहों या वर्गों की तुलना में श्रेष्ठ समझता है। एडोरनो तथा उनके सहयोगियों (Adorno et al, 1950) ने अध्ययन में संजातिकेन्द्रवाद को मापने के लिए मापनी बनायी जिसे एफ-स्केल (F-scale) कहा गया।

ix. **रूढ़ियुक्तियाँ (Stereotype)-**प्रत्येक समाज में कुछ रूढ़ियुक्तियाँ होती हैं, जिनसे व्यक्ति की अभिवृत्ति का विकास प्रभावित होता है। रूढ़ियुक्तियों से तात्पर्य किसी वर्ग या समुदाय के लोगों के बारे में स्थापित सामान्य प्रत्याशाओं तथा सामान्यीकरण से होता है। जैसे हमारे समाज में महिलाओं के प्रति एक रूढ़ियुक्ति है कि वे पुरूषों की अपेक्षा अधिक परामर्शग्राही होती हैं। फलस्वरूप महिलाओं के प्रति एक विशेष प्रकार की अभिवृत्ति सामान्य लोगों में पायी जाती है। उसी तरह से हिन्दू समाज में एक महत्वपूर्ण रूढ़ियुक्ति है कि गाय हमारी माता है परन्तु मुस्लिम समुदाय में इस प्रकार की रूढ़ियुक्ति नहीं पायी जाती है फलस्वरूप गाय के प्रति हिन्दुओं की अभिवृत्ति मुस्लिम की अपेक्षा अधिक अनुकूल होती है। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि रूढ़ियुक्तियों द्वारा व्यक्ति की अभिवृत्ति का निर्माण होता है।

x. **प्रत्यक्षात्मक कारक (Perceptual Factors)-** अभिवृत्तियों के निर्माण में प्रत्यक्षीकरण कारक भी महत्वपूर्ण है। यह सत्य है कि "जाकी रही भावना जैसी प्रभु मूरति देखी तिन जैसी" अर्थात व्यक्ति जैसी उत्तेजनाओं का प्रत्यक्षीकरण करेगा उसी प्रकार से उस व्यक्ति की अभिवृत्तियों का निर्माण होगा। व्यक्ति का प्रत्यक्षीकरण जितना ही शुद्व व स्पष्ट होगा अभिवृत्तियाँ भी उतनी ही अधिक स्पष्ट और स्वस्थ बनेंगी।

4.6 अभिवृत्ति में परिवर्तन (Change in Attitude)

अभिवृत्ति एक प्रवृत्ति है। जो समय-समय पर उसके निर्माण एवं संपोषित करने वाले कारकों में परिवर्तन होने पर परिवर्तित होती रहती है। किसी वस्तु या व्यक्ति के प्रति आज आपकी अभिवृत्ति बदलकर

अनुकूल हो जाय ऐसा नहीं हो सकता है। परन्तु इतना तो ज्ञातत्य है कि परिस्थिति में परिवर्तन होने से व्यक्ति की अभिवृत्ति में परिवर्तन होता है।

समाज मनोवैज्ञानिकों के अध्ययनों से यह स्पष्ट हो गया है कि अभिवृत्ति में परिवर्तन दो प्रकार से होते हैं-

i. **सगंत परिवर्तन (Congruent Change)-**किसी एक व्यक्ति की अभिवृत्ति किसी व्यक्ति या घटना के प्रति अनुकूल से परिवर्तित होकर और अधिक अनुकूल हो सकती है। उसी तरह से उसकी अभिवृत्ति प्रतिकूल से बदल कर और अधिक प्रतिकूल भी हो सकती है। ऐसे परिवर्तन को सगंत परिवर्तन कहते हैं।

ii. **असंगत परिवर्तन (Incongruent Change)-** असगंत परिवर्तन वैसे परिवर्तन को कहा जाता है जिसमें अभिवृत्ति अनुकूल से बदलकर प्रतिकूल या प्रतिकूल से बदलकर अनुकूल हो जाती है। यानि असगंत परिवर्तन में अभिवृत्ति की दिशा बदल जाती है।

    मूसेन (Mussen 1956) के अध्ययनों से यह बात सिद्ध हो चुकी है कि व्यक्तित्व सम्बन्धी कारक अभिवृत्ति परिवर्तन को प्रभावित करते हैं। अभिवृत्ति परिवर्तन इस बात पर निर्भर करता है कि समूह में उस अभिवृत्ति विशेष की क्या स्थिति है।

समाज मनोवैज्ञानिकों तथा समाजशात्रियों द्वारा किए गए अध्ययनों से यह स्पष्ट हो गया है कि अभिवृत्ति परिवर्तन कई कारकों द्वारा प्रभावित होता है-

- **जनमाध्यम एवं सम्प्रेषण (Mass Media and Communication)-** पत्र पत्रिकाएँ, समाचार पत्र, रेडियो, टेलीविजन आदि कुछ प्रचलित जनमाध्यम और सम्प्रेषण के साधन हैं। इन साधनों द्वारा किसी देश के अधिकांश व्यक्तियों तक सूचना पहुँचायी जा सकती है। और इन साधनों द्वारा बार-बार सूचना देकर उनकी अभिवृत्ति में परिवर्तन किया जा सकता है। जैसे सरकार परिवार नियोजन की योजना चला रही है, जन्म नियन्त्रण (Birth Control)का प्रचार कर रही है। इस प्रकार के प्रचार और सम्प्रेषण का प्रभाव यह पड़ रहा है कि लोगों की इस सम्बन्ध में अभिवृत्ति परिवर्तित हो गई है और जन्म नियन्त्रण उचित माना जाने लगा है।

शैरिफ तथा शैरिफ (1951) का कहना है कि आज के अत्यधिक जटिल समाजों में व्यक्ति और समूह दोनों ही सम्प्रेषण की विभिन्न विधियों द्वारा अपनी अभिवृत्तियों का निर्माण करने का प्रयत्न करते हैं। समाचार पत्र, पत्रिकाएँ, पुस्तकें, रेडियो और टेलीविजन लोगों को प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करते हैं।

होभलैण्ड और विश (Hovland&Weiss,1952) ने अपने एक अध्ययन में देखा कि अभिवृत्ति परिवर्तन का सम्प्रेषण का प्रभाव इस बात पर निर्भर करता है कि सम्प्रेषणकर्त्ता की क्या स्थिति और महत्व है। सम्प्रेषणकर्त्ता की स्थिति और महत्व जितना ही अधिक होगा, अभिवृत्ति परिवर्तन उतना ही अधिक प्रभावित होगा।

- **सम्पर्क (Contact)-** पारिस्परिक सम्पर्क के द्वारा भी अभिवृत्तियाँ परिवर्तित हो जाती हैं। जब व्यक्ति एक-दूसरे के सम्पर्क में आते हैं। और साथ-साथ उठने-बैठने, खाने-पीने और रहने का अवसर मिलता है तो ऐसे सम्पर्क से भी अभिवृत्तियाँ परिवर्तित हो जाया करती हैं। गटमैन

(Guttman]1951) ने अपने एक अध्ययन में देखा कि विश्वविधालय के जिन छात्रों में सम्पर्क बहुत अधिक था, उनकी अभिवृत्ति की आवृत्ति 63 थी, दूसरी ओर जिन छात्रों में सम्पर्क बहुत कम था, उनकी अभिवृत्ति की आवृत्ति 40 थी। इससे स्पष्ट है, कि सम्पर्क के कारण अभिवृत्तियों में परिवर्तन होता है।

- **अपेक्षित भूमिका निर्वाह (Required Role Playing)-** कभी-कभी ऐसा होता है कि किसी व्यक्ति को कुछ ऐसी क्रियाएँ या व्यवहार लोगों के सामने करना होता है, जिसे वह नहीं करना चाहता है, क्योंकि ऐसी क्रियाएँ उसकी निजी अभिवृत्ति के विपरीत होती हैं। ऐसा पाया गया है, कि इस तरह की भूमिका करते-करते व्यक्ति की निजी अभिवृत्ति परिवर्तित होकर किए गए व्यवहार के अनुकूल हो जाती है, अर्थात् वह आम अभिवृत्ति के समान हो जाती है।

  भूमिका निर्वाह का प्रभाव भूमिका करने वाले के अलावा भूमिका देखने वाले की अभिवृत्ति पर भी पड़ते देखा गया है। भूमिका देखने वाले व्यक्तियों की सामान्य अभिवृत्ति एवं विशिष्ट अभिवृत्ति में क्रमशः 56.8% तथा 42.9% परिवर्तन हुआ। जैनिस तथा किंग (Janis & King 1954) ने भी अपने अध्ययनों में इसी ढंग का तथ्य पाया। इन लोगों ने भूमिका निवार्ह के प्रभाव के कारण अभिवृत्ति में होने वाले परिवर्तन की व्याख्या करने के लिए दो प्राक्कल्पनाएं भी बनायी है -

  i. **आशुक्रिया प्राक्कल्पना (Improvisation Hypothesis)-**इससे भूमिका निर्वाह की अभिवृत्ति में परिवर्तन इसलिए आता है क्योंकि वह दूसरों को अपने द्वारा व्यक्त किए गए विचारों को स्वीकार कराये जाने के लिए दिये गए तर्कों से स्वयं ही काफी उत्तेजित एवं प्रभावित हो जाता है।
  ii. **सन्तोष प्राक्कल्पना (Satisfaction Hypothesis)-**इससे भूमिका निर्वाह की अभिवृत्ति परिवर्तन इसलिए आता है, क्योंकि उसे भूमिका करने से एक सन्तोष होता है जिससे भूमिका से व्यक्त किया गया मत अपने आप ही पुनर्बलित (Reinforce) होता है फलस्वरूप वह उसी के अनुसार अपनी अभिवृत्ति में परिवर्तन कर लेता है।

व्यक्तित्व परिवर्तन की तकनीकें (Personality Change Technique)- कुछ समाज मनोवैज्ञानिकों ने व्यक्तियों के व्यक्तित्व में परिवर्तन लाकर उनकी अभिवृत्तियों में परिवर्तन लाने की कोशिश की है। मनोवैज्ञानिकों का दावा है कि व्यक्तित्व संरचना में होने वाला परिवर्तन अपेक्षाकृत अधिक स्थायी होता है। एक्सलाईन (Axline,1948) ने ऐसे व्यवहारों को परिमार्जित करने के लिए क्रीड़ा चिकित्सा (Play Therapy) को लाभकारी पाया है उन्होंने अपने अध्ययन में सात वर्षीय कुछ ऐसे गोरे समस्यात्मक बच्चों को लिया जो प्रजातिय अभिवृत्तियों से काफी पीड़ित थे। अर्थात ऐसे बच्चे निग्रो बच्चों के प्रति काफी आक्रामक या असामाजिक व्यवहार करते थे। गौर बच्चों के व्यक्तित्व में क्रीड़ा चिकित्सा द्वारा परिवर्तन लाया गया जिसके बाद यह देखा गया कि निग्रो बच्चों के प्रति उदारता एंव प्रेम

बढ़ गया। इन अध्ययनों से यह स्पष्ट है कि व्यक्तित्व परिवर्तन द्वारा भी व्यक्ति की अभिवृत्ति में परिवर्तन होता है।

i. **सांस्कृतिक कारक(Cultural Factors)-**प्रत्येक समाज की एक संस्कृति होती है। जिसमें व्यक्ति का व्यक्तित्व विकसित होता है। संस्कृति के मूल्यों, मानदण्डों आदि में परिवर्तन होने से पहले से चली आ रही अभिवृत्ति परिवर्तन होकर बदले हुए सांस्कृतिक मूल्यों एवं मानदण्डों के अनुसार विकसित हो जाती है। आधुनिक भारतीय समाज में शिक्षा के कारण सांस्कृतिक मूल्यों में काफी परिवर्तन आया है। शायद यही कारण है कि आजकल एक औसत भारतीय की अभिवृत्ति अनुसूचित जाति के प्रति, औरतों द्वारा नौकरी किए जाने के प्रति, अन्य समान सामाजिक समस्याओं के प्रति उतनी नकारात्मकता नहीं रह गयी जितनी कि 30-40 वर्ष पहले थी। फैल्डमैन (Feldman]1985) तथा मेयर्स(Myers, 1987)ने अपने प्रयोगात्मक अध्ययनों में पाया है कि भिन्न-भिन्न संस्कृति में पले व्यक्तियों की अभिवृत्ति एक ही तरह की सामाजिक समस्या के प्रति एक समान नहीं होती है। और इस सांस्कृतिक विभिन्नता के कारण उनकी अभिवृत्तियों में परिवर्तन का प्रयास भी एक समान परिणाम नहीं देता है। एक खास संस्कृति में पले व्यक्तियों की अभिवृत्ति में किसी एक सामाजिक समस्या के प्रति अभिवृत्ति में परिवर्तन करना आसान होता है,तो दूसरी संस्कृति में पले व्यक्तियों की अभिवृत्ति में उसी सामाजिक समस्या के प्रति अभिवृत्ति में परिवर्तन करना कठिन होता है।

ii. **बाधित सम्पर्क (Enforced Contact)-** बाधित सम्पर्क से तात्पर्य ऐसे सम्पर्क से होता है ,जिसमें व्यक्तियों को ऐसे लोगों के साथ रहने के लिए बाध्य कर दिया जाता है या कुछ समय तक एक साथ रहने का अवसर प्रदान कर दिया जाता है, जिनके साथ वह सचमुच में नहीं रहना चाहते हैं। समाज मनोवैज्ञानिकों ने ऐसे अनेकों अध्ययन किए हैं। जिनमें यह देखा गया है कि बाधित सम्पर्क में व्यक्तियों को एक -दूसरे को समझने का मौका गहन रूप से मिलता है। फलस्वरूप एक-दूसरे के प्रति उनकी अभिवृत्ति में धीरे-धीरे अपने आप ही परिवर्तन आने लगता है। बाधित सम्पर्क से वर्तमान अभिवृत्ति में संगत परिवर्तन तथा असंगत परिवर्तन दोनों ही हो सकते हैं।

iii. **समूह का प्रभाव (Effect of Group)-** समूह के प्रत्येक या अधिकांश सदस्यों को समूह के आदर्शों, मूल्यों, और नियमों आदि के अनुसार कार्य और व्यवहार करना पड़ता है। यदि कोई सदस्य समूह के प्रतिमानों के अनुसार व्यवहार नहीं करता तो उस समूह की सदस्यता से हटा दिया जाता है। बहुधा व्यक्ति उन्हीं अभिवृत्तियों को अर्जित करता है, जो एक समूह के अधिकांश व्यक्तियों में पायी जाती है। लेविन (1952) ने अपने अध्ययनों के आधार पर बताया कि अभिवृत्तियों के परिवर्तन में समूह निर्णय भी महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं। उन्होंने यह देखा कि जिस समूह में सिर्फ व्याख्यान द्धारा सूचना दी गयी उसमें अभिवृत्ति का परिवर्तन 3% हुआ, जबकि गोष्ठी के माध्यम से सामूहिक निर्णय वाले समूह में लगभग 32%अभिवृत्ति में परिवर्तन हुआ।

iv. **स्कूल अनुभव का प्रभाव (Effect of School Experience)-** अभिवृत्ति के परिवर्तन पर शिक्षण संस्थानों का भी प्रभाव पड़ता है। बालक जिस विघालय में पढ़ता है, वहाँ का वातावरण, स्कूल के साथी, अध्यापक उनके व्यवहार को प्रभावित करते हैं। इन सभी लोगों का व्यवहार, व्यक्तित्व और अभिवृत्तियाँ एक बच्चे की अभिवृत्तियों में परिवर्तन भी कर सकती हैं और नयी अभिवृत्तियों का निर्माण भी। न्यूकाम्ब (1943) के अनुसार जिन व्यक्तियों का अधिकांश समय कालेज में बीता, उनकी केवल अभिवृत्तियाँ ही परिवर्तित नहीं हुई बल्कि उनकी विकसित अभिवृत्तियों में स्थायित्व भी रहा।

v. **प्रभावी या विश्वासोत्पादक संचारण (Persuasive Communication)-** विश्वासोत्पादक संचारण से तात्पर्य वैसे तथ्यों एवं सूचनाओं का संचारण से होता है। जो सुनने वाले व्यक्तियों के लिए आकर्षक एवं मनमोहक होते हैं। और व्यक्ति की मनोवृत्ति पर सीधा असर करते हैं। प्रायः ऐसे संचारण को जब व्यक्ति स्वीकार करता है, तो इससे उसकी अभिवृत्ति में परिवर्तन आ जाता है। इस ढंग का विश्वासोत्पादक संचारण हमें टेलीविजन एवं रेडियो द्वारा किए गए विज्ञापनों से मिलता है।

हौभलैण्ड, जैनिस तथा केली(Hovland Janis & Kelley,1953)द्वारा चले विश्वविद्यालय में अभिवृत्ति परिवर्तन में विश्वासोत्पादक संचार के महत्व को दिखलाने के लिए काफी प्रयोग एवं शोध किए । उनके अनुसार विश्वासोत्पादक संचारण द्वारा अभिवृत्ति में होने वाला परिवर्तन चार कारकों पर निर्भर करता है-संचारण का स्रोत्र, संचारण का विषय एवं विशेषता, संचारण का अध्ययन, तथा श्रोतागण की विशेषता।

vi. **संचारण का स्रोत्र (Sources of Communication)-**अभिवृत्ति परिवर्तन करने के लिए जो तथ्य एवं सूचना दूसरे व्यक्ति को दी जा रही है, उसका स्रोत्र कैसा है, इस पर अभिवृत्ति की परिवर्तनशीलता अधिक निर्भर करती है। सूचना देने वाले व्यक्ति में कुछ खास विशेषताएँ होती हैं जैसे विश्वसनीय, आकर्षकता, शक्ति आदि प्रमुख हैं।

- **विश्वसनीय संचारक-** इस तरह के संचारक विशेषज्ञ एवं भरोसे योग्य दोनों ही होते हैं। फलस्वरूप उनकी द्वारा दी गयी किसी प्रकार की सूचना पर श्रोतागण अधिक विश्वास करते हैं। और अपनी अभिवृत्ति में आसानी से परिवर्तन करते हैं।

- **आकर्षक संचारक-** आकर्षकता में दो पक्ष महत्वपूर्ण हैं- शारीरिक सुन्दरता तथा समानता। जब सुन्दर लोगों द्वारा कोई तर्क या सूचना दी जाती है। तो उसका प्रभाव सुनने वाले व्यक्ति की मनोवृत्ति पर अधिक पड़ता है। समानता आकर्षकता का दूसरा महत्वपूर्ण पक्ष है। हम लोग वैसे व्यक्तियों को पसन्द करते हैं जो हमारे समान होते हैं। फलस्वरूप वे हमारे लिए आकर्षक होते हैं। और उनके द्वारा दी गयी सूचनाओं द्वारा अभिवृत्ति में आसानी से परिवर्तन आ जाता है।

vii. **संचारण विषय एवं विशेषता(Content, Characteristics & Communication)-** व्यक्ति को दी गयी सूचनाओं का स्वरूप एवं विशेषता भी एक महत्वपूर्ण कारक है, जिस पर अभिवृत्ति परिवर्तन निर्भर करता है। सूचना विशेषता के तीन महत्वपूर्ण पक्ष हैं-

- **डर उत्पन्न करने वाली सूचना-** जब कोई तथ्य या सूचना ऐसी होती है,जिससे व्यक्ति में ऋणात्मक संवेग जैसे डर उत्पन्न होता है और साथ-साथ उस डर को कम करने का उपाय भी उनके सामने होता है, तो इससे मनोवृत्ति में परिवर्तन आसानी से होता है। जैसे ,सरकार की ओर से सिगरेट पीने वालों को यह चेतावनी दिया जाना कि सिगरेट पीने से फेफड़े में कैंसर होता है। डर उत्पन्न होने पर व्यक्ति की अभिवृत्ति में परिवर्तन होता है।
- **एक तरफा बनाम दो-तरफा संचारण-** जब संचारक दी जाने वाली सूचना के सिर्फ एक पक्ष अर्थात् धनात्मक या ऋणात्मक पर बल देता है, तो इसे एक तरफा संचारण कहा जाता है। परन्तु यदि सचांरक सूचना के दोनों पक्षों पर बल डालता है अर्थात उसकी लाभ और हानि दोनों श्रोता को बता देता है तो इसे दो तरफा संचारण कहा जाता है। परिणाम में देखा गया है कि दो तरफा सूचना द्वारा अभिवृत्ति में असंगसत परिवर्तन अधिक हुए जबकि एक तरफा सूचना द्वारा अभिवृत्ति में संगत परिवर्तन अधिक हुए।
- **प्राथमिकता बनाम अभिनवता**-किसी व्यक्ति या घटना के बारे में पहले दी गई सूचनाएँ उसी व्यक्ति या घटना के बारे में बाद में दी गयी सूचनाओं की अपेक्षा अभिवृत्ति में जल्दी परिवर्तन लाती हैं। क्योंकि पहले ही गयी सूचनाओं का आधार व्यक्ति के मस्तिष्क पर अपेक्षाकृत अधिक होता है। पहले दी गयी सूचना के प्रभाव को प्राथमिकता तथा बाद में दी गयी सूचना के प्रभाव को अभिनवता की संज्ञा दी जाती है।

viii. **संचार का माध्यम-** समाज मनोवैज्ञानिकों ने संचार के दो तरह के माध्यमों के प्रभावों का अध्ययन किया है-

- **सामूहिक बनाम व्यक्तिगत प्रभाव-** अभिवृत्ति परिवर्तन के लिए सामूहिक माध्यम से दी गयी सूचनाएँ व्यक्तिगत रूप से दी गयी सूचनाओं की अपेक्षा कम प्रभावकारी होती हैं। क्योंकि सामूहिक माध्यम (रेडियों, टेलीविजन,अखबार) में संचारक एवं सामान्य व्यक्तियों के बीच में सीधा सम्बन्ध नहीं होता है, जबकि व्यक्तिगत प्रभाव में संचारक प्रत्येक व्यक्ति से व्यक्तिगत रूप से मिलकर अपनी बात को समझाता है।
- **सक्रिय अनुभव बनाम निष्क्रिय ग्रहण-** जब व्यक्ति कोई अनुभव सक्रिय रूप से प्राप्त करता है तो इससे अभिवृत्ति में परिवर्तन तेजी से होता है। परन्तु जब कोई अनुभव दीवार पर कुछ लिखा देखकर या इश्तहार पढ़कर प्राप्त होता है तो इससे व्यक्ति की अभिवृत्ति में परिवर्तन कम होता है।

ix. **श्रोता की विशेषताएँ**- समाज मनोवैज्ञानिकों द्वारा किए गए अध्ययनों से यह स्पष्ट हो गया है कि कुछ लोग अनुनयन (Persuasion) किए जाने पर अपनी अभिवृत्ति में तुरन्त परिवर्तन कर

लेते हैं तथा कुछ लोगों पर प्रभावी अनुनयन का कोई भी असर नहीं पड़ता है जैसे जिन व्यक्तियों में आत्म सम्मान अधिक होता है उनमें आत्म विश्वास अधिक होता है। फलस्वरूप ऐसे व्यक्तियों पर अनुनयन का प्रभाव कम पड़ता है। और इनकी अभिवृत्ति में परिवर्तन आसानी से नहीं होता है।

अभ्यास प्रश्न

1. किसी वस्तु या व्यक्ति के प्रति अनुकूल या प्रतिकूल रूप में व्यवहार करना कहा जाता है-
    a. सज्ञांन
    b. मनोभाव
    c. अभिवृत्ति
    d. भाव
2. अभिवृत्ति प्रणाली में कितने संघटक होते हैं -
    a. 3
    b. 2
    c. 4
    d. 6
3. अभिवृत्ति और जनमत दोनों समान है- (हाँ /नहीं)
4. अभिवृत्ति निर्माण में सीखने की प्रक्रियायें है-
    a. क्लासिकल अनुकूलन
    b. साधनात्मक अनुकूलन
    c. प्रेक्षणात्मक अनुकूलन
    d. उपरोक्त सभी
5. अभिवृत्ति एक अर्जित प्रवृत्ति है। (सत्य/ असत्य)
6. अभिवृत्ति अपेक्षाकृत अस्थायी होती है। (सत्य/ असत्य)
7. अभिवृत्ति व्यवहार को दिशा प्रदान करती है। (सत्य/ असत्य)
8. अभिवृत्ति के निर्माण में सांस्कृतिक कारक सहायक होते हैं । (सत्य/ असत्य)
9. संगत परिवर्तन में अभिवृत्ति अनुकूल से परिवर्तित होकर प्रतिकूल हो जाती है।
10. परिस्थतियों में परिवर्तन होने पर व्यक्ति की अभिवृत्ति में परिवर्तन होता है।

4.7 सारांश

अभिवृत्ति किसी वस्तु, व्यक्ति, विचार अथवा उत्तेजना या किसी के सम्बन्ध में भी हो सकती है। अभिवृत्तियाँ किसी व्यक्ति के अनुभव, ज्ञान एवं प्रत्यक्षात्मक प्रक्रियाओं का स्थायी संगठन है और प्रत्युत्तर तत्परता का मिला जुला रूप है। अनुभव, ज्ञान और प्रत्यक्षात्मकता में परिर्वतनों के साथ-साथ अभिवृत्ति

भी परिवर्तित हो जाती है। अभिवृत्तियों का व्यक्ति के समायोजन में महत्वपूर्ण स्थान है। सामाजिक जीवन में ही इन अभिवृत्तियों का निर्माण होता है। अभिवृत्तियों का बाह्य-प्रेक्षण सम्भव नहीं है। परन्तु व्यक्ति के व्यवहार के आधार पर अनके बारे में अनुमान लगाया जा सकता है। अभिवृत्तियाँ अर्जित व्यवहार प्रणालियाँ हैं, यद्यपि एक बार अर्जित हो जाने पर अपेक्षाकृत स्थायी रूप धारण कर लेती हैं, परन्तु उचित परिस्थितियाँ उत्पन्न करके इनमें परिवर्तन किया जा सकता है।

4.8 शब्दावली

1. **आत्मीकरण** - पहचान, अभिज्ञान
2. **दमन** - भावना को दबा देना
3. **प्रत्याशाओं** - अपेक्षा, विश्वासपूर्ण उम्मीद
4. **प्रतिमानों** - नियम के अनुसार
5. **अनुनयन** - राजी होना, विश्वास

4.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. अभिवृत्ति
2. 3
3. नहीं
4. उपरोक्त सभी
5. सत्य
6. असत्य
7. सत्य
8. सत्य
9. सत्य
10. असत्य

4.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. डॉ० अरूण कुमार सिंह, समाज मनोविज्ञान की रूपरेखा, मोतीलाल बनारसी दास।
2. डॉ० आर. एस. सिंह, आधुनिक सामाजिक मनोविज्ञान, अग्रवाल पब्लिकेशन्स, आगरा।
3. डी. एन श्रीवास्तव, जगदीश पाण्डे, रणजीत सिंह, आधुनिक समाज मनोविज्ञान,हरि प्रसाद भार्गव आगरा।
4. डॉ० बी0 एन. खान, डॉ० किरन गुप्ता, आधुनिक समाज मनोविज्ञान, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा।

4.11 निबन्धात्मक प्रश्न

1. अभिवृत्ति का अर्थ तथा उनकी विशेषताएँ स्पष्ट कीजिए।
2. अभिवृत्ति के निर्माण व विकास को प्रभावित करने वाले कारकों का वर्णन कीजिए।
3. अभिवृत्ति के संगत परिवर्तन तथा अंसगत परिवर्तन में अन्तर बताएं। उन कारणों का वर्णन करें जिनसे अभिवृत्ति में इन दोनों तरह से परिवर्तन सम्भव होते हैं।
4. अभिवृत्ति परिवर्तन में विश्वासोत्पादक संचार के महत्व की व्याख्या करें।
5. अभिवृत्ति परिवर्तन के मुख्य निर्धारकों का वर्णन कीजिए।

इकाई 5 - पूर्वाग्रह का अर्थ एवं विशेषताएँ, पूर्वाग्रह के प्रकार

इकाई संरचना-

5.1 प्रस्तावना
5.2 उद्देश्य
5.3 पूर्वाग्रह का अर्थ एवं परिभाषा
5.4 पूर्वाग्रह की उत्पत्ति
5.5 पूर्वाग्रह की विशेषता
5.6 पूर्वाग्रह के प्रकार
5.7 सारांश
5.8 शब्दावली
5.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
5.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
5.11 निबन्धात्मक प्रश्न

5.1 प्रस्तावना

किसी व्यक्ति या समूह के प्रति बिना समुचित ज्ञान प्राप्त किये, जब पहले से ही विचार या धारणा निर्धारित कर ली जाती है,तो उसे समाजशास्त्रीय भाषा में पूर्वाग्रह, पूर्वधारणा या पक्षपात कहा जाता है। वस्तुतः हमारी सामाजिक जीवन में अनुकूल और प्रतिकूल दोनों ही भावनाएँ स्वाभाविक रूप से पायी जाती है। जिन व्यक्तियों या समूहों से हमें स्नेह या सहानुभूति होती है। उनके प्रति हमारे हृदय में अनुकूल भावनाएँ पनपती हैं और तदनुसार ही उनके प्रति हमारे व्यवहार प्रतिमान होते हैं। जिन व्यक्तियों और समूहों से हमें घृणा होती है या जिन्हें हम अवहेलना की दृष्टि से देखते हैं, उनके प्रति हमारे हृदय में प्रतिकूल भावनाएँ पनपती हैं, तदनुसार ही उनके प्रति हमारे व्यवहार प्रतिमान होते हैं। इस अनुकूलता और प्रतिकूलता के पीछे अधिकाशतः कोई तार्किक कारण नहीं होते बल्कि कोई भी संवेगात्मक मनोभाव हमारे अन्दर पनप जाते हैं। प्रायः उन्हीं के अनुरूप हम सहयोग और द्वेष, घृणा और प्रेम का व्यवहार करने लगते हैं। अतः समूहों और बाह्य समूहों के प्रति हमारे इन्हीं मनोभावों तथा व्यवहार-प्रतिमानों को पूर्वाग्रह कहा जाता है। चूँकि अन्तः समूहों के प्रति हमें कुछ लगाव होता है। अतः उनके बारे में पूरी तरह जानकारी किए बिना ही हम हर तरह से उनकी सहायता करने को तत्पर रहते हैं। अर्थात उनके प्रति हमारा पूर्वाग्रह अनुकूल या सकारात्मक ही अधिक होता है। इसी प्रकार किसी बाह्य समूह के प्रति हमारे हृदय में नकारात्मक या प्रतिकूल मनोभाव हो सकता है और बिना समुचित जानकारी किये या बिना किसी तार्किक औचित्य के

हम पहले से ही ऐसी धारणा बना सकते हैं कि बाह्य समूह के सदस्यों से कोई निकट सामाजिक सम्बन्ध स्थापित करना अनुचित है।

प्रत्येक समाज या वर्ग के लोग एक दूसरे के बारे में उसकी जाति, भाषा, रंग, लिंग, धर्म या नागरिकता के आधार पर अनेक प्रकार की अनुकूल या प्रतिकूल धारणाएँ बना लेते हैं। उनकी धारणा सही है या गलत, इस पर ध्यान नहीं देते हैं। ऐसी धारणाओं को पूर्वाग्रह एवं रूढियुक्तियाँ कहा जाता है। इनके कारण समाज में तनाव, झगड़ा, दंगा अथवा प्रजातीय भेदभाव की समस्याएँ उत्पन्न होती रहती हैं। पूर्वाग्रह के कई रूप होते हैं-कुष्ठ रोगियों के प्रति पूर्वाग्रह, उग्रवादियों के प्रति पुर्वाग्रह, अनुसूचित जातियों के प्रति पूर्वाग्रह, उन व्यक्तियों के प्रति पूर्वाग्रह जो छोटे हैं या मोटे हैं आदि। पूर्वाग्रह की भावना व्यक्ति या वस्तु के प्रति हमें पक्षपातपूर्ण बनाती है जो कि किसी विशेष समूह के साथ व्यक्ति के तादात्मीकरण पर आधारित होती है। विश्व का प्रत्येक समाज, चाहे वह पूर्वी हो या पश्चिमी, विकसित हो या अविकसित, आधुनिक हो या आदिम, किसी न किसी रूप में पूर्वाग्रह का शिकार है। पूर्वाग्रह में तर्क एवं बुद्धि का आधार तो न्यूनतम मात्रा में होता है किन्तु प्रचलित सामाजिक विचारधारा और धारणाओं की मात्रा का समावेश अधिक होता है।

इस इकाई में आपको पूर्वाग्रह की अवधारणा, उसकी विशेषतायें एवं प्रकारों से अवगत कराया जायेगा।

5.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप-

1. पूर्वाग्रह के विषय में जान सकेंगे।
2. पूर्वाग्रह की उत्पति कैसे हुई इसके बारे में जान सकेंगे।
3. पूर्वाग्रह की क्या विशेषताएँ है इसको भी जान पाएंगे।
4. पूर्वाग्रह कितने प्रकार का होता है यह भी जान पाएंगे।

5.3 पूर्वाग्रह का अर्थ एवं परिभाषा

पूर्वधारणा अंग्रेजी के 'Prejudice' शब्द का रूपान्तर चुना गया है जिसकी उत्पति लैटिन भाषा के शब्द 'Prejudicium' से हुई है। 'Prejudicium' में दो शब्द हैं- Pre का अर्थ है पूर्व तथा judicium का अर्थ है निर्णय। पूर्व निर्णय का अर्थ उस निर्णय से है जो बिना किसी तार्किक आधार के लिया गया है। Prejudice शब्द के अनेक हिन्दी रूपान्तर हैं जैसे पूर्वधारणा, पूर्वनिर्णय, पूर्वाग्रह, पूर्व निर्धारण निर्णय, पूर्वग्रहित निर्णय तथा पक्षपात आदि। पूर्वग्रहित निर्णय शब्द ऑक्सफोर्ड शब्दकोश के अनुसार सही प्रतीत होता है। ऑक्सफोर्ड शब्दकोश के अनुसार सही प्रतीत होता है ऑक्सफोर्ड डिक्शनरी में Prejudice का अर्थ "Preconceived opinion bias against or in favor of] person or thing" है। अर्थात पूर्वग्रहित निर्णय पक्ष और विपक्ष दोनों में हो सकता है।

- कुप्पूस्वामी (1961) के अनुसार, “आज कल पूर्वग्रहित निर्णय का अर्थ केवल यही नहीं है कि यह समय से पूर्व लिया गया निर्णय है, अपितु यह भी कि इसमें प्रतिकूल अभिवृत्ति है।“
- सेकर्ड तथा बैकमैन(Secord &Backman,1974)के अनुसार “पूर्वाग्रह एक मनोवृत्ति है जो व्यक्ति को किसी समूह यह उसके सदस्यों के प्रति अनुकूल या प्रतिकूल ढंग से सोचने, प्रत्यक्षण करने, अनुभव करने तथा क्रिया करने के लिए पहले से ही तत्पर बना देती है।”
- फेल्डमैन (Feldman, 1985) के अनुसार, “किसी समूह के सदस्यों के प्रति ऐसी स्वीकारात्मक निर्णय या मूल्यांकन को पूर्वाग्रह कहा जाता है, जो मुख्यतः उस समूह की सदस्यता पर आधारित होता है न कि सदस्यों के विशेष गुणों पर।”
- मेयर्स(Mayers 1987) के अनुसार “पूर्वाग्रह किसी समूह उसके सदस्यों के प्रति एक अनुचित नकारात्मक मनोवृत्ति को कहा जाता है।
- बेरोन तथा बर्न (Baron And Byrne],1977) के अनुसार ‘‘समाज मनोविज्ञान में पूर्वाग्रह को सामान्यतः किसी प्रजातीय, मानवजातीय या धार्मिक समूह के सदस्यों के प्रति एक नकारात्मक मनोवृत्ति के रूप परिभाषित किया जाता है।‘‘
- किम्बल यंग के अनुसार “एक व्यक्ति की दूसरी व्यक्ति के प्रति पूर्वनिर्धारित अभिवृत्तियाँ अथवा विचार, जो किसी संस्कृति द्वारा उपलब्ध मूल्यों एवं अभिवृत्तियों पर आधारित होते हैं, पूर्वाग्रह कहलाते हैं”।
- जेम्स ड्रेवर की दृष्टि में “र्वाग्रह एक ऐसी अभिवृत्ति है जो प्रायः संवेग से समायुक्त है और जो कुछ विशेष प्रकार के कार्यों और वस्तुओं के प्रति, कुछ विशेष व्यक्तियों तथा विशेष सिद्धान्तों के प्रति प्रतिकूलता अथवा अनुकूलता प्रकट करती हो”।
- आगबर्न ने लिखा है कि “पूर्वाग्रह जल्दबाजी में लिया गया एक ऐसा निर्णय या मन है जिसमें उचित परीक्षण नहीं किया गया है”।
- क्रेच एंव क्रचफील्ड के अुनसार ‘‘पूर्वाग्रह का तात्पर्य उन अभिवृत्तियों एवं विश्वासों से है,जो विषयों को शुभ अथवा अशुभ घोषित कर देती हैं। शैरिफ एवं शैरिफ के मत में “समूह पूर्वाग्रह किसी अन्य समूह तथा उनके सदस्यों के प्रति एक समूह विशेष सदस्यों की, उनके अपने स्थापित आदर्श नियमों से प्राप्त की जाने वाली नकारात्मक अभिवृत्तियाँ हैं”।

सभी परिभाषाओं का अध्ययन कर आपनेपाया होगा कि समाज मनोवैज्ञानिकों ने पूर्वाग्रह को एक मनोवृत्ति माना है। कुछ लोगों ने इसे स्वीकारात्मक मनोवृत्ति तथा कुछ लोगों ने नकारात्मक मनोवृत्ति माना है। नकारात्मक मनोवृत्ति के रूप में पूर्वाग्रह होने पर व्यक्ति दूसरे समूह के सदस्यों के प्रति घृणा दिखलाता है एवं विवेकहीन विचारों को व्यक्त करता है। स्वीकारात्मक मनोवृत्ति के रूप में पूर्वाग्रह होने पर व्यक्ति दूसरे समूह के सदस्यों के प्रति अत्यधिक स्नेह एवं प्यार दिखलाता है,तथा परिस्थिति विपरीत होने पर भी

विवेक पूर्ण विचारों को ही व्यक्त करता है। पूर्वाग्रह चाहे स्वीकारात्मक हो या नकारात्मक यह एक मनोवृत्ति है और मनोवृत्ति होने के नाते इसमें मनोवृत्ति के तीनों संघटक (component) मौजूद होते हैं-

- संज्ञानात्मक संघटक (Cognitive Component)
- भावात्मक संघटक (Affective Component)
- व्यवहारात्मक संघटक (Behavioral component)

पूर्वाग्रह की स्थिति में संज्ञानात्मक संघटक से तात्पर्य किसी व्यक्ति या वस्तु के प्रति उन विचारों एवं विश्वासों से होता है, जो एक तरफा तथा अनुचित होते हैं। पूर्वाग्रह के भावात्मक संघटक में दूसरे समूह के सदस्यों का नकारात्मक मूल्याकंन किया जाता है। जिसमें प्रायः घृणा, डर, विद्वेष का भाव होता है। पूर्वाग्रह का व्यावहारिक संघटक में व्यक्ति दूसरे समूह के सदस्यों के प्रति खुलकर अप्रिय व्यवहार करता है।

पूर्वाग्रह के अर्थ के बारे में समाज मनोवैज्ञानिकों में विभिन्नता होने के बावजूद भी इसका प्रयोग एक समान ढंग से किया गया है। उपरोक्त वर्णन के आधार पर हमें पूर्वाग्रह के बारे में निम्न तथ्य मिलते हैं-

पूर्वाग्रह एक तरह की मनोवृत्ति है, जो तथ्यों पर आधारित नहीं होती है। पूर्वाग्रह को कुछ समाज मनोवैज्ञानिकों ने सिर्फ नकारात्मक मनोवृत्ति के रूप में परिभाषित किया है, परन्तु कुछ समाज मनोवैज्ञानिकों ने इसे नकारात्मक मनोवृत्ति के अलावा स्वीकारात्मक मनोवृत्ति के रूप में परिभाषित किया है। इस मतभेद के बावजूद भी हमें यह मानने में कोई हिचकिचाहट नहीं होती है कि अधिकतर समाज मनोवैज्ञानिकों ने इसका प्रयोग नकारात्मक मनोवृत्ति के रूप् में किया है। इस तरह से पूर्वाग्रह का प्रभाव व्यक्ति के चिन्तन, प्रत्यक्षण, भाव एवं व्यवहार सभी पर पड़ता है।

5.4 पूर्वाग्रह की उत्पत्ति

i. **पूर्वाग्रह और बाल्यकाल-** पूर्वाग्रहों का जन्म बाल्यकाल से होना प्रारम्भ हो जाता है। बालक जैसे सामाजिक तथा सास्ंकृतिक पर्यावरण में रहेगा, उसी समाज तथा सस्ंकृति में प्रचलित पूर्वाग्रह बालक के समाजीकरण की प्रक्रिया के साथ-साथ उसमें आते चले जायेंगें।

ii. **पूर्वाग्रह एवं सामाजिक मानक-** सामाजिक मानकों का पूर्वाग्रह की रचना एवं उनके स्थायित्व में बड़ा महत्वपूर्ण कार्य रहता है। जिस समाज में सामाजिक संरचना इस प्रकार की होगी कि एक वर्ग दूसरे वर्ग से ऊँचा माना जाता है तो उस समूह में ऊँच-नीच की भावनाओं को उस समाज के लोगों में बनाए रखने के लिए उसी प्रकार के मानक एवं मूल्य भी निर्धारित हो जाते हैं।

iii. **पूर्वाग्रह एवं प्रजातीय लक्षण-** पूर्वाग्रह का एक प्रमुख आधार प्रजातीय शारीरिक विशेषताएँ भी मानी जाती हैं। इसमें कोई सन्देह नही है कि मानव जाति में मानवशास्त्र के सिद्धान्तों के आधार पर विभिन्न प्रकार की शारीरिक भिन्नताएँ पायी जाती हैं,किन्तु इन शारीरिक विभिन्ताओं के आधार पर मानव में ऊँच-नीच, छोटे-बड़े, बुद्धिमान-मूर्ख आदि होने का अन्तर अवैज्ञानिक माना गया है। किन्तु इन्हीं आधारों पर विश्व के अनेक समाजों में अनेक प्रकार के पूर्वाग्रह

प्रचलित हैं, जिनके कारण विश्व में विभिन्न प्रकार के पारस्परिक द्वेष, तनाव, संघर्ष एवं युद्ध होते रहते हैं।

iv. **पूर्वाग्रह और भय का वातावरण-** जब किसी एक समूह और दूसरे समूह में अथवा दो पक्षों में पारस्परिक भय का वातावरण उत्पन्न हो जाता है तो इस भय के वातावरण के कारण भी अनेक प्रकार के पूर्वाग्रहों को उत्पन्न होने का झूठा-सच्चा आधार मिल जाता है।

v. **पूर्वाग्रह और सामाजिक परम्पराएँ-** पूर्वाग्रहों का एक विशेष आधार समाज की प्रचलित परस्पराएँ, विश्वास, रीतिरिवाज और रूढ़ियाँ अदि भी होते हैं।

पूर्वाग्रह की रचना के मनोवैज्ञानिक आधार-

i. **आत्म-सम्मान की भावना-** प्रत्येक मानव में मनोवैज्ञानिक रूप से आत्म सम्मान की भावना पायी जाती है। अपने आत्म-सम्मान को बनाए रखने का प्रत्येक मानव प्रयास करता है। वह अपने को अन्य लोगों की अपेक्षा किसी न किसी आधार पर श्रेष्ठतर सिद्ध करना चाहता है। पूर्वाग्रह उत्पत्ति का यह एक मनोवैज्ञानिक आधार है।

ii. **असामान्य व्यक्तित्व-** समाज में भिन्न-भिन्न प्रकार के व्यक्तित्व वाले व्यक्ति होते हैं, जैसे समाज के कुछ व्यक्ति अन्य व्यक्तियों की अपेक्षा अधिक बुद्धिमान होते हैं, कुछ शरीर में लम्बे तो कुछ छोटे होते हैं, कुछ व्यक्ति शिक्षित तो कुछ अशिक्षित है, कुछ स्त्री है तो कुछ पुरूष होते हैं आदि । इस व्यक्तित्व की विभिन्नता का मनोवैज्ञानिक प्रभाव यह पड़ता है कि एक प्रकार के व्यक्तित्व वाले व्यक्ति अन्य प्रकार के व्यक्तित्व वाले व्यक्ति की अपेक्षा अपने को अधिक उच्च, श्रेष्ठ एवं प्रगतिशील मानते हैं।

iii. **सामाजिक जटिल परिस्थितियाँ-** सामाजिक जटिल परिस्थितियाँ भी समाज में पूर्वाग्रहों को बराबर जन्म देती रहती हैं। जब कभी समाज में कोई भी परिस्थिति उत्पन्न हो जाती है,जिसका सरलीकरण समूह की शक्ति से परे होता है, तो उस अवस्था में उस समूह में विभिन्न प्रकार के पूर्वाग्रह उत्पन्न होने की सम्भावना रहती है। इस प्रकार के पूर्वाग्रह प्रायः पूंजीपति एवं श्रमिक वर्ग में उत्पन्न हो जाया करतें हैं।

iv. **मानव जीवन में अथवा सामाजिक जीवन में असफलता-** मानव को अपने जीवन में जब किसी भारी असफलता का मुख देखना पड़ता है, तो उस समय भी जीवन में अनेक प्रकार की पूर्व धारणाएँ अथवा पूर्वाग्रह उत्पन्न हो जाया करते हैं। यदि हम किसी वकील को अपने मुकदमे में रखकर हार जाते हैं तो हम हर दशा में वकील को ही दोषी बताऐंगे और अपने मुकदमे की कमजोरियों को ध्यान नहीं देंगे।

v. **जन्मजात स्वभाव का सिद्धान्त-** प्रत्येक समाज में एक स्वाभाविक प्रेरणा पायी जाती है कि वह अपनी जाति के लोगों से प्रेम करता है। उन्हीं में घुल-मिल जाता है और उसी समूह में अपनी नातेदारी भी स्थापित करता है। इस प्रकार उस समूह के अतिरिक्त अन्य समूहों के प्रति उनके मन में अनेक प्रकार के पूर्वाग्रह उत्पन्न हो जाते हैं।

vi. **प्रजातीयता का सिद्धान्त-** प्रजातीयता का सिद्धान्त भी मनोवैज्ञनिक दृष्टि से पूर्वाग्रह को जन्म देता है। जैसे यूरोप के निवासियों के चमड़ी का रंग सफेद और अफ्रीका के नीग्रो लोगों का रंग काला होता है। ये दोनों जातियाँ प्रजातीयता के आधार पर भिन्न-भिन्न हैं। इन्हीं प्रजातीय भिन्नताओं ने यूरोप निवासियों के मन में काले लोगों की अपेक्षा अपने को श्रेष्ठतर मानने की प्रबल धारणा बन गयी है।

vii. **मनोविश्लेषणवादी विचार-** मनोविश्लेषणवादी विद्वानों के अनुसार मानव अपने स्वयं के अनुभव के आधार पर कुछ समूहों अथवा व्यक्तियों के प्रति अपने पूर्वाग्रह बनाता है। जिन व्यक्तियों से उसे सुखद अनुभव होते हैं। उनके प्रति अच्छे पूर्वाग्रह और जिनके प्रति कटु अनुभव होते हैं, उनके प्रति विरोधी पूर्वाग्रह उनके मन में स्थायित्व ग्रहण कर लेते हैं।

5.5 पूर्वाग्रह की प्रमुख विशेषताएँ

पूर्वाग्रह की प्रमुख विशेषताएँ निम्नांकित हैं-

- **पूर्वाग्रह अर्जित होता है-**पूर्वाग्रह एक तरह की मनोवृत्ति है, अतः आधुनिक समाज मनोवैज्ञानिकों ने इसे एक अर्जित प्रक्रिया माना है। बच्चा जब जन्म लेता है तो उसमें दूसरे समूह, धर्म, जाति के लोगों के प्रति न तो स्वीकारात्मक पूर्वधारणा होती है और ना ही नकारात्मक पूर्वधारणा होती है। वह परिवार के सदस्यों से अन्य समूह, धर्म या जाति के लोगों के बारे में सुनता है। उसी के अनुसार वह उनके बारे में पूर्वधारणा विकसित कर लेता है।
- **पूर्वाग्रह विवेकहीन होता है-**पूर्वाग्रह का स्वरूप कुछ ऐसा होता है कि इसमें विवेक तर्क एवं संगति का कोई स्थान नहीं होता है। अनेक प्रकार के विरोधी तथ्य एवं सूचनाओं को व्यक्ति के सामने प्रस्तुत करने पर भी वह अपनी पूर्वधारणा या पूर्वाग्रह पर अडिग रहता है।
- **पूर्वाग्रह में संवेगात्मक रंग होता है-**पूर्वाग्रह में सवेगात्मक रंग होते हैं और वे किसी समूह, धर्म जाति के लोगों के या तो अनुकूल होते हैं, या प्रतिकूल होते हैं। यदि पूर्वाग्रह अनुकूल हुए तो व्यक्ति दूसरे समूह, धर्म या जाति के लोगों के प्रति अधिक स्नेह एवं प्रेम दिखलाता है। परन्तु यदि पूर्वाग्रह प्रतिकूल हुए तो व्यक्ति दूसरे जाति, धर्म या समूह के व्यक्तियों के प्रति घृणा, द्वेष आदि संवेग के रूप में दिखलाता है। पूर्वाग्रह चाहे अनुकूल हो या प्रतिकूल, उसमें संवेगात्मक रंग निश्चित रूप से होता है।
- **पूर्वाग्रह निर्णय चेतन और अचेतन होते हैं-**पूर्वाग्रह निर्णय यद्यपि चेतन और अचेतन दोनों स्तर पर निर्मित होते हैं। फिर भी यह देखा गया है कि अधिकांश व्यक्ति कभी भी जान बूझ कर यह निर्णय नहीं लेता है कि विशेष जाति के रूप में लोग बुरे हैं या उनसे घृणा करनी चाहिए। अतः व्यक्ति को न तो याद रहता है और न पता चलता है कि किस प्रकार उसमें पूर्वाग्रहित निर्णय उत्पन्न हुए हैं। इसलिए कहा जाता है कि पूर्वाग्रहित निर्णय अधिकाशतः अचेतन होते हैं।

- **पूर्वाग्रह का सम्बन्ध वास्तविकता से नहीं होता है** -पूर्वाग्रहित निर्णय और वास्तविकता में कोई सम्बन्ध नहीं होता है, क्योंकि इन पूर्वाग्रहित निर्णयों के आधार पर वास्तविक जानकारी प्राप्त नहीं की जा सकती है। सत्य केवल इतना ही है कि प्रत्येक व्यक्ति में पूर्वग्रहित निर्णय होते हैं और वह इसके अनुसार व्यवहार भी करता है। सत्यता पूर्वग्रहित निर्णयों के अनुसार भी हो सकती है और इसके विपरीत भी हो सकती है, जैसे निग्रो को तुच्छ दृष्टि से देखा जाता है,उन्हें अच्छा खिलाड़ी नहीं समझा जाता है,परन्तु वह खेल में श्रेष्ठता प्राप्त कर रहे हैं।
- **पूर्वाग्रह दृढ़ एवं स्थिर सामान्यीकरण पर आधारित होते हैं** -पूर्वाग्रह में दृढ़ता पायी जाती है तथा यह स्थिर सामान्यीकरण पर आधारित होते हैं। पूर्वग्रहित व्यक्ति के सामने उसके विश्वास एवं विचार के विरोधी विचार भी यदि प्रस्तुत किये जाते हैं तो वह अपनी पूर्वधारणा में परिवर्तन लाने के लिए तैयार नहीं होता है। इसका कारण यह है कि पूर्वधारणा का सम्बन्ध कुछ दृढ़ एवं स्थिर विचारों , अंधविश्वासों एवं सामाजिक रीति-रिवाजों से होता है न कि विवेक तर्क एवं बुद्धि से। स्पष्ट है कि पूर्वधारणा काफी दृढ़ एवं स्थिर विचारों पर आधारित होती है।
- **पूर्वग्रहित निर्णय हमें सन्तोष प्रदान करते हैं** -पूर्वग्रहित निर्णय यद्यपि सामाजिक दृष्टि से हानिकारक हैं, फिर भी समूह के लोगों में यह इसलिए विद्यमान है कि क्योंकि इनमें हम सभी को सन्तोष मिलता है। कभी पूर्वग्रहित निर्णयों के माध्यम से हम श्रेष्ठता की भावना का अनुभव कर सन्तोष प्राप्त करते हैं। तो कभी पूर्वग्रहित निर्णयों से हिंसा और शत्रुता का बहाना मिलता है। इसलिए सन्तोष का अनुभव प्राप्त होता है।
- **पूर्वाग्रह पूणरूपेण किसी समूह की ओर संचालित होते हैं** -पूर्वाग्रह की एक विशेषता यह भी है कि इसका निशाना कोई विशेष व्यक्ति नहीं होता है, बल्कि पूरे समूह की ओर संचालित होता है। अमेरिका में प्रजातीय पूर्वधारणा से ग्रसित गोरे द्वारा एक निग्रो के प्रति इसलिए घृणा की जाती है क्योंकि वह विशेष समुदाय अर्थात निग्रो समुदाय का सदस्य है। वैयक्तिक गुणों में श्रेष्ठता के बावजूद जो भी व्यक्ति उस समूह का सदस्य होगा, उसके प्रति उच्च जाति के लोगों में उसी प्रकार का प्रतिकूल पूर्वाग्रह होगा।
- **पूर्वाग्रह प्रायः नकारात्मक होते हैं-** पूर्वाग्रह प्रायः नकारात्मक होते हैं। इसी कारण लोगों मे दूसरे वर्ग या समुदाय के प्रति असहिष्णुता,आक्रामकता, न्याय तथा मानवता का अभाव पाया जाता है।
- **पूर्वाग्रह में मानवता का अभाव होता है-** पूर्वाग्रह के कारण लोगों में मानवता की भावना घटती है। लोग दूसरों के प्रति उदासीनता, आक्रामकता, शत्रुता तथा अस्वीकार्यता का व्यवहार करते हैं। साम्प्रदायिक दंगे आज इसी कारण अधिक होते हैं।
- **पूर्वाग्रह तथा ऐतिहासिक घटनाएँ-** कभी-कभी मानव इतिहास में ऐसी महत्वपूर्ण घटनाएँ घटित हो जाती हैं जो मानव की आधार भूत विचारधाराओं, विश्वासों एवं अभिवृत्तियों को एक

नवीन रूप प्रदान करती हैं। ऐसी एक महान घटना कोलम्बस द्वारा अमेरिका महाद्वीप की खोज थी। अमेरिका महाद्वीप की खोज के उपरान्त अनेक यूरोपीय प्रजातियों एवं राष्ट्रों के लोग वहाँ गये और उन्होंने वहाँ की आदिवासी जातियों पर अपना प्रभुत्व स्थापित कर लिया। इस प्रकार यूरोप के गोरे लोगों ने अमेरिका के नीग्रों को अपने अधीन कर अपनी प्रजातीय श्रेष्ठता की झूठी एवं अवैज्ञानिक आधार पर घोषणा कर दी। आगे चलकर यूरोपीय लोगों का यह एक विशेष पूर्वाग्रह बन गया कि वह काले लोगों से मानव जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में श्रेष्ठतर हैं।

- **पूर्वाग्रहों का युक्तिकरण-**अपने-अपने पूर्वाग्रहों के समर्थन, प्रचलन एवं स्थायित्व के लिए प्रायः प्रत्येक मानव-समूह अपनी-अपनी युक्तियाँ अवश्य खोज लेता है, जैसे भारत में उच्चजाति के लोगों ने अपनी श्रेष्ठता सिद्ध करने के लिए यह उदाहरण दिया कि ब्राह्मण जाति का जन्म ब्रह्मजी के मुख से और शूद्रों का जन्म ब्रह्मजी के चरणों से हुआ है। इसी प्रकार की अवैज्ञानिक युक्तियों के आधार पर अफ्रीका के गोरे लोग वहाँ के नीग्रो लोगों से अपनी प्रजातीय श्रेष्ठता के ढोल पीटते हैं।
- **पूर्वाग्रह और अवैज्ञानिकता-**पूर्वधारणाओं और अवैज्ञानिक विचार धाराओं का घनिष्ठ सम्बन्ध है। पूर्वधारणायें प्रायः प्राचीन परम्पराओं, विचारधारओं एवं अशिक्षित युग की देन हैं। पूर्वधारणाओं की उत्पत्ति मानव-मस्तिष्क में बाल्यकाल से ही प्रारम्भ होती है। एक बालक जैसी धारणाएँ, विचार, विश्वास एवं अभिवृत्ति अपने माता-पिता से सुनता एवं देखता है, वही वह स्थायी रूप् से ग्रहण करता चला जाता है, और अन्त में वैसे ही विचार, विश्वास और धारणाएँ उस बालक के व्यक्तित्व के अभिन्न अंग बन जाते हैं।

5.6 पूर्वाग्रह के प्रकार

i. **प्रजातीय पूर्वाग्रह-** ये वे पूर्वाग्रह हैं जिनमें एक प्रजाति के सदस्य दूसरी प्रजाति की तुलना में अपने को श्रेष्ठ समझते हुए उसके प्रति अनादर, अवहेलना, घृणा आदि की भावनाओं का पोषण करते हैं। प्रजातीय पूर्वाग्रह तब बड़े व उग्र रूप में व्यक्त होते हैं, जब एक प्रजाति के सदस्य अपने को दूसरी प्रजाति के सदस्यों की तुलना में शारीरिक एवं मानसिक गुणों में श्रेष्ठ समझते हैं और दूसरों को बड़ा निम्नस्तरीय मानते हुए उनके साथ सामाजिक-आर्थिक-राजनीतिक सभी प्रकार के भेद-भाव करते हैं, स्वयं को श्रेष्ठ समझने वाली प्रजाति यदि शासक वर्ग की होती है तो वह दूसरी प्रजाति की अपनी प्रजा पर अत्याचार करने से भी नहीं चूकती।

   प्रजातीय पूर्वाग्रह के मुख्य रूप से चार आधार बताए गये हैं- उत्तम वर्ण या रंग, रक्त की श्रेष्ठता, मानसिक योग्यता एवं सांस्कृतिक श्रेष्ठता। लेकिन वैज्ञानिक दृष्टि से इन आधारों की कोई भी प्रामाणिकता सिद्ध नहीं जा सकती। केवल रंग के आधार पर कोई व्यक्ति या प्रजाति उत्तम बने इसे वैज्ञानिक आधार पर सिद्ध नहीं किया जा सकता। इसी प्रकार मानव रक्त चार समूहों में विभाजित है और इन रक्त समूहों में उत्तम का कोई प्रश्न नहीं उठता। मानसिक योग्यता का आधार भी ठोस नही है, क्योंकि यदि समान पर्यावरण में विभिन्न प्रजाति के लोगों को रखा जाय तो उनके बुद्धि

स्तर में कोई विशेष अन्तर नहीं पाया जायेगा। बुद्विमान व्यक्ति केवल गोरी जाति में ही होते है ऐसा नहीं है। सांस्कृतिक श्रेष्ठता का गीत भी व्यर्थ है। गोरी प्रजातियाँ सास्कृतिक आधार पर अपनी श्रेष्ठता की बात करती हैं, लेकिन वे भूल जाती हैं कि जब यूरोप असभ्य था, तब भारत, चीन और मिश्र की सभ्यताएँ बुहत अधिक विकसित हो चुकी थीं।

ii. **धार्मिक पूर्वाग्रह-**यद्यपि सभी धर्म सिद्धान्त रूप में धार्मिक सहिष्णुता और मानव एकता पर बल देते हैं लेकिन व्यवहार में विभिन्न धर्मावलम्बियों में एक दूसरे के प्रति पूर्वाग्रह दिखायी देते हैं। विभिन्न धर्मों के लोग दूसरे धर्मावलम्बियों को प्रायः अन्धविश्वासी, अज्ञानी आदि समझने की पूर्वधारणाओं से ग्रस्त होते हैं। प्रत्येक धर्म में एक अलौकिक शक्ति पर विश्वास किया जाता है और उस धर्म के लोग यह विश्वास करके चलते हैं कि उनकी यह अलौकिक शक्ति सर्वश्रेष्ठ शक्ति है जिसकी तुलना में दूसरे धर्मों के भगवान गौड़ हैं। इसी तरह प्रत्येक धर्म के अनुयायी अपने धार्मिक आचार-विचारों, सिद्धान्तों, आदर्शों , धार्मिक कर्मकाण्डों को दूसरे धर्मों के आचार विचारों आदि से अच्छा समझते हैं। इस प्रकार के मनोभावों के फलस्वरूप विभिन्न धार्मिक जन समूहों में एक दूसरे के प्रति असहयोग, अवहेलना यहाँ तक कि घृणा आदि भाव पनपते हैं और अनेक बार तो भारी तनाव तथा सघंर्ष की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। धर्म पर आधारित पूर्वाग्रहों के कारण ही कई बार धर्म के नाम पर खूनी सघंर्ष हुए हैं।

iii. **जातीय पूर्वाग्रह-** भारत एक ऐसा देश है जिसमें बहुत जाति के लोग रहते हैं। प्रायः देखा गया है कि एक जाति के लोग दूसरे जाति के लोगों को अपने से तुच्छ व गिरा हुआ समझते हैं तथा उनके प्रति भेदभाव दिखलाते हैं। इसे ही जाति पूर्वाग्रह की संज्ञा दी जाती है। जाति पूर्वाग्रह का एक लाभ यह होता है कि एक जाति के लोग आपस में एक-दूसरे को एक समाज का सदस्य मानते हैं, चाहे वे किसी क्षेत्र, व्यवसाय या वर्ग के हों । फलस्वरूप उनमें अपनी जाति के नाम पर एकता बनी रहती है। इसका स्पष्ट परिणाम यह होता है कि उनका पूर्वाग्रह अपनी जाति के लोगों के प्रति स्वीकारात्मक होता है,परन्तु अन्य जाति के लोगों के प्रति नकारात्मक होता है और उनके प्रति शत्रुता एवं विद्वेष बढ़ जाता है जिसकी अधिक मात्रा होने से जातीय दंगो का जन्म होता है।

iv. **राजनीतिक पूर्वाग्रह-** हम देखते हैं कि एक राजनीतिक दल के सदस्य अपने दलीय आदर्शों और सिद्धान्तों को दूसरे दल के आदर्शों की तुलना में अच्छा बताते हैं। अपने को दूसरे की तुलना में अधिक नैतिक और स्वागत योग्य घोषित करते हैं। सत्तारूढ़ दल के सदस्यों में राजनीतिक पूर्वाग्रह प्रायः कटु होता है और उस दल के सदस्य अपने हितों की रक्षा के लिए विरोधी दलों के सदस्यों के प्रति पक्षपात करने का कोई अवसर सम्भवतः नहीं चूकते।

v. **आर्थिक वर्ग में पूर्वाग्रह -** श्रमिकों में पूँजीपति वर्ग के विरूद्ध और इसी प्रकार पूँजीपतियों में श्रमिकों के विरूद्व, जो पूर्वाग्रह देखने को मिलते हैं,वो सभी को ज्ञात हैं। श्रमिक प्रायः यह धारणा बनाये रखते हैं कि उनके सभी कष्टों के लिए पूँजीपति वर्ग अत्तरदायी है। इसी प्रकार पूँजीपति या मिल मालिक इस पूर्वाग्रह से ग्रस्त होते हैं कि श्रमिक उनके सच्ची हितैषी कभी नहीं हो सकते। जब दोनों ही पक्ष एक दूसरे को अपना शुभचिन्तक न मानने का पूर्वाग्रह रखते हैं तो दोनों के बीच

मनोमालिन्य का प्रसार होता है और फलस्वरूप औद्योगिक संघर्ष, आर्थिक शोषण आदि जोर पकड़ते हैं।

vi. **भाषा पूर्वाग्रह -**भारत में बहुत जाति के लोग रहते हैं, उनकी भाषा भी अलग-अलग होती है, जिससे भाषा पूर्वाग्रह का जन्म होता है। इस तरह की पूर्वधारणा में एक भाषा बोलने वाले सभी व्यक्ति अपने को एक समूह का सदस्य मानकर आपस में कुछ एकता दिखलाते हैं तथा दूसरी भाषा बोलने वाले लोगों को अपने से तुच्छ समझकर उनके प्रति कुछ विद्वेष भाव भी दिखलाते हैं। कुछ ऐसे पूर्वाग्रह बन जाते हैं कि अपनी भाषा बोलने वाला व्यक्ति अपना और दूसरी भाषा बोलने वाला व्यक्ति पराया मालूम पड़ता है। अभी भी दक्षिण भारत के लोग हिन्दी भाषा के प्रति एक नकारात्मक मनोवृत्ति बनाये रखे हुए हैं और उन्हें इस बात का डर हमेशा बना रहता है कि कहीं इस भाषा को हम पर थोप न दिया जाय।

vii. **यौन पूर्वाग्रह -**आधुनिक युग में विभिन्न समाजों में आज भी पुरूषों एवं महिलाओं में भेदभाव देखा जाता है। आज भी यौन आधारित भूमिकाओं का प्रभाव दिखायी पड़ता है। आज भी हर संस्था, संगठन एवं संसद में भी पुरूष अधिक हैं। वे महिलाओं को बराबरी का दर्जा देने में बाधा डाल रहें है। यह प्राचीन परम्परा आज भी बनी हुई है। पुरूषों को अधिक योग्य, सक्षम, विचारवान एव प्रभावशाली माना जाता है। महिलाओं को शान्त, एकान्तप्रिय कम सामाजिक होने की सलाह दी जाती है। यदि कोई महिला योग्य निकल जाती है तो अपवाद मान लिया जाता है। अर्थात लिगं आधारित पूर्वाग्रह का प्रभाव समाज में आज भी पाया जाता है।

viii. **साम्प्रदायिक पूर्वाग्रह -**साम्प्रदायिक पूर्वाग्रह से तात्पर्य किसी विशेष सम्प्रदाय या समुदाय के प्रति दूसरे समुदाय के लोगों की मनोवृत्ति है। भारत में तीन समुदाय अर्थात हिन्दू समुदाय, मुस्लिम समुदाय एवं सिक्ख समुदाय की मनोवृत्तियाँ एक-दूसरे के प्रति तीक्ष्ण हैं। फलस्वरूप इनमें से एक समुदाय के लोंगों के प्रति अधिक पूर्वाग्रहित हैं। समय-समय पर हिन्दू-मुस्लिम में साम्प्रदायिक दंगे तथा पजांब में हिन्दू एवं सिक्खों में साम्प्रदायिक दंगे इसी तरह के पूर्वाग्रह के ही उदाहरण हैं।

ix. **क्षेत्रीय पूर्वाग्रह-**प्रायः यह देखा गया है कि शहर में रहने वाले व्यक्ति अपने को अधिक बुद्धिमान, चतुर एवं आधुनिक समझते हैं,तथा देहात या गाँव में रहने वाले व्यक्ति को वे मन्दबुद्धि एवं नासमझ तथा बेवकूफ समझते हैं। इतना ही नहीं, शहरी क्षेत्र में रहने वाले व्यक्तियों के भी पूर्वाग्रह आपस में कुछ अलग-अलग होते हैं। दिल्ली और मुम्बई जैसे महानगरों में रहने वाले व्यक्तियों को छोटे शहर में रहने वाले व्यक्ति प्रायः अधिक धूर्त खुदगर्ज समझते हैं।

x. **गन्ध पर आधारित पूर्वाग्रह-** विभिन्न मनुष्यों के शरीर की गन्ध में थोड़ा बहुत अन्तर होता है। कई बार ऐसे उदाहरण देखने को मिलते हैं कि किसी गन्ध विशेष से किसी व्यक्ति विशेष को चिढ़ सी उत्पन्न हो जाती है। और जब कभी उस गन्ध वाला कोई भी व्यक्ति या व्यक्ति समूह उसे मिलता है तो उसके हृदय में उस व्यक्ति के प्रति प्रतिकूलता के भाव जड़ जमाए रखते हैं। जो व्यक्ति सिगरेट या बीड़ी की गन्ध पसन्द नहीं करते, वे ऐसे लोगों के पास बैठने से हिचकते हैं जो धूम्रपान करते हैं। प्रायः ऐसे लोगों में धूम्रपान करने वाले व्यक्ति के प्रति पूर्वाग्रह बन जाता है।

और वे उन्हें कुछ अच्छी निगाह से नहीं देखते। लम्बे समय तक सम्पर्क में रहने पर गन्ध पर आधारित पूर्वाग्रह में परिवर्तन भी आ सकता है। किम्बल यंग ने अपने अध्ययन में देखा कि जो श्वेत लोग हब्शियों के साथ लम्बे समय तक सम्पर्क में रहे उन्हें हब्शियों के शरीर की गन्ध अच्छी लगने लगी। वेशभूषा आदि पर आधारित पूर्वाग्रह पर भी यही बात लागू होती है।

xi. **वेशभूषा पर आधारित पूर्वाग्रह**-वेशभूषा पर आधारित पूर्वाग्रह भी समाज में प्रदर्शित होते हैं। जैसे-शहरी लोग गाँव वालों की वेशभूषा देखकर हँस पड़ते हैं और उन्हें गंवार तथा असभ्य भी कहते हैं। दूसरी तरफ गाँव वाले शहर की वेशभूषा के कारण उन्हें शर्म-हया से विहीन, नक्शे बाज तथा नग्नता-पसन्द कहते पाए जाते हैं। इसी प्रकार विभिन्न प्रकार के प्रान्तों के पहनावे में भी अन्तर देखा जाता है। उसे देखकर लोग एक-दूसरे की हँसी उड़ते हैं।

xii. **वर्ण पर आधारित पूर्वाग्रह-** वर्ण पर आधारित पूर्वधारणाएँ सब स्थानों पर पायी जाती हैं। काले-गोरों का भेद इत्यादि वर्ण पर ही आधारित पूर्वधारणा है। जब वर्ण पर आधारित पूर्वधारणा बन जाती है तो व्यक्तियों के व्यवहार, स्वभाव, बुद्धि व क्षमता का अनुभव इन्हीं के आधार पर लगाया जाता है।

xiii. **मुखाकृतियों पर आधारित पूर्वाग्रह**-मुखाकृतियों में भिन्नता के कारण कभी-कभी लोगों में एक-दूसरे के प्रति पूर्वाग्रह उत्पन्न हो जाता है। उदाहरणार्थ- कभी किसी व्यक्ति से जब हमें किन्हीं कारणों से विरोध होता है तो उसी प्रकार की मुखाकृति के प्रति हमारे हृदय में एक पूर्वधारणा बन जाती है और जहाँ कहीं उस मुखाकृति का व्यक्ति हमें दिखायी देता है, वहीं उसके प्रति हमारे मन में अवहेलना जागृत हो जाती है।

xiv. **संस्कृति पर आधारित पूर्वधारणाएँ**-व्यक्ति अपनी संस्कृति के प्रति पक्षपातपूर्ण रवैया अपनाता है। वह अन्य संस्कृति को निम्न दृष्टि से देखता है। भारतीय अपनी संस्कृति को पाश्चात्य संस्कृति से श्रेष्ठ मानते हैं। इसी प्रकार पाश्चात्य संस्कृति वाले भारतीय संस्कृति को बहुत हीन मानते हैं। इसी प्रकार विभिन्न समूहों में संस्कृति के आधार पर पूर्वधारणा बन जाती है।

अभ्यास प्रश्न

1. मेयर्स के अनुसार ''पूर्वाग्रह किसी समूह या उसके सदस्यों के प्रति एक अनुचित________मनोवृत्ति को कहा जाता है''।
2. मनोवृत्ति होने के नाते पूर्वाग्रह में ___________संघटक मौजूद होते हैं।
3. नकारात्मक मनोवृत्ति के रूप में पूर्वाग्रह होने पर व्यक्ति दूसरे समूह के सदस्यों के प्रति________दिखलाता है।
4. पूर्वाग्रहों का जन्म____________________से होना प्रारम्भ हो जाता है।
5. पूर्वाग्रह का अर्थ है__________________।
6. दूसरों के प्रति तार्किकता विहीन अभिवृत्ति को कहा जाता है-

   a. साम्प्रदायिकता
   b. विचारधारा
   c. पूर्वाग्रह
   d. रूढ़ियुक्ति
7. पूर्वाग्रह एक तरह की मनोवृत्ति है।
   a. अर्जित
   b. विवेकहीन
   c. नकारात्मक
   d. उपरोक्त सभी
8. सामाजिक असमानता पूर्वाग्रह को जन्म देती है। (सत्य /असत्य)
9. पूर्वाग्रह का हस्तान्तरण पीढ़ी दर पीढ़ी होता रहता है। (सत्य /असत्य)
10. पूर्वाग्रह का सम्बन्ध वास्तविकता से होता है। (सत्य /असत्य)
11. पूर्वाग्रह भी अभिवृतियॉ है। (सत्य /असत्य)
12. पूर्वाग्रह एक वांछित प्रवृत्ति है। (सत्य /असत्य)
13. धार्मिक असहिष्णुता पूर्वाग्रह को बढ़ाती है। (सत्य /असत्य)
14. पूर्वाग्रह में मानवता का अभाव होता है। (सत्य /असत्य)
15. निरंकुश व्यक्तियों में पूर्वाग्रह अधिक पाया जाता है। (सत्य /असत्य)
16. स्वीकारात्मक मनोवृत्ति के रूप में व्यक्ति पूर्वाग्रह होने पर दूसरे व्यक्ति के प्रति घृणा दिखलाता है।(सत्य /असत्य)
17. पूर्वाग्रह एक अर्जित प्रक्रिया है। (सत्य /असत्य)

5.7 सारांश

जिस प्रकार मनोवृत्ति सामाजिक मनोविज्ञान का एक महत्वपूर्ण विषय है, उसी प्रकार पूर्वाग्रह, पक्षपात तथा रूढ़ियुक्तियाँ भी महत्वपूर्ण हैं। मुख्यतः आधुनिक चिन्तायुक्त, उग्रवादी तथा आतंकवादी सामाजिक परिप्रेक्ष्य में इन विषयों की महत्ता तथा इनको समझने, इनके मनोगतिकीय कारणों का पता लगाने तथा दूर करने के उपायों की जानकारी की जितनी आवश्यकता है शायद उतनी कभी नहीं थी। अन्य धर्म, जाति, क्षेत्र तथा भाषा-भाषी के लोगों के साथ अन्तः क्रिया करके सम्बन्ध स्थापित करते और निर्णय करते समय बहुधा हमारे पूर्वाग्रह तथा रूढ़ियुक्तियाँ महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। और हम उनके विषय में गलत व आधाररहित धारणा बना लेते हैं। इसी प्रकार उनके विषय में हमारे निर्णय पक्षपात युक्त हो जाते हैं, जिनके कारण समूहों तथा व्यक्तियों के मध्य प्रतिद्वन्द उत्पन्न हो जाता है।

पूर्वधारणाएं ऐसे निर्णायों पर आधारित होती हैं जिनका कोई अस्तित्व नहीं होता। ये दूसरों के सम्बन्ध में प्रतिकूल भावना प्रदर्शित करती हैं। इनके निर्माण में व्यक्तिगत अन्तर भी दिखायी पड़ते हैं। विभिन्न जाति

समूहों या राष्ट्र-समूहों में जो शारीरिक विषमताएँ दिखायी पड़ती हैं। उनके आधाार पर भी पूर्वधारणाओं का निर्माण हो जाता है। पूर्वधारणाओं का विकास परम्पराओं, रीतिरिवाज के कारण भी हो सकते हैं। इनमें उस समय अधिक वृद्धि हो जाती है जब एक समूह को दूसरे समूह से आक्रमण का भय होता है।

पूर्वाग्रह जिस प्रकार भारतीयों में पायी जाती हैं उसी प्रकार इग्लैण्ड और जर्मनी के निवासियों में भी पायी जाती है। पूर्वाग्रहों का आधार धर्म, भाषा, प्रजाति एवं राष्ट्र कुछ भी हो सकता है। बालक हो या वृद्ध, नर हो या नारी, ग्रामीण हो या नगरीय सभी में पूर्वाग्रह का थोड़ा-बहुत अंश अवश्य पाया जाता है।

5.8 शब्दावली

1. **पूर्वाग्रह** - पूर्वनिर्णय
2. **प्रत्यक्षण** - देखने, सोचने, समझने की योग्यता
3. **संघटक** - एक पूर्ण वस्तु बनाने में सहायक
4. **असहिष्णुता** - आतुर, अधीर, उतावलापन
5. **मनोमालिन्य** - नफरत, मेल-जोल न रखना

5.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. नकारात्मक
2. तीन
3. घृणा
4. बाल्यकाल
5. पूर्वनिर्णय
6. पूर्वाग्रह
7. उपरोक्त सभी
8. सत्य
9. सत्य
10. असत्य
11. सत्य
12. असत्य
13. सत्य
14. सत्य
15. सत्य
16. असत्य
17. सत्य

5.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. सिंह, अरूण कुमार समाज मनोविज्ञान की रूप रेखा, मोतीलाल बनारसी दास, प्रकाशन दिल्ली।
2. लवानिया,एम.एम. सामाजिक मनोविज्ञान, रिसर्च पब्लिकेशन्स नई दिल्ली।
3. सिंह, आर. एन. आधुनिक सामाजिक मनोविज्ञान अग्रवाल पब्लिकेशन्स, आगरा।
4. माथुर,एस. एस. समाज मनोविज्ञान, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा।
5. हस्नैन, एन. नवीन सामाजिक मनोविज्ञान विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा।
6. खान बी. एन. तथा गुप्ता, किरन आधुनिक समाज मनोविज्ञान, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा।
7. श्रीवास्तव , डी. एन., पाण्डे,जगदीश सिंह, रणजीत, आधुनिक समाज मनोविज्ञान, हर प्रसाद भार्गव आगरा।

5.11 निबन्धात्मक प्रश्न

1. पूर्वाग्रह से आप क्या समझते है ? उदाहरण सहित इनकी विशेषताओं का वर्णन कीजिए ?
2. पूर्वाग्रह का विकास कैसे होता है ? इसके प्रमुख कारणों का वर्णन कीजिए।
3. पूर्वाग्रह के विभिन्न प्रकारों का वर्णन कीजिए।
4. पूर्वाग्रह की परिभाषा दीजिए तथा पूर्वाग्रह के किन्ही दो प्रकार का वर्णन कीजिए।
5. टिप्पणी लिखिए -
    a. पूर्वाग्रह के लाभ तथा हानियाँ
    b. प्रजातीय पूर्वाग्रह
    c. पूर्वाग्रह की उत्पत्ति
    d. पूर्वाग्रह के नकारात्मक प्रभाव

इकाई 6- पूर्वाग्रह के कारण, पूर्वाग्रह के प्रभाव पूर्वाग्रह एवं विभेदन में भेद

इकाई संरचना-

6.1 प्रस्तावना
6.2 उद्देश्य
6.3 पूर्वाग्रह के कारण
6.4 पूर्वाग्रह के प्रभाव
6.5 विभेदन
6.6 पूर्वाग्रह एवं विभेदन में भेद
6.7 सारांश
6.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
6.9 सन्दर्भ ग्रंथ सूची
6.10 निबन्धात्मक प्रश्न

6.1 प्रस्तावना

पूर्वाग्रह एक ऐसी मनोवृत्ति है जो व्यक्ति को किसी समूह या उसके सदस्यों के प्रति अनुकूल अथवा प्रतिकूल ढंग से सोचने, प्रत्यक्षीकरण करने, महसूस करने, तथा कार्य करने के लिए उन्मुख करती है। जैसा कि पहले हम जान चुके हैं कि पूर्वाग्रह के कई प्रकार होते हैं। सभी व्यक्ति में सभी तरह के पूर्वाग्रह नहीं होते। किसी में यौन, जाति, उम्र तो किसी में प्रजातीय व धार्मिक पूर्वाग्रह पाया जाता है। पूर्वाग्रह के निर्माण, विकास और संपोषण को अनेक कारक प्रभावित करते हैं। यह अपेक्षाकृत स्थायी या दीर्घकालिक प्रक्रम है जो व्यक्ति से अधिक समाज के स्तर पर सक्रिय रहता है। यह व्यक्तियों द्वारा अनुभव किये जाने वाले सामाजिक यथार्थ का एक अपरिहार्य अंग होता है। यहाँ यह विचार किया जायेगा कि पूर्वाग्रहों का विकास क्यों होता है ? इसे कौन-कौन से कारक प्रभावित करते हैं ?

6.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद, आप -

1. पूर्वाग्रह के कारण जान सकेगें।
2. पूर्वाग्रह के प्रभाव को समझ पाएंगे।
3. विभेदन का अर्थ एवं स्वरूप जान सकेगें।
4. पूर्वाग्रह एवं विभेदन में भेद जान सकेगें।

6.3 पूर्वाग्रह के कारण

हम दूसरों के बारे में राय क्यों बनाते हैं या दूसरों के प्रति पूर्वाग्रह का निर्माण क्यों करते हैं ? आलपोर्ट ने अपनी पुस्तक ‘दी नेचर ऑफ प्रिजूडिस’ में पूर्वाग्रह के कारणों को कुछ विशेष सिद्धान्तों एवं उपागमों के अन्तर्गत बताया है। व्यक्ति के स्तर पर ये कारक उसके अधिगम एवं अन्य प्रक्रमों पर निर्भर करते हैं। पूर्वाग्रह के कारकों में मनोवैज्ञानिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, परिस्थितिजन्य, संज्ञानात्मक आदि हैं। इन सभी कारकों में से कुछ प्रमुख कारकों का उल्लेख किया जा रहा है-

i. **सामाजिक अधिगम-** बच्चों में अपने माता-पिता, भाई-बहनों, अध्यापकों, पड़ोसियों के व्यवहार को अनुकरण करने की प्रवृत्ति पाई जाती है। समाजीकरण के इन माध्यमों से उन्हें जैसी शिक्षा मिलती है, उनमें वैसी ही मनोवृत्ति विकसित होती है। यही कारण है कि यदि माता-पिता किसी जाति या धर्म के प्रति पूर्वाग्रह से ग्रसित होते हैं तो उनके बच्चों में भी उसी तरह का पूर्वाग्रह विकसित हो जाता है। अधिगम व अनुकरण के आधार पर ही बच्चा दूसरी जाति के लोगों के व्यवहारों और मूल्यों आदि के सम्बन्ध में ज्ञान प्राप्त करता है। इसी आधार पर वह विभिन्न प्रकार के पूर्वाग्रहों को सीख लेता है। अनेक मनोवैज्ञानिक अध्ययनों से इस तथ्य की पुष्टि हुई है कि बच्चे अपने माता-पिता की पूर्वाग्रही मनोवृत्ति को काफी कम उम्र में सीख लेते हैं।

ii. **शिक्षा-** पूर्वाग्रह को प्रभावित करने वाला एक महत्वपूर्ण कारक शिक्षा है। शिक्षा औपचारिक एवं अनौपचारिक दोनों तरीकों से दी जाती है। औपचारिक शिक्षा विद्यालय में दी जाती है। औपचारिक शिक्षा अधिक होने से व्यक्तियों में किसी समस्या या अन्य व्यक्तियों के बारे में तथ्यपरक रूप से सोचने-समझने की शक्ति विकसित होती है। अनौपचारिक शिक्षा परिवार के सदस्यों द्वारा बच्चों को दी जाती है। माता-पिता बच्चों को इस बात की शिक्षा देते हैं कि उन्हें किस समूह के बच्चों के साथ खेलना चाहिए, कौन समूह ठीक है, और किस समूह से दूर रहना चाहिए। इस दिशा में हुए अध्ययनों में देखा गया है कि औपचारिक शिक्षा में जैसे-जैसे वृद्धि होती है; पूर्वाग्रहों की मात्रा उसी रूप में कम हो जाती है। आलपोर्ट (1954)एवं विलियम (1964) के अध्ययन के परिणाम से स्पष्ट हुआ है कि शिक्षित व्यक्तियों में अशिक्षित व्यक्तियों की अपेक्षा पूर्वाग्रह की मात्रा कम होती है।

iii. **जाति-** अपने देश में भिन्न-भिन्न जातियों के लोग रहते हैं। कुछ जातियाँ अपने को ऊँचा व श्रेष्ठ मानती हैं। ऊँची जाति के लोग निम्न जाति के लोगों के प्रति अधिक पूर्वाग्रही होते हैं। अनेक मनोवैज्ञानिक अध्ययनों में पाया गया है कि उच्च जाति के हिन्दुओं में जाति पूर्वाग्रह निम्न जाति की हिन्दुओं की अपेक्षा अधिक होती है। सिंह एवं भूषण (1969) ने पाया कि ब्राह्मण, कायस्थ एवं राजपूतों में निम्न जाति के लोगों की अपेक्षा अपनी जातियों को ऊँचा समझने की प्रवृत्ति अधिक होती है। कुछ अध्ययन परिणाम यह भी बतलाते हैं कि ब्राह्मण जाति के लोग अपने को अधिक श्रेष्ठ समझते हैं। इन अध्ययनों में यह भी देखा गया है कि भिन्न-भिन्न जाति के लोग

अपनी जाति वाले लोगों के प्रति धनात्मक अभिवृत्ति रखते हैं और दूसरी जाति वाले लोगों के प्रति नकारात्मक अभिवृत्ति रखते हैं। पश्चिमी देशों में भारतीय जाति की तरह कोई जाति नही होती है। फलतः इन देशों में जाति के नाम पर कोई पूर्वाग्रह नही होता है।

iv. **धार्मिक सम्बन्धन-** भारतवर्ष में अनेक धर्म के मानने वाले लोग रहते हैं। किसी भी धर्म को मानने वाले व्यक्तियों में उस धर्म के प्रति अगाध प्रेम व विश्वास होता है, वे उसे श्रेष्ठ समझते हैं और दूसरे धर्म के लोगों को हेय दृष्टि से देखते हैं। अपने धर्म के प्रति विधेयात्मक अभिवृत्ति जबकि दूसरे धर्म के लोगों के प्रति नकारात्मक अभिवृत्ति रखते हैं, जो पूर्वाग्रह को जन्म देते हैं। अनेक मनोवैज्ञानिक (सिंह 1980), चौधरी 1958 (हसन एवं सिंह 1973) के अध्ययनों से यह तथ्य सामने आया है कि हिन्दुओं की अपेक्षा मुसलमानों में हिन्दुओं के प्रति अधिक पूर्वाग्रह होता है तथा परम्परागत, सामाजिक, राजनैतिक मनोवृत्तियाँ अधिक तीव्र होती हैं। धार्मिक विश्वास और अन्य विश्वास की कड़ी इतनी मजबूत हो जाती है कि उस विशेष धर्म के समक्ष अन्य धर्म उसे तुच्छ लगते हैं। दूसरे धर्म के प्रति पूर्वाग्रह जन्म ले लेता है।

v. **जनसंचार माध्यम-** पूर्वाग्रहों के निर्माण और विकास में सिनेमा, दूरदर्शन, समाचार-पत्र, पत्रिकाओं, रेडियो आदि की भूमिका महत्वपूर्ण है। इन माध्यमों के द्वारा हमें दूसरे व्यक्तियों एवं समूहों के बारे में तरह-तरह की सूचनाएँ मिलती हैं जिसके आधार पर पूर्वाग्रह निर्मित होता है। दूरदर्शन पर दिखाये जाने वाले कार्यक्रमों के बीच-बीच में अनेक प्रकार के विज्ञापन दिखाये जाते हैं जिससे प्रभावित होकर हम इन विज्ञापनों के अनुरूप व्यवहार करना सीखते हैं। एक अध्ययन में पाया गया कि जो महिलाएँ दूरदर्शन पर केवल ऐसे कार्यक्रम देखती थीं जिसमें महिलाओं की परम्परागत भूमिका पर अधिक बल डाला जाता था, उनमें महिलाओं के परम्परागत व्यवहारों के प्रति अधिक अनुकूल पूर्वाग्रह विकसित हो गया।

vi. **व्यक्तित्व विशेषताएँ-** अनेक मनोवैज्ञानिक अध्ययनों में यह देखा गया है कि व्यक्ति का जैसा व्यक्तित्व होता है वैसा ही उसमें पूर्वाग्रहों का निर्माण होता है। दृढ़ चिन्तन, दण्डात्मक प्रवृत्ति आदि गुण जिन लोगों में प्रधान होता है, उनमें उन व्यक्तियों की अपेक्षाकृत पूर्वाग्रह अधिक होता है जिनमें ऐसे शीलगुण कम होते हैं। इसी प्रकार जिन लोगों में मैत्री की भावना अधिक पाई जाती है उनमें पूर्वाग्रह उन व्यक्तियों से भिन्न होते हैं जिनमें मैत्री की भावना कम मात्रा में पाई जाती है।

vii. **असुरक्षा और चिन्ता-** व्यक्ति में पूर्वाग्रह असुरक्षा की भावना तथा चिन्ता से विकसित होती है। जिस समाज के लोगों में जितनी ही अधिक असुरक्षा और चिन्ता की भावना पाई जाती है उतनी ही उनमें पूर्वाग्रहों के निर्माण और विकास की सम्भावना अधिक होती है। जिस व्यक्ति में अपनी नौकरी, व्यवसाय, सामाजिक स्तर आदि के बारे में असुरक्षा की भावना नहीं होती है, वह सदैव अन्य व्यक्तियों या समूहों के प्रति एक स्पष्ट एवं वस्तुनिष्ठ विचार विकसित करता है। फलस्वरूप उसमें पूर्वाग्रह जल्दी विकसित नहीं होता। इसी तरह जब व्यक्ति में चिन्ता का स्तर अधिक होता है तो उनमें पूर्वाग्रह की मात्रा भी बढ़ जाती है।

viii. **शहरी-ग्रामीण क्षेत्र-** मनोवैज्ञानिकों ने अपने अध्ययन से यह स्पष्ट किया है कि ग्रामीण क्षेत्र में रहने वाले व्यक्तियों में पूर्वाग्रह तथा रुढ़िवाद की मात्रा शहरी क्षेत्रों में रहने वाले व्यक्तियों की पूर्वाग्रह एवं रुढ़िवाद की मात्रा से अधिक होती है। यह भी पाया गया है कि ग्रामीण क्षेत्रों में रहने वाले व्यक्तियों की अपेक्षा शहरी क्षेत्रों में रहने वाले व्यक्तियों की मनोवृत्ति अधिक उदार होती है। परिणामस्वरूप इनमें पूर्वाग्रह कम होता है।

6.4 पूर्वाग्रह के प्रभाव (Effect of Prejudice)

आपने ईकाई 5 में जाना कि पूर्वाग्रह एक ऐसी मनोवृत्ति (Attitude) है जो धनात्मक (Positive) भी होती है तथा नकारात्मक (Negative) भी होती है। परन्तु अधिकतर मनोवैज्ञानिकों ने इसमें नकारात्मक प्रवृत्ति की प्रधानता को ही स्वीकार किया है। इसलिए इन लोगों ने नकारात्मक मनोवृत्ति को ही पूर्वाग्रह मान लिया है। जैसे- किसी चीज के दो पक्ष होते हैं, उसी ढंग से पूवाग्रह के भी दो पक्ष हैं। अतः इसके धनात्मक प्रभाव तथा नकारात्मक प्रभाव दोनों ही होते हैं। इसके प्रमुख धनात्मक प्रभाव निम्नांकित हैं-

1. पूर्वाग्रह द्वारा व्यक्ति की दमित इच्छाओं की संतुष्टि होती है। समाज के सबल या लाभान्वित समूह (Advantaged group) निर्बल या अलाभान्वित समूह (Disadvantaged group) के प्रति अपनी दमित इच्छाओं जिसमें घृणा, बैर-भाव आदि की प्रधानता होती है, कि सतुंष्टि कर सकते हैं।
2. पूर्वाग्रह द्वारा समाज के लाभान्वित समूह को अपनी निराशा तथा कुण्ठा (Frustration) को दूर करने में सहायता मिलती है।
3. पूर्वाग्रह से सबल समूह के सदस्यों में श्रेष्ठता की भावना उत्पन्न होती है तथा प्रतिष्ठा आवश्यकता की सतुंष्टि होती है। उच्च जाति के लोगों में पिछड़ी जाति एवं दलितों के प्रति जातीय पूर्वाग्रह विकसित होने से उनमें श्रेष्ठता की भावना जगती है एवं साथ-ही-साथ साथ उनकी प्रतिष्ठा आवश्यकता की संतुष्टि होती है।
4. पूर्वाग्रह में सबल समूह के सदस्यों में एक-दूसरे के प्रति स्वीकारात्मक मनोवृत्ति होती है परन्तु अलाभान्वित समूह के सदस्यों के प्रति नकारात्मक मनोवृत्ति होती है। इसका एक विशेष लाभ यह होता है कि सबल समूह के सदस्यों में एकता तथा भाईचारा का सम्बन्ध तेजी से जगता है।
5. सेकर्ड तथा बैकमैन ने (Secord & Backman, 1974) ने यह बतलाया है कि पूर्वाग्रह से आर्थिक लाभ भी होता है। अगर कोई कर्मचारी (Employee) यह देखता है कि उसका बॉस किसी व्यक्ति के प्रति नकारात्मक मनोवृत्ति दिखलाने से खुश होता है तो वह तुरन्त उस व्यक्ति के प्रति पूर्वाग्रही (Prejudiced) होकर अपने बॉस को खुश कर देता है और अपनी पदोन्नति अन्य लाभ प्राप्त कर लेता है।

पूर्वाग्रह के नकारात्मक प्रभाव अधिक स्पष्ट रूप से देखने को मिलते हैं। प्रमुख ऐसे प्रभाव निम्नांकित हैं-

i. पूर्वाग्रह से सामाजिक संघर्ष (Social conflict) में वृद्धि होती है। पूर्वाग्रह के कारण ही हमें अक्सर हिन्दू-मुस्लिम दंगे एवं अन्य जातीय दंगे देखने को मिलते हैं। पूर्वाग्रह के कारण हिन्दू मुसलमान को तथा मुसलमान हिन्दू को घृणा एवं शक की निगाह से देखते हैं तथा ऐसी भावना धीरे-धीरे एकत्रित होकर दंगों के रूप में प्रस्फुटित होती है।

ii. पूर्वाग्रह से सामाजिक विघटन (Social disorganization) होता है। भिन्न-भिन्न तरह की पूर्वाग्रहों जैसे जातीय पूर्वाग्रह, साम्प्रदायिक पूर्वाग्रह, धर्म से सम्बन्धित पूर्वाग्रह के कारण समाज उत्तरोत्तर खण्डित होता चला जाता है और प्रत्येक खण्ड में सामाजिक दूरी बढ़ती जाती है। मेयर्स (Myers, 1975) के अनुसार जब समाज में सामाजिक दूरी अधिक बढ़ जाती है, तो इससे गृहयुद्ध की सम्भावना बढ़ जाती है।

iii. पूर्वाग्रह से राष्ट्रीय समाकलन (National Integration) के मार्ग में काफी कठिनाई होती है। विभिन्न तरह के पूर्वाग्रहों के कारण विभिन्न सम्प्रदाय के लोग आपस में घनिष्ठ सम्बन्ध नहीं स्थापित कर पाते हैं। फलतः राष्ट्रीय अखण्डता के तहत चलाई जाने वाली परियोजनाओं को अभी तक काफी सफलता नहीं मिल पायी है।

iv. पूर्वाग्रह के कारण ही सरकार एवं समाजसेवी संस्थानों द्वारा चलाये गये मानव कल्याण प्रोग्राम अभी तक अपने लक्ष्य की प्राप्ति नहीं कर सके हैं।

इस तरह से हम देखते हैं कि नकारात्मक प्रभाव स्वीकारात्मक प्रभाव से अधिक हानिकारक हैं। अतः पूर्वाग्रह के उद्भव (origin) तथा सम्पोषण (maintenance) आदि को रोकना अनिवार्य है।

6.5 विभेदन

किसी जाति, प्रजाति अथवा अल्पसंख्यक समूह के प्रति समूह सदस्यता के कारण उत्पन्न गलत अथवा अनुचित अभिवृत्तियों पर आधारित व्यवहार को विभेदन कहते हैं। यह सम्भव है कि बिना किसी पूर्वाग्रह के भी विभेदन हो और बिना किसी विभेदन के भी पूर्वाग्रह हो। पूर्वाग्रह विभेदन के रूप में परिलक्षित होगा अथवा नहीं, यह पूर्वाग्रह की तीव्रता तथा सामाजिक बाधाओं पर निर्भर करता है। फेल्डमैन का कथन है कि, ''पूर्वाग्रह की व्यवहारात्मक अभिव्यक्ति विभेदन कहलाती है। विभेदन में किसी विशेष समूह में सदस्यता के कारण उस समूह के सदस्यों के साथ धनात्मक या ऋणात्मक ढंग से व्यवहार किया जाता है।'' व्यक्ति में पूर्वाग्रह होने पर भी वह हमेशा लक्ष्य समूह के प्रति विभेदन दिखलायेगा ही, यह कोई जरूरी नहीं है। ऐसा इसलिए होता है कि सामाजिक परिस्थितियाँ ही कुछ ऐसी होती हैं जो पूर्व ग्रसित व्यक्ति को खुलकर विभेदन की अनुमति नहीं देती। उदाहरण के लिए, एक उच्च जाति का जातीय पूर्वाग्रह से ग्रसित अधिकारी कार्यालय में एक निम्न जाति के कर्मचारी के प्रति किसी प्रकार का विभेद नहीं दिखला सकता है क्योंकि दोनों ही सरकारी नौकर हैं और कानून सामाजिक विभेद की आज्ञा नहीं देता है। एक व्यक्ति अपने घर में मुस्लिम किरायेदर रखने के प्रति पूर्वाग्रहित नहीं हो सकता फिर भी वह मुहल्लेवासियों के डर

से अपना घर उसे किराये पर देने से इंकार कर सकता है यहाँ विभेद तो हो रहा है परंतु उसके पीछे कोई पूर्वाग्रह नही है।

6.6 पूर्वाग्रह एवं विभेदन में भेद

पूर्वाग्रह तथा विभेदन शब्दों का व्यवहार हम अक्सर करते हैं और प्रायः दोनों शब्दों का प्रयोग समान अर्थ में करते हैं। लेकिन यह सही नहीं है, दोनों दो भिन्न अर्थ वाले शब्द हैं। दोनों में निम्नलिखित अन्तर है-

i. पूर्वाग्रह एक तरह की अभिवृत्ति है, जबकि विभेदन पूर्वाग्रह को व्यक्त करने वाली क्रिया है। बैरन एवं बायर्न ने कहा है कि अपने से भिन्न किसी सामाजिक समूह के सदस्यों के प्रति व्यक्ति की नकारात्मक मनोवृत्ति को पूर्वाग्रह कहेंगे जबकि उसकी नकारात्मक क्रियाओं को विभेदन कहेंगे।
ii. पूर्वाग्रह के तीन पक्ष हैं जिन्हें संज्ञानात्मक, भावात्मक तथा क्रियात्मक कहते हैं, जबकि विभेदन में केवल क्रियात्मक पक्ष ही प्रधान होता है। उदाहरण के लिए एक ब्राह्मण हरिजनों के प्रति नकारात्मक तथा बैर पूर्ण मनोवृत्ति रखता है, यह पूर्वाग्रह है। इससे प्रभावित होकर वह हरिजनों को मन्दिर में जाने से रोकता है तथा धार्मिक व पवित्र पुस्तकों को पढ़ने पर पाबन्दी लगा देता है और इसका उल्लंघन करने पर शारीरिक दण्ड देता है, उसका यह व्यवहार विभेदन है।
iii. पूर्वाग्रह का क्षेत्र अधिक व्यापक होता है। इसका सम्बन्ध तीन विमाओं अर्थात् संज्ञानात्मक, भावनात्मक एवं क्रियात्मक होता है। इसके विपरीत विभेदन का क्षेत्र सीमित होता है इसका सम्बन्ध केवल क्रियात्मक विमा से होता है।
iv. विभेदन के लिए पूर्वाग्रह एक कारण है जबकि विभेदन स्वयं उसका परिणाम है।
v. पूर्वाग्रह के बिना विभेदन सम्भव नहीं है जबकि विभेदन के बिना भी पूर्वाग्रह सम्भव है। उदाहरण के लिए यदि किसी ब्राह्मण में हरिजनों के प्रति नकारात्मक तथा बैरपूर्ण मनोवृत्ति नहीं हो तो वह हरिजनों के साथ विभेदमूलक व्यवहार नहीं करेगा, दूसरी ओर विभेदमूलक व्यवहार नहीं करने पर भी उस ब्राह्मण में नकारात्मक मनोवृत्ति हो सकती है।

अभ्यास प्रश्न

1. पूर्वाग्रह एक प्रकार है -
   a. मनोवृत्ति का
   b. मूल प्रवृत्ति का
   c. संवेग का
   d. प्रेरणा का
2. पूर्वाग्रह का एक मुख्य कार्य है-
   a. स्वधारणा का निर्माण

b. आत्मविश्वास का प्रोत्साहन
c. अहं प्रतिरक्षा
d. इनमें से कोई नहीं

3. पूर्वाग्रह जन्मजात होते हैं। (सत्य/असत्य)
4. पूर्वाग्रह एक पक्षपातपूर्ण मत है। (सत्य/असत्य)
5. विभेदन पूर्वाग्रह की व्यवहारात्मक अभिव्यक्ति है। (सत्य/असत्य)
6. पूर्वाग्रह के कारण व्यक्ति विभेदन दिखायेगा ही। (सत्य/असत्य)

6.7 सारांश

भारतवर्ष में रहने वाले लोग भिन्न-भिन्न जाति, धर्म, सम्प्रदाय के ही नहीं हैं बल्कि भिन्न-भिन्न भाषाओं को बोलने वाले भी हैं। लेकिन फिर भी सभी में सांस्कृतिक एकता है। इसके बावजूद भी हम विभिन्न जातियों, धर्मों व सम्प्रदायों के प्रति पूर्वाग्रह से ग्रसित हैं। जैसा कि आपको बताया जा चुका है कि पूर्वाग्रह के कई प्रकार होते हैं। इनके विकास के कारण भी अलग-अलग होते हैं। पूर्वाग्रह के कारणों का अध्ययन मनोवैज्ञानिकों के साथ ही साथ समाजशास्त्रियों, मानवशास्त्रियों, इतिहासविदों ने भी किया है। इनमें मुख्य रूप से सामाजिक कारक यथा सामाजिक शिक्षण, औपचारिक, धार्मिक विश्वास तथा अन्धविश्वास, सामाजिक-आर्थिक स्थिति, ग्रामीण-शहरी क्षेत्र, सामाजिक परिवेश, सामाजिक श्रेणीकरण आदि, मनोवैज्ञानिक कारकों में कुण्ठा तथा आक्रमण, सामाजिक संज्ञान, व्यक्तित्व । इसके अलावा सांस्कृतिक, प्रचार, आघातजन्य अनुभव, विफलता एवं नैराश्य भी पूर्वाग्रह के कारण हैं। जैसे- किसी चीज के दो पक्ष होते हैं, उसी ढंग से पूवाग्रह के भी दो पक्ष हैं। अतः इसके धनात्मक प्रभाव तथा नकारात्मक प्रभाव दोनों ही होते हैं। पूर्वाग्रह द्वारा समाज के लाभान्वित समूह को अपनी निराशा तथा कुण्ठा को दूर करने में सहायता मिलती है। इसका एक विशेष लाभ यह होता है कि सबल समूह के सदस्यों में एकता तथा भाईचारा का सम्बन्ध तेजी से जगता है। पूर्वाग्रह से सामाजिक संघर्ष में वृद्धि होती है। पूर्वाग्रह के कारण ही हमें अक्सर हिन्दू-मुस्लिम दंगे एवं अन्य जातीय दंगे देखने को मिलते हैं। विभिन्न तरह की पूर्वाग्रहों के कारण विभिन्न सम्प्रदाय के लोग आपस में घनिष्ठ सम्बन्ध नहीं स्थापित कर पाते हैं। फलतः राष्ट्रीय अखण्डता के तहत चलाई जाने वाली परियोजनाओं को अभी तक काफी सफलता नहीं मिल पायी है। पूर्वाग्रह में लक्ष्य समूह के सदस्यों के प्रति किया जाने वाला ऋणात्मक व्यवहार विभेदन है। पूर्वाग्रह के कारण व्यक्ति जिस समूह के प्रति पूर्वाग्रह ग्रस्त होता है, उस समूह के सदस्य के साथ सामान्य बर्ताव नहीं करता है। उसे उन अधिकारों और लाभों से वंचित कर दिया जाता है जो अन्य समूह के सदस्य स्वाभाविक रूप से प्राप्त करते हैं। विभेदन और पूर्वाग्रह के बीच वही सम्बन्ध है जो व्यवहार और अभिवृत्ति के बीच होता है। पूर्वाग्रह की अभिवृत्ति के कारण कोई व्यक्ति विभेदन व्यवहार करेगा या नहीं? यदि करेगा तो कैसा करेगा? यह कई अन्य कारणों पर निर्भर करता है। पूर्वाग्रह एक तरह की अभिवृत्ति है, जबकि विभेदन पूर्वाग्रह को व्यक्त करने वाली क्रिया है। यह सम्भव है कि बिना किसी पूर्वाग्रह के भी विभेदन हो और बिना किसी विभेदन के भी पूर्वाग्रह हो। पूर्वाग्रह का क्षेत्र अधिक व्यापक होता है। इसका सम्बन्ध तीन

विमाओं अर्थात् संज्ञानात्मक, भावनात्मक एवं क्रियात्मक होता है। इसके विपरीत विभेदन का क्षेत्र सीमित होता है इसका सम्बन्ध केवल क्रियात्मक विमा से होता है। विभेदन के लिए पूर्वाग्रह एक कारण है जबकि विभेदन स्वयं उसका परिणाम है।

6.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. a
2. a
3. असत्य
4. सत्य
5. सत्य
6. असत्य

6.9 सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1. श्रीवास्तव, डी0एन0, (दसवाँ संस्करण), 'सामाजिक मनोविज्ञान', साहित्य प्रकाशन, आगरा।
2. सिंह,अरुण कुमार,(2006)'समाज मनोविज्ञान की रूपरेखा', मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली।
3. हसनैन, एन0, (1994) 'नवीन सामाजिक मनोविज्ञान', विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा।
4. त्रिपाठी, लालबचन, (1998.99) 'आधुनिक सामाजिक मनोविज्ञान', एच0पी0 भार्गव बुक हाउस, आगरा।
5. मायर्स, डी0जी0, (1999) 'सोशल साइकोलॉजी', मैक्ग्रा हिल कॉलेज, न्यूयार्क।
6. सीकार्ड बेकमैन, (1974) 'सोशल साइकोलॉजी', मैक्ग्रा हिल इण्टरनेशनल बुक कम्पनी, टोकियो।

6.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1. पूर्वाग्रह के मुख्य कारणों का वर्णन कीजिए।
2. पूर्वाग्रह तथा विभेदन में अन्तर बताइए।
3. पूर्वाग्रह केप्रभावों का उदाहरण सहित वर्णन कीजिये।

इकाई 7- पूर्वाग्रह एवं विभेद को दूर करने की विधियाँ, भारत में साम्प्रदायिकता

इकाई संरचना-

7.1 प्रस्तावना
7.2 उद्देश्य
7.3 पूर्वाग्रह एवं विभेदन दूर करने की विधियाँ
7.4 भारत में सम्प्रदायिकता
 7.4.1 हिन्दू-मुसलमान साम्प्रदायिकता
 7.4.2 हिन्दू-सिख साम्प्रदायिकता
7.5 सारांश
7.6 शब्दावली
7.7 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न एवं उनके उत्तर
7.8 सन्दर्भ ग्रंथ सूची
7.9 उपयोगी सहायक ग्रंथ
7.10 निबन्धात्मक प्रश्न

7.1 प्रस्तावना

पिछली इकाईयों में आपने जाना कि पूर्वाग्रह क्या है ? इसका सम्पोषण व विकास कैसे होता है ? यह कितने प्रकार का होता है तथा इसके क्या-क्या प्रभाव होते हैं ? इस इकाई में हम पूर्वाग्रह को दूर करने के उपायों के बारे में बात करेंगे, साथ ही साम्प्रदायिकता के बारे में जानेंगे।

पूर्वाग्रह एक ऐसी मनोवृत्ति है जिसका सामाजिक कुप्रभाव स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ता है। पूर्वाग्रह के कारण अन्तर-धार्मिक, जातीय व अन्तरवैयक्तिक संघर्ष देखने को मिलते हैं। इससे लोगों में भेदभाव, तनाव, साम्प्रदायिक दंगे आदि उत्पन्न होते हैं। पूर्वाग्रह को दूर व कम करने की विभिन्न विधियों का उल्लेख समाज मनोवैज्ञानिकों ने किया है। इस इकाई में आपको इन विधियों से अवगत कराया जायेगा ताकि आप इन्हें दूर कर सकें या कम कर सकें।

साम्प्रदायिकता अपने ही जातीय समूह के प्रति तीव्र निष्ठा की भावना है। साम्प्रदायिकता के कारण लोग अपने जातीय समूह को विशेष महत्व देते हैं। यह एक अन्तर-धार्मिक संघर्ष की स्थिति पैदा करता है जिसमें आपसी घृणा, पक्षपात, पूर्वाग्रह तथा सन्देह पाये जाते हैं जिसके कारण सामाजिक तनाव उत्पन्न होता है।

7.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप इस योग्य होंगे कि:

1. पूर्वाग्रह एवं विभेदन को दूर करने की विधियों को जान सकें।
2. साम्प्रदायिकता का अर्थ जान सकें, और
3. भारत में साम्प्रदायिकता के बारे में जान सकें।

7.3 पूर्वाग्रह दूर करने की विधियाँ

पूर्वाग्रह समाज तथा व्यक्ति दोनों ही स्तरों पर मानव हितों को नुकसान पहुँचाता है। पूर्वाग्रह के कारण समाज में अनेक समस्याएँ पैदा होती हैं और व्यक्ति के सामाजिक चिन्तन का स्वरूप विकृत हो जाता है। समाज में तनाव व संघर्ष की स्थिति उत्पन्न होती है। इसके प्रभाव के कारण अनावश्यक मनमुटाव, वैमनस्य और लड़ाई-झगड़े पैदा होते हैं। पूर्वाग्रहों के परिणामों को देखते हुए समाज मनोवैज्ञानिकों ने इसे दूर करने व कम करने के उपायों पर भी विचार किया है। यहाँ पर पूर्वाग्रह को दूर व कम करने की कुछ विधियों का उल्लेख किया जा रहा है।

1. **शिक्षा**- उचित शिक्षा प्रदान कर पूर्वाग्रह को कम किया जा सकता है। मनोवैज्ञानिकों का मानना है कि औपचारिक शिक्षा जो स्कूल, मदरसा, कॉलेज आदि द्वारा दी जाती है, इनके शिक्षकों को चाहिए कि बच्चों को ऐसी शिक्षा न दें जिससे उनमें किसी प्रकार की पूर्वाग्रह की वृद्धि होती है। ऐसे पाठ्यक्रम का निर्माण करना चाहिए जिनको पढ़ने से बच्चों में अच्छा मानसिक स्वास्थ्य विकसित हों एवं किसी प्रकार का पूर्वाग्रह इनके मन में न विकसित हो। कुछ मनोवैज्ञानिकों जैसे. ट्रियानडिस (Trindis1972) ,फ़ाईडलर एवं उनके सहयोगियो (Fiedler et.al.1979) ने अपने अध्ययन में पाया है कि शिक्षा का स्तर ऊँचा होने से व्यक्ति में पूर्वाग्रह की मात्रा कम हो जाती है क्योंकि शिक्षा से व्यक्ति में उदारता बढ़ती है। अनौपचारिक शिक्षा माता-पिता, परिवार के अन्य सदस्यों तथा पास-पड़ोस के लोगों द्वारा बच्चों को दी जाती है। इन लोगों को चाहिए कि बच्चों के सामने ऐसी बातें नहीं करें जिससे वे किसी समुदाय, जाति या वर्ग के लोगों के प्रति पूर्वाग्रही हो जायें।
2. **अन्तर समूह सम्पर्क**- सर्वप्रथम ऑलपोर्ट ने इस बात पर बल दिया कि पूर्वाग्रह से ग्रस्त व्यक्ति और लक्षित व्यक्ति अर्थात् जिस व्यक्ति के प्रति पूर्वाग्रह है, यदि इन दोनों व्यक्तियों में उचित सम्पर्क कराया जाता है तो वे एक दूसरे के निकट आते हैं, तो पूर्वाग्रही व्यक्ति को उनके बारे में समझने का अधिक अवसर मिलता है। परिणामस्वरूप लक्ष्य व्यक्ति के बारे में बहुत सारी गलतफहमियाँ अपने आप दूर हो जाती हैं और व्यक्ति में पूर्वाग्रह कम हो जाता है। एक अध्ययन से यह भी ज्ञात हुआ है कि अन्तर समूह सम्पर्क रखने वालों जब समान स्तर के होते हैं तब इस स्थिति में अन्तर समूह सम्पर्क का पूर्वाग्रह को कम करने में अधिक प्रभाव पड़ता है। जब भिन्न-भिन्न जातीय समूहों, धार्मिक समूहों के सदस्यों को आपस में प्रत्यक्ष रूप से मिलने-जुलने का

तथा नजदीक से एक-दूसरे से बातचीत करने का मौका मिलता है तो वे जान पाते हैं कि वे एक-दूसरे को जितना भिन्न समझते थे , वास्तव में वे उतना भिन्न नहीं है। उनकी नकारात्मक मनोवृत्ति सकारात्मक बन जाती है या नकारात्मक मनोवृत्ति की प्रबलता घट जाती है। इस कारण एक दूसरे के प्रति आकर्षण बढ़ता है और पूर्वाग्रह दूर हो जाता है।

3. **कानूनी प्रतिबंध** - कानून के माध्यम से भी पूर्वाग्रह को दूर किया जा सकता है। कानून द्वारा सामाजिक संरचना में परिवर्तन लाने से पूर्वाग्रह को विकसित व सम्पोषित करने वालों परिवेश सम्बन्धी कारक कमजोर हो जाते हैं या समाप्त हो जाते हैं जिससे पूर्वाग्रह दूर या कम हो जाता है। भारतवर्ष में हरिजनों से सम्बन्धित अनेक तरह के पूर्वाग्रह मौजूद थे जिनमें छुआछूत प्रमुख था। सरकार ने सामाजिक कानून बनाकर छुआछूत को गैर कानूनी घोषित किया, फलस्वरूप हरिजनों से छुआछूत सम्बन्धी पूर्वाग्रह अब करीब-करीब समाप्त हो गया है। इसी तरह जातीय पूर्वाग्रह को कम करने के लिए भारत सरकार ने अन्तर्जातीय विवाह को कानूनी घोषित किया है इससे भी एक जाति का दूसरे जाति के प्रति पूर्वाग्रह कम हुआ है।
4. **प्रचार**- पूर्वाग्रहों को कम करने में प्रचार द्वारा वांछित परिणाम प्राप्त किया जा सकता है। रेडियो, फिल्म, दूरदर्शन, समाचार-पत्रों के माध्यम से किया गया प्रचार पूर्वाग्रह को कम करने में काफी सहायक हुआ है। मायर्स ने अपने अध्ययनों के आधार पर यह परिणाम प्राप्त किया है कि पूर्वाग्रह विरोधी प्रचार से पूर्वाग्रह 60 प्रतिशत तक कम हो जाते हैं।
5. **व्यक्तित्व परिवर्तन**- समाज मनोवैज्ञानिकों ने व्यक्तित्व में मनोचिकित्सा की विभिन्न विधियों एवं विरेचन द्वारा परिवर्तन करके उनमें व्याप्त पूर्वाग्रह को कम करने पर जोर दिया है। अतः यदि व्यक्तित्व में परिवर्तन उत्पन्न किया जाय तो पूर्वाग्रहों में भी परिवर्तन हो सकता है। परन्तु यह विधि अधिक समय लेती है और व्यक्तित्व परिवर्तन कठिन भी है| इसलिए यह अपेक्षाकृत कम उपयोगी सिद्ध हो पाती है। व्यक्तित्व परिवर्तन के साथ-साथ परिस्थितियाँ भी परिवर्तित की जाय तो अधिक सहायता मिल सकती है।
6. **समूह सदस्यता में परिवर्तन**- पूर्वाग्रह के निर्माण में सामाजिक समूहों का सर्वाधिक प्रभाव पड़ता है। अतः यदि किसी पूर्वाग्रह से ग्रसित व्यक्ति को उस समूह की सदस्यता मिल जाय जिसके प्रति वह पूर्वाग्रह से ग्रसित है तो उसके पूर्वाग्रह में कमी आयेगी, ऐसा इसलिए होगा क्योंकि वह समूह का अनुमोदन तथा प्रशंसा प्राप्त करने के लिए समूह के साथ तादात्मीकरण करेगा और अनुकूल विचार विकसित करेगा। वाटसन ने भी यह निष्कर्ष दिया है कि नवीन समूहों की सदस्यता ग्रहण करने पर उसके प्रति विचार परिवर्तित हो जाते हैं और पूर्वाग्रहों में कमी आती है। इसी प्रकार विभिन्न राजनैतिक दल एक दूसरे के प्रति पूर्वाग्रसित बातें करते हैं, परन्तु जब वे अपनी पार्टी छोड़कर किसी अन्य पार्टी में चले जाते हैं तो उस पार्टी के प्रति उनका भाव बदल जाता है।
7. **अलगाव विरोधी नीति**- भिन्न-भिन्न समूहों के बीच अलगाव नीति के कारण पूर्वाग्रह के विकास तथा सम्पोषण में सहायता मिलती है। अतः सरकारी अधिकारियों व समाज सुधारकों को

चाहिए कि समूह अलगाव नीति का विरोध करें तथा समूह समाकलन नीति पर अमल करें। आज भी देखा जा रहा है कि हरिजनों, दलितों, शोषितों के लिए अलग आवासीय योजना चलाई जा रही है, जातीय छात्रावास बनाये जा रहे हैं। इसी प्रकार अलग-अलग जाति व धर्म के लोग अपनी आवासीय योजनाएँ चलाते हैं। अनेक शहरों व कस्बों में जाति और वर्ग के आधार पर अलग-अलग मुहल्लों व बस्तियाँ बनी हैं। इस तरह के अलगाव का यदि समाज में विरोध किया जाये तो इससे भी पूर्वाग्रह को कम किया जा सकता है क्योंकि भिन्न-भिन्न जाति, धर्म और सम्प्रदाय के लोगों की साथ रहने की प्रवृत्ति जब बढ़ेगी तो पारस्परिक सम्पर्क के कारण उनमें पूर्वाग्रह कम होंगे।

8. **नागरिक संगठन**- पूर्वाग्रहों को दूर या कम करने में नागरिक संगठन या नागरिक समितियों की भूमिका भी महत्वपूर्ण होती है। इन नागरिक संगठनों में भिन्न-भिन्न जाति, वर्ग, धर्म व सम्प्रदाय के लोगों, वरिष्ठ व सम्मानित लोगों को रखा जाय जो आपस में भाई-चारा बढ़ाने और पूर्वाग्रहों को कम करने का कार्य करें तो इससे समाज में शान्ति स्थापित होगी और पूर्वाग्रह दूर होगा।

7.4 भारत में सम्प्रदायिकता

किसी विशेष प्रकार की संस्कृति और धर्म को दूसरों पर आरोपित करने की भावना या धर्म अथवा संस्कृति के आधार पर पक्षपातपूर्ण व्यवहार करने की क्रिया साम्प्रदायिकता है। साम्प्रदायिकता समाज में वैमनस्य उत्पन्न करती है। और एकता को नष्ट करती है। साम्प्रदायिकता के कारण समाज को दंगे और विभाजन जैसे कुपरिणामों को भुगतना पड़ता है। साम्प्रदायिकता वह संकीर्ण मनोवृत्ति है जो एक धर्म अथवा सम्प्रदाय के लोगों में अपने धार्मिक एवं राजनीतिक स्वार्थों की पूर्ति के लिए पाई जाती है तथा जिसके परिणामस्वरूप विभिन्न धार्मिक समूहों में तनाव एवं संघर्ष पैदा होते हैं। साम्प्रदायिकता अपने ही जातीय समूह के प्रति तीव्र निष्ठा की भावना है, न कि सम्पूर्ण समाज के प्रति । किसी विद्वान ने ठीक ही लिखा है कि अपने धार्मिक सम्प्रदाय से भिन्न अन्य सम्प्रदायों के प्रति उदासीनता, उपेक्षा, हेय दृष्टि, घृणा, विरोध और आक्रमण की वह भावना साम्प्रदायिकता है, जिसका आधार काल्पनिक भय या आशंका है कि उक्त सम्प्रदाय हमारे अपने सम्प्रदाय और संस्कृति को नष्ट कर देने या हमें जान-माल की क्षति पहुँचाने के लिए कटिबद्ध है। वास्तव में साम्प्रदायिकता के अन्तर्गत वे सभी भावनाएँ व क्रियाकलाप आ जाते हैं जिनमें किसी धर्म अथवा भाषा के आधार पर किसी सम्प्रदाय विशेष के हितों पर बल दिया जाये। साम्प्रदायिकता के कारण व्यक्ति अपने सम्प्रदाय या जातीय एवं धार्मिक समूह को अधिक महत्व देता है और अन्य समाजों एवं राष्ट्रों के हितों की अवहेलना करता है।

जनसंख्या के आधार पर भारत में मुसलमान यद्यपि अल्पसंख्यक हैं फिर भी इनकी संख्या पाकिस्तान की तुलना में यहाँ अधिक है। हिन्दू कई सम्प्रदायों जैसे-आर्यसमाजी, शैव , सनातनी और वैष्णव में बँटे हुए हैं। इसी प्रकार मुसलमान शिया और सुन्नी में विभक्त हैं। हिन्दूओं और मुसलमानों के पारस्परिक सम्बन्ध एक लम्बे अन्तराल से तनावपूर्ण रहे हैं जबकि हिन्दुओं और सिखों ने एक-दूसरे को कुछ वर्षों विशेष कर

1984 से 1990 के बीच से सन्देह की दृष्टि से देखना शुरू किया। यहाँ हम मुख्यतः हिन्दू-मुसलमान और हिन्दू-सिख सम्बन्धों का विश्लेषण करेंगे।

7.4.1 हिन्दू-मुसलमान साम्प्रदायिकता

भारत में मुसलमानों के आक्रमण दसवीं शताब्दी में आरम्भ हो गए थे , परन्तु मोहम्मद गजनवी और मोहम्मद गोरी जैसे प्रारम्भिक मुसलमान विजेता धार्मिक आधिपत्य जमाने की अपेक्षा लूटमार में अधिक दिलचस्पी रखते थे । उस समय जब कुतुबुद्दीन दिल्ली का पहला सुल्तान बना तब इस्लाम ने भारत में पैर जमाये, इसके पश्चात् मुगलों ने अपने साम्राज्य तथा इस्लाम को काफी संगठित तथा विकसित किया। मुगल शासकों द्वारा किये जा रहे कुछ कार्य जैसे मंदिरों को तोड़कर मस्जिद बनवाना, तथा हिन्दुओं को मुसलमान बनाने के लिए बाध्य करना आदि से हिन्दू और मुसलमानों के बीच साम्प्रदायिक झगड़े बढ़े। इसके बाद जब ईस्ट इण्डिया कम्पनी के माध्यम से अंग्रेजों ने भारत पर अपना आधिपत्य जमाया, तो उन्होंने प्रारम्भ में हिन्दुओं को संरक्षण देने की नीति अपनाई तथा मुसलमानों को भी खुश करने का भरसक प्रयत्न किया। 1857 में जब प्रथम स्वतंत्रता संग्राम प्रारम्भ हुआ तो हिन्दुओं एवं मुसलमानों ने कन्धों से कंधा मिलाकर लड़ाई लड़ी। इस लड़ाई में उन्हें सफलता तो नहीं मिली परन्तु अंग्रेजों को यह समझ में आ गया कि इन दोनों के मिल जाने पर भारत में वे पैर नहीं जमा पाएंगे। अतः अंग्रेजों ने ‘फूट डालो और राज करो’ (Divide and Rule) की नीति अपनाई जिसके परिणामस्वरूप हिन्दू एवं मुसलमानों के साम्प्रदायिक झगड़ों को प्रोत्साहन मिला। यद्यपि हिन्दुओं और मुसलमानों के बीच पारस्परिक विरोध एक पुराना मामला है परन्तु भारत में हिन्दू-मुस्लिम साम्प्रदायिकता स्वतंत्रता संग्राम के दौरान अंग्रेजी शासन की विरासत है।

हम भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन से उपलब्ध तथ्यों पर विचार करें तो यह स्पष्ट होगा कि 1918 तथा 1922 के बीच जितने गम्भीर प्रयास हिन्दू-मुस्लिम एकता के लिए हुए, वे इन समुदायों एवं कांग्रेस के शीर्षस्थ नेताओं के वार्तालाप के रूप में हुए। इन नेताओं के बीच प्रारम्भ से ही एक अप्रत्यक्ष सहमति थी कि हिन्दू, मुसलमान एवं सिख ऐसे पृथक समुदाय हैं जिनके धार्मिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक प्रथाओं में एकता न होकर केवल राजनीतिक एवं आर्थिक मामलों में ही एकता है। इस तरह हिन्दू-मुस्लिम साम्प्रदायिकता के बीज तो इसी अवधि में ही पड़ चुके थे । 1942 के बाद मुस्लिम लीग एक सशक्त राजनीतिक दल की तरह उभरी और उसके नेता एम0ए0 जिन्ना ने कांग्रेस को एक ‘हिन्दू’ संगठन कहा जिसका अनुमोदन अंग्रेजों ने इस आशय से किया कि वे मुसलमानों को हिन्दुओं के विरूद्ध भड़का सकने में सफल हो पाएं । कांग्रेस के अन्दर भी मदनमोहन मालवीय, सरदार वल्लभ भाई पटेल एवं के0एम0 मुंशी जैसे कुछ नेताओं ने हिन्दू-समर्थक दृष्टिकोण अपनाया जिससे साम्प्रदायिक तत्वों का मनोबल ऊँचा हुआ। पाकिस्तान का नारा मुस्लिम लीग ने लाहौर में सर्वप्रथम 1940 में दिया। बाद में जब कांग्रेस नेताओं ने 1946 में विभाजन की स्वीकृति दे दी, तो उससे 1947 में लाखों की संख्या में हिन्दुओं, मुसलमानों और सिखों का रक्तपात हुआ। लगभग 2 लाख लोगों के मारे जाने का अनुमान है और लगभग 60 लाख मुसलमान और साढ़े चार लाख हिन्दू एवं सिख शारणार्थी हो गए । विभाजन के बाद भी कांग्रेस साम्प्रदायिकता पर काबू नहीं पा सकी।

इसलिए यह कहा जा सकता है कि भारत में हिन्दू-मुस्लिम साम्प्रदायिकता के राजनीतिक-सामाजिक स्रोत थे और उनमें झगड़े के लिए केवल धर्म ही कारण नहीं था। आर्थिक स्वार्थ, सांस्कृतिक और सामाजिक रीति-रिवाज (जैसे त्यौहार, सामाजिक प्रथाएँ और जीवनशैलियाँ) भी महत्वपूर्ण कारक थे जिन्होंने दोनों समुदायों को और विभाजित किया।

आज भारत में मुसलमान दूसरा सबसे बड़ा धार्मिक समुदाय है और विश्व में दूसरे सबसे बड़े मुस्लिम अल्पसंख्यक हैं। जम्मू और कश्मीर, असम और पश्चिम बंगाल जैसे कुछ राज्यों में हिन्दू जनसंख्या की तुलना में मुस्लिम अनुपात अधिक है। मुसलमान भी भाषा, संस्कृति और सामाजिक आर्थिक स्थितियों में इतने ही भिन्न हैं जितने कि हिन्दू। उत्तर प्रदेश के मुसलमानों और केरल के मुसलमानों में कोई समानता नहीं है। उनको मिलाने वाला कारक केवल धर्म है, यहाँ तक कि उनकी भाषा भी एक नहीं है। सूक्ष्म अवलोकन से यह स्पष्ट है कि 16 शहर जो हिन्दू-मुस्लिम दंगों के लिए अतिसंवेदनशील हैं वे हैं-उत्तर प्रदेश में मुरादाबाद, मेरठ, अलीगढ़, आगरा और वाराणसी; महाराष्ट्र में औरंगाबाद; गुजरात में अहमदाबाद, आन्ध्र प्रदेश में हैदराबाद, बिहार में जशेदपुर और पटना; असम में सिल्चर और गौहाटी; पश्चिम बंगाल में कलकत्ता; मध्य प्रदेश में भोपाल; जम्मू और कश्मीर में श्रीनगर, और उड़ीसा में कटक। आधुनिक भारत में हिन्दू-मुस्लिम सम्बन्ध किन-किन कारकों से प्रभावित होता है, एक मनोवैज्ञानिक ने स्पष्ट किया है कि हिन्दू एवं मुस्लिम की मनोवृत्ति एवं प्रत्यक्षण में काफी अन्तर है जो इन दोनों के आपसी सम्बन्ध को प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करता है। 1992-93 के रामजन्मभूमि-बाबरी मस्जिद के फैसलों ने साम्प्रदायिक सदभाव के सन्तुलन को गड़बड़ा दिया है। आज मुसलमान अपनी सुरक्षा और बचाव के लिए अधिक चिन्तित हैं।

7.4.2 हिन्दू-सिख साम्प्रदायिकता

भारत में सिखों का सबसे बड़ा केन्द्रीयकरण पंजाब में है जहाँ वे बहुमत में हैं। इतिहास से यह तथ्य सामने आया है कि सिख धर्म का आरम्भ हिन्दू धर्म के सिद्धान्तों के विरुद्ध एक सुधार आन्दोलन के रूप में हुआ था। दसवें गुरु के बाद सिखों में गुरुओं की परम्परा समाप्त हो गई और ग्रन्थ साहब को सर्वाधिक आदर दिया जाने लगा। सिख आन्दोलन जो अस्सी के दशक में प्रारम्भ में हुआ। जब एक स्थानीय सम्पादक की हत्या कर दी गई, श्रीनगर की उड़ानों पर एक वायुयान का अपहरण हुआ और एक कल्पित राष्ट्र, खलिस्तान के लिए पासपोर्ट जारी किये गए ,तब से यह आन्दोलन तेजी पकड़ने लगा। हत्याओं की संख्या बढ़ने लगी और सिखों का विरोध संगठित उग्रवादी एवं अधिक हिंसक हो गया। 1984 में जब अमृतसर के स्वर्ण मन्दिर में उग्रवादी सिखों द्वारा इकट्ठे किये गए हथियारों को जब्त करने और आतंकवादियों को निकालने के लिए पुलिस ने गुरुद्वारे में 'आपरेशन ब्लू स्टार' योजना के अन्तर्गत प्रवेश किया तो यह सिख बर्दाश्त नहीं कर पाये और अनेक सिख सरकार एवं कुछ हिन्दुओं के विरुद्ध हो गए । फिर 31 अक्टूबर 1984 को तत्कालीन प्रधानमंत्री श्रीमती इन्दिरा गाँधी की हत्या की गयी तो भारत के अनेक शहरों में हजारों सिखों की हत्या की गयी व उनके मकान एवं दुकानें जला दी गयीं एवं सम्पत्ति लूट ली गयी। इससे सिखों में हिन्दुओं के प्रति आक्रोश उत्पन्न हो गया और कुछ आतंकवादी सिखों ने ट्रेन और बसों में यात्रा

करने वालों हिन्दुओं को चुन-चुनकर मार डाला। हिन्दुओं और सिखों के बीच साम्प्रदायिक सदभाव के लिए प्रयत्नशील हरचन्द सिंह लोगोवाल की हत्या सन् 1985 में एक सिख हठधर्मी द्वारा की गयी। 1988 में जब अमृतसर के स्वर्ण मन्दिर में पुनः 'आपरेशन ब्लैक थन्डर' योजना द्वारा अनेक उग्रवादियों को दस दिन तक घेरे रहने के उपरान्त समर्पण करने के लिए मजबूर किया गया तब सिख उग्रवादियों ने पुनः अपना आन्दोलन तीव्र किया तथा कई शहरों में बम विस्फोट किये। यहाँ तक कि कनाडा से भारत आने वाले एक जहाज को बम-विस्फोट द्वारा उड़ाकर सैकड़ों हिन्दुओं को मार डाला गया। बहुत से हिन्दू उनके इन आतंकवादी गतिविधियों से डरकर पंजाब छोड़कर अन्य राज्यों में बस गए।

पंजाब में आतंकवाद की समस्या अब समाप्त हो चुकी है। परिणामस्वरूप हिन्दू-सिख समुदाय के बीच उत्पन्न मनमुटाव, अविश्वास, वैमनस्य, नकारात्मक मनोवृत्ति में थोड़ी कमी आई है और दोनों समुदायों के बीच सम्बन्ध पहले जैसे सामान्य होने लगे हैं।

साम्प्रदायिकता को रोकने के उपाय

डी. आर. गोयल ने साम्प्रदायिकता को रोकने के लिए निम्न उपायों को बताया है|

1. प्रशासनिक व्यवस्था प्रभावी बने जिससे साम्प्रदायिक तनावों का पूर्वानुमान लगाया जा सके तथा इन्हें रोकने के लिये उचित कदम उठाये जा सकें|
2. साम्प्रदायिक तत्वों को पहचान कर उनका खुलासा किया जाना चाहिये ताकि संदेह की स्थिति में जनता इसे तत्वों का साथ न दे|
3. राष्ट्रीयता के बारे में साम्प्रदायिक विचारों का मुकाबला राजनीतिक प्रचार द्वारा किया जाना चाहिये| शिक्षण संस्थाओं को इन तत्वों का विरोध करने के लिए प्रोत्साहित किया जाना चाहिये|
4. विभिन्न साम्प्रदायिक संगठनों पर रोक लगनी चाहिए राजनीतिक दलों की हितों की पूर्ति के लिये इनका उपयोग नही किया जाना चाहिए|

अभ्यास प्रश्न

1. पूर्वाग्रह का अर्थ है-
   a. वह मनोवृत्ति जो युक्ति संगत न हो
   b. वह व्यवहार जो किसी समूह के प्रति अनुचित हो
   c. वह व्यवहार जो विभेदन पर आधारित हो
   d. उपर्युक्त सभी
2. व्यक्तिगत सम्पर्क द्वारा पूर्वाग्रह को कम करना तभी सम्भव होता है, जबकि:
   a. परिचय क्षमता हो
   b. समान हैसियत हो

c. सहकारी पुरस्कार हो
d. उपर्युक्त सभी

3. साम्प्रदायिकता की विशेषता नहीं है:
   a. साम्प्रदायिकता एक व्यवस्था है
   b. साम्प्रदायिकता एक विचाराधारा है
   c. साम्प्रदायिकता एक विशेष धर्म के प्रति अन्धभक्ति है
   d. साम्प्रदायिकता चरमवादी होती है
4. साम्प्रदायिकता के परिणाम नहीं कहे जा सकते:
   a. पारस्परिक विश्वास
   b. राष्ट्रीय एकता में बाधक
   c. राष्ट्रीय सुरक्षा में बाधक
   d. पारस्परिक तनाव
5. सम्प्रदायवाद के कारण हैं:
   a. संकीर्णता
   b. राजनीति
   c. मतान्ध धार्मिक मूल्य
   d. उपर्युक्त सभी
6. पूर्वाग्रह को अन्तर समूह सम्पर्क द्वारा दूर किया जा सकता है। (सत्य/असत्य)
7. समूह सदस्यता में परिवर्तन करके पूर्वाग्रह को कम किया जा सकता है। (सत्य/असत्य)
8. साम्प्रदायिकता अपने ही जातीय समूह के प्रति तीव्र निष्ठा की भावना है। (सत्य/असत्य)
9. भारत में मुसलमानों की संख्या पाकिस्तान की तुलना में अधिक है। (सत्य/असत्य)

7.5 सारांश

पूर्वाग्रह सामाजिक रूप से परिभाषित समूह तथा उसके सदस्यों के प्रति एक निषेधात्मक अभिवृत्ति है। पूर्वाग्रह एवं विभेद के कारण अन्तर्वैयक्तिक संघर्ष तथा अन्तःसमूह संघर्ष उत्पन्न होते हैं। इससे लोगों में भेदभाव, तनाव, साम्प्रदायिक दंगे आदि उत्पन्न होते हैं। व्यक्ति तथा समाज दोनों ही स्तर पर पूर्वाग्रह के भयंकर परिणाम को देखते हुए समाज मनोवैज्ञानिकों ने पूर्वाग्रह को दूर करने हेतु अनेक तकनीकों का विकास किया है। इसके अन्तर्गत माता-पिता तथा अध्यापकों द्वारा समाजीकरण, शिक्षा, पूर्वाग्रहयुक्त व्यक्ति तथा लक्ष्य व्यक्ति के बीच सम्पर्क, कानून, व्यक्तित्व परिवर्तन, अलगाव विरोधी नीति, समूह सदस्यता में परिवर्तन, नागरिक संगठन आदि का उपयोग पूर्वाग्रह के निराकरण में किया गया है।

साम्प्रदायिकता का अर्थ है अपने सम्प्रदाय का हित चाहना और दूसरे सम्प्रदाय या सम्प्रदायों के हितों की उपेक्षा करना। साम्प्रदायिकता के अन्तर्गत वास्तव में वे सभी भावनाएँ व क्रियाकलाप आ जाते हैं जिनमें किसी धर्म अथवा भाषा के आधार पर किसी समुदाय विशेष के हितों पर बल दिया जाय और उन हितों

के ऊपर भी प्राथमिकता दी जाये तथा उस समूह में पृथकता की भावना उत्पन्न की जाये या उसको प्रोत्साहन दिया जाये। भारत में साम्प्रदायिकता मुख्य रूप से अंग्रेजों की 'फूट डालो और शासन करो' नीति की ही एक उपज है। भारत में देश के विभाजन से उत्पन्न हिन्दू मुस्लिम सम्बन्ध सामाजिक तनाव तथा साम्प्रदायिकता का एक महत्वपूर्ण स्रोत रहा है।

7.6 शब्दावली

1. औपचारिक शिक्षा-ऐसी शिक्षा जो विद्यालय या अन्य शिक्षण संस्थाओं द्वारा दी जाती है।
2. अनौपचारिक शिक्षा- अनौपचारिक शिक्षा माता-पिता, परिवार के अन्य सदस्यों व पास-पड़ोस के लोगों द्वारा बच्चों को दी जाती है।
3. मानसिक स्वास्थ्य- व्यक्ति के सम्पूर्ण व्यक्तित्व का पूर्ण रूप से अच्छी तरह तालमेल बिठाते हुए कार्य करते रहना।
4. तादात्मीकरण- किसी व्यक्ति के साथ स्व को आत्मसात करके उसी के अनुरूप व्यवहार करने तथा उसके व्यक्तित्व के अनुरूप अपना भी व्यक्तित्व विकसित करने से है।
5. विरासत- जो हमें अपने पूर्वजों से प्राप्त होती है।
6. प्रथा- समाज से मान्यता प्राप्त, पीढ़ी-दर-पीढ़ी हस्तान्तरित होने वाली सुव्यवस्थित दृढ़ जनरीतियाँ।
7. परम्परा- समुदायों में व्यक्तियों के उन सभी विचारों, आदतों और प्रथाओं का योग, जो एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को हस्तान्तरित होती रहती है।

7.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. d
2. d
3. a
4. a
5. d
6. सत्य
7. सत्य
8. सत्य
9. सत्य
10. असत्य

7.8 सन्दर्भ ग्रंथ सूची व उपयोगी सहायक ग्रंथ

1. सिंह, अरुण कुमार, (2006), 'समाज मनोविज्ञान की रूपरेखा', मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली।

2. त्रिपाठी , लालबचन, (1998-99), ‘आधुनिक सामाजिक मनोविज्ञान’, एच0पी0 भार्गव बुक हाउस, आगरा।
3. रामआहूजा, (2000), ‘सामाजिक समस्याएँ’, रावत पब्लिकेशन्स, जयपुर।
4. मिश्र, गिरीश्वर एवं जैन उदय, (1994), ‘समाज मनोविज्ञान के मूल आधार’, मध्य प्रदेश हिन्दी ग्रंथ अकादमी, भोपाल।
5. मो0 सुलेमान एवं दिनेश कुमार (2010), ‘मनोविज्ञान और सामाजिक समस्याएँ’, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली।
6. श्रीवास्तव, डी0एन0, (दसवाँ संस्करण), ‘सामाजिक मनोविज्ञान’, साहित्य प्रकाशन, आगरा।

7.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1. पूर्वाग्रह क्या है? इसे कैसे कम किया जा सकता है?
2. पूर्वाग्रह एवं विभेदन को दूर करने की विधियों का संक्षेप में वर्णन करें।
3. भारत में साम्प्रदायिकता पर एक संक्षिप्त निबन्ध लिखिए।
4. टिप्पणी लिखिए
   i. पूर्वाग्रह
   ii. साम्प्रदायिकता
   iii. हिन्दू-मुस्लिम साम्प्रदायिकता

इकाई 8 - संस्कृति एवं व्यक्तित्व का अर्थ एवं संस्कृति के प्रकार

इकाई संरचना-

8.1 प्रस्तावना
8.2 उद्देश्य
8.3 संस्कृति का अर्थ एवं स्वरूप
8.4 संस्कृति की सामान्य विशेषतायें
8.5 संस्कृति के प्रकार
8.6 संस्कृति के अध्ययन एवं उसकी तुलना की विधि
8.7 व्यक्तित्व का अर्थ
8.8 सारांश
8.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
8.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
8.11 निबन्धात्मक प्रश्न

8.1 प्रस्तावना

जन्म के समय शिशु न सामाजिक होता है और न असामाजिक। उस समय वह केवल कुछ जैविक गुणों वाला एक जीवित प्राणी होता है, धीरे- धीरे वह समाज की विशेष संस्कृति में पलते हुए सामाजिक प्राणी बन जाता है तथा उस संस्कृति के अनुसार ही उसके व्यक्तित्व का निर्माण होता है। शिशु जिस समाज में पैदा होता है उस समाज की भाषा बोली रहन सहन हाव-भाव एवं व्यवहार से संस्कृति को सीखने लगता है अर्थात बच्चा वहीं करता है जो वह अपने आस-पास के वातावरण में देख रहा होता है विकास के साथ-साथ बच्चा भाषा बोली रहन-सहन मूल्य विश्वास आदि सभी कुछ सीखने लगता है, जो उसके व्यक्तित्व के विकास का महत्त्वपूर्ण स्तम्भ होते हैं।

प्रत्येक समाज समूह एवं देश की एक अलग संस्कृति होती है। उसका अपना ताना बाना होता है। प्रत्येक समाज अपने लोगों को अपने मूल्य परम्परायें विश्वास, रूढियों कानून आदर्श सभी कुछ यानि प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष रूप से अपने व्यवहार के द्वारा शिशु को अपनी संस्कृति हस्तान्तरित करता है। जैसे बच्चा बड़ा होता है, परिवार व अन्य लोगों से अर्न्तक्रिया करने लगता है, व भाषा मूल्य आदर्श परम्परायें, विश्वास ,रूढ़िया, कानून, नैतिकता आदि सभी कुछ सीखने लगता है। उस संस्कृति का प्रभाव उसके व्यक्तित्व पर दिखाई देता है। अगर हम यों कहें कि व्यक्ति का सामाजिक व्यवहार उसकी संस्कृति की देन है , तो यह कहना गलत नहीं होगा। व्यक्ति के व्यक्तित्व की संरचना व्यक्ति की अपनी सांस्कृतिक विशेषताओं द्वारा

निर्धारित की जाती है, अर्थात व्यक्तित्व एवं संस्कृति का घनिष्ठ सम्बन्ध है। शायद इसलिए व्यक्तित्व को संस्कृति का आधार और संस्कृति का परिणाम कहा जाता है। अतः किसी व्यक्ति के सामाजीकरण को समझने से पूर्व और व्यक्तित्व के सन्दर्भ में बताने से पूर्व उसके सांस्कृतिक परिवेश को समझना आवश्यक होगा। इस इकाई के अध्ययन के बाद आप संस्कृति व व्यक्तित्व का अर्थ , संस्कृति के प्रकार व अध्ययन विधियों से अवगत हो सकेंगे।

8.2.उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के पश्चात् आप-

1. संस्कृति का अर्थ एवं स्वरूप बता सकेंगें।
2. संस्कृति को परिभाषित कर सकेंगें।
3. संस्कृति की विशेषतायें बता सकेंगें।
4. संस्कृति के प्रकार बता सकेंगें।
5. व्यक्तित्व का अर्थ बता सकेंगें व उसे परिभाषित कर सकेंगें।
6. संस्कृति के अध्ययन एवं उसकी तुलना की विधियों को समझ सकेंगे ।

8.3.संस्कृति का अर्थ एवं स्वरूप

शाब्दिक रूप से संस्कृति शब्द की उत्त्पत्ति ‘‘संस्कृत’’शब्द से हुई है संस्कृत का अर्थ होता है‘‘परिष्कृत‘‘इस प्रकार संस्कृति का सम्बन्ध उन सभी तत्वों की समग्रता से है जो समूह में व्यक्ति को परिष्कृत कर सकें । प्रत्येक मानव शिशु पर संस्कृति का प्रभाव ही नहीं पड़ता वरन वह उसको आत्मसात भी करता है और बदले में दूसरों को देता है। संस्कृति उस विधि का प्रतीक है जिसके आधार पर हम सोचते हैं और कार्य करते हैं। इसमें वे अमूर्त/अभौतिक भाव और विचार भी सम्मिलित हैं जो हम एक परिवार और समाज के सदस्य होने के नाते उत्तराधिकार में प्राप्त करते हैं। एक सामाजिक वर्ग के सदस्य के रूप में मानवों की सभी उपलब्धियाँ उसकी संस्कृति से प्रेरित कही जा सकती हैं। कला, संगीत, साहित्य, वास्तुविज्ञान, शिल्पकला, दर्शन, धर्म और विज्ञान सभी संस्कृति के प्रकट पक्ष हैं। तथापि संस्कृति में रीतिरिवाज, परम्पराएँ, पर्व, जीने के तरीके, और जीवन के विभिन्न पक्षों पर व्यक्ति विशेष का अपना दृष्टिकोण भी सम्मिलित हैं।

व्यक्ति किसी एक समाज में जन्म लेता है तथा वहीं पाला पोषा जाता है। स्वयं समाज की संरचना उस समाज की संस्कृति के आधार पर बनती है। इसका स्पष्ट अर्थ तब यह है कि व्यक्ति के व्यक्तित्व का निर्धारण न केवल सामाजिक कारकों बल्कि सांस्कृतिक कारकों द्वारा भी होता है। सामान्यतः संस्कृति से तात्पर्य उन सभी सीखे गये व्यवहारों की समग्रता से होता है। जिनका सम्बन्ध प्रथा, मानक, विश्वास, कला, ज्ञान मूल्यों आदि से होता है।

संस्कृति की कुछ आधुनिक वैज्ञानिक परिभाषाएं इस प्रकार हैं-

क्रचफील्ड एवं बैलकी (1962) के अनुसार "भौतिक तथा अभौतिक सभी व्यवस्थाओं का ऐसा प्रतिमान, जिसका सदस्यों की समस्याओं के पारस्परिक रूप में समाधान हेतु उपयोग होता रहता है संस्कृति कहा जाता है। इसमें व्यवहार (आचरण) निर्देशित करने सम्बन्धित सभी तरीकों तथा अव्यक्त, विश्वास, प्रतिमान मूल्य तथा आधार वाक्य (Premises) आदि सन्निहित होते हैं"।

लिण्डग्रेन (Lindgren,1973) के अनुसार संस्कृति मूल्यों विश्वासों, मानकों कौशलों तथा प्रतीकों से बना होता है जो एक समाज द्वारा विकसित होते हैं तथा उनके सदस्यों द्वारा प्रयोग किये जाते हैं।

सार्टेन, नार्थ स्ट्रेन्ज तथा चैपमैन (Sartain,Strange, North, Chapman1973) के अनुसार, संस्कृति से हम लोगों का अभिप्राय उन खास तरीकों से होता है जिनके अनुसार समाज के सदस्य व्यवहार करते हैं तथा जिसे वे नयी पीढ़ियों तक पहुंचाते हैं। संस्कृति के तत्वों में व्यक्तियों की भाषा, कौशल, कला, धर्म ,नियम, प्रथा तथा भौतिक सम्पत्ति सम्मिलित होते हैं।

होवेल (Hobble, 1958) के अनुसार "संस्कृति संगठित व सीखे गये व्यवहार प्रतिमानों का एक ऐसा सम्पूर्ण योग है, जो समाज के सदस्यों की विशेषताएं होती हैं और इसलिए वे जैविक विरासत का परिणाम नहीं होते हैं"।

इन परिभाषाओं के अध्ययन करने के बाद हमें संस्कृति के स्वरुप के बारे में कुछ तथ्य प्राप्त होते हैं जो निम्नांकित हैं-

i. संस्कृति के तत्व जैसे- भाषा, कला, धर्म, नियम विश्वास मूल्य तथा भौतिक सम्पत्ति अर्जित होते हैं न कि वे जैविक विरासत होते हैं। दूसरे शब्दों में संस्कृति के तत्व सीखे गये या अर्जित होते हैं,न कि व्यक्ति में जन्म से ही अपने आप मौजूद होते हैं।
ii. संस्कृति का प्रभाव समाज के सभी व्यक्तियों पर पड़ता है।
iii. संस्कृति के तत्वों को व्यक्ति सीखकर उसका हस्तान्तरण पीढ़ी दर पीढ़ी करते हैं।

8.4. संस्कृति की सामान्य विशेषतायें

i. संस्कृति सीखी जाती है और प्राप्त की जाती है, अर्थात् मानव के द्वारा संस्कृति को प्राप्त किया जाता है। इस अर्थ में कि कुछ निश्चित व्यवहार हैं जो जन्म से या अनुवांशिकता से प्राप्त होते हैं। व्यक्ति कुछ गुण अपने माता-पिता से प्राप्त करता है लेकिन सामाजिक-सांस्कृतिक व्यवहारों को पूर्वजों से प्राप्त नहीं करता हैं। वे पारिवारिक सदस्यों से सीखे जाते हैं, इन्हें वे समूह से और समाज से जिसमें वे रहते हैं,उनसे सीखते हैं। यह स्पष्ट है कि मानव की संस्कृति शारीरिक और सामाजिक वातावरण से प्रभावित होती है। जिनके माध्यम से वे कार्य करते हैं।
ii. संस्कृति लोगों के समूह द्वारा बाँटी जाती है- एक सोच या विचार या कार्य को संस्कृति कहा जाता है, यदि यह लोगों के समूह के द्वारा बाँटा और माना जाता या अभ्यास में लाया जाता है।

iii. संस्कृति संचयी होती है- संस्कृति में शामिल विभिन्न ज्ञान एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक हस्तान्तरित किया जा सकता है। जैसे-जैसे समय बीतता जाता है, ज्यादा से ज्यादा ज्ञान उस विशिष्ट संस्कृति में जुड़ता चला जाता है, जो जीवन में परेशानियों के समाधान के रूप में कार्य करता है, पीढ़ी दर पीढ़ी आगे बढ़ता रहता है। यह चक्र बदलते समय के साथ एक विशिष्ट संस्कृति के रूप में बना रहता है।

iv. संस्कृति परिवर्तनशील होती है- ज्ञान, विचार और परम्परायें नयी संस्कृति के साथ अद्यतन होकर जुड़ते जाते हैं। समय के बीतने के साथ ही किसी विशिष्ट संस्कृति में सांस्कृतिक परिवर्तन संभव होते जाते हैं।

v. संस्कृति गतिशील होती है- कोई भी संस्कृति स्थिर दशा में या स्थायी नहीं होती है। जैसे समय बीतता है संस्कृति निरंतर बदलती है और उसमें नये विचार और नये कौशल जुड़ते चले जाते हैं और पुराने तरीकों में परिवर्तन होता जाता है। यह संस्कृति की विशेषता है जो संस्कृति की संचयी प्रवृत्ति से उत्पन्न होती है।

vi. संस्कृति हमें अनेक प्रकार के स्वीकृति व्यवहारों के तरीके प्रदान करती है- यह बताती है कि कैसे एक कार्य को संपादित किया जाना चाहिये, कैसे एक व्यक्ति को समुचित व्यवहार करना चाहिए।

vii. संस्कृति भिन्न होती है- यह ऐसी व्यवस्था है जिसमें विभिन्न पारस्परिक भाग एक-दूसरे पर आश्रित हैं। यद्यपि ये भाग अलग होते हैं। वे संस्कृति को पूर्ण रूप प्रदान करने में एक दूसरे पर आश्रित होते हैं।

viii. संस्कृति अक्सर वैचारिक होती है-एक व्यक्ति से उन विचारों का पालन करने की आशा की जाती है, जिससे उसी संस्कृति के अन्य लोगों से सामाजिक स्वीकृति प्राप्त की जा सके।

8.5.संस्कृति के प्रकार

संस्कृति के दो तत्व बताये गयें हैं। भौतिक तत्व तथा अभौतिक तत्व। मकान मंदिर, कपड़े बर्तन सड़के आदि भौतिक तत्व के उदाहरण हैं तथा प्रथा विश्वास, मानक, मूल्य, धर्म आदि अभौतिक तत्व के उदाहरण है। इन दोनों तत्वों के आधार पर कुछ लोगों ने संस्कृति के निम्नांकित दो प्रकार बतलाए हैं।

- भौतिक संस्कृति - भौतिक संस्कृति उन विषयों से जुड़ी है जो हमारे जीवन के भौतिक पक्षों से सम्बद्ध होते हैं, जैसे हमारी वेशभूषा, भोजन, मन्दिर, मकान, उपकरण, दुकान, औजार,घरेलू सामान आदि। है। इन तत्वों द्वारा व्यक्तियों का मनोवृत्ति एवं व्यवहार परोक्ष रूप से प्रभावित होता है।

- अभौतिक संस्कृति- अभौतिक संस्कृति के निर्माण में अभौतिक तत्वों का समावेश होता है। इसके अंतर्गत समाज के मानक मूल्यों, विश्वासों, प्रथाओं,परम्पराओं आदि की गणना की जाती है। अभौतिक संस्कृति का प्रभाव समाज के व्यक्तियों के व्यवहारों एवं मनोवृत्तियों पर सीधा पड़ता है। फलस्वरुप यह लोगों के अन्तवैयक्तिक सम्बन्धों का भी प्रत्यक्ष निर्धारण करता है।

क्रेच, क्रेचफिल्ड तथा वैलेची ने संस्कृति को निम्नांकित दो भागों में बांटा है-

i. व्यक्त संस्कृति- व्यक्त संस्कृति से तात्पर्य समाज के सदस्यों के शाब्दिक तथा अशाब्दिक व्यवहार में प्रत्यक्ष रुप से देखे गये निरन्तरता तथा नियमितता से होता है। सदस्यों के व्यवहारों में दिखाई देने वाले सभी तरह के व्यवहार प्रतिमान इस संस्कृति के अंतर्गत आते हैं।
ii. अव्यक्त संस्कृति- अव्यक्त संस्कृति में समाज के मानक मूल्य, विश्वास, परम्परा आदि सम्मिलित होते हैं। समाज मनोवैज्ञानिक एवं मानवशास्त्रियों द्वारा समाज के व्यक्तियों के भिन्न-भिन्न तरह के असम्बन्धित व्यवहारों को समझने के लिए इसका प्रयोग किया जाता है।

8.6.संस्कृति के अध्ययन एवं उसकी तुलना की विधि

जब भी किसी समाज की संस्कृति का विस्तृत अध्ययन करते हैं तो उन्हें उस संस्कृति का विश्लेषण करना पड़ता है, ताकि वे उससे सम्बन्धित समस्याओं का अध्ययन ठीक ढंग से कर सकें। इसके लिए समाज मनोवैज्ञानिकों कुछ विधियों का प्रतिपादन किया है। ऐसी प्रमुख विधियां निम्नांकित हैं।

i. **क्षेत्र विधि (Field Method) -** इस विधि में अध्ययनकर्ता को उन व्यक्तियों के साथ रहना पड़ता है जिनकी संस्कृति का वे अध्ययन कर रहा होता है। वह उनके व्यवहारों का प्रेक्षण घर,बाहर तथा अन्य जगहों में करता है। वइ इन व्यक्तियों के शादी विवाह तथा अन्य सामाजिक कार्यक्रमों में एक अध्ययनकर्ता की हैसियत से भाग लेता है तथा उन सभी के व्यवहारों का एक रिकार्ड तैयार करता है। इस तरह से इस विधि में अध्ययनकर्ता एक सहभागी प्रेक्षक के रुप में कार्य करता है। व्यक्तियों के व्यवहारों का अध्ययन करनें में वह प्रेक्षण प्रविधि के अलावा साक्षात्कार का भी प्रयोग करता है। इसमें वह अध्ययन की जा रही संस्कृति में पले व्यक्तियों से उनके रहन सहन एवं जीवन के अन्य पहलुओं के बारे में पूछताछ कर एक रिकार्ड तैयार करता है। तैयार किये गये रिकार्ड का विश्लेषण कर अध्ययनकर्ता संस्कृति के बारे में कुछ निष्कर्षां पर पहुँचता है।

   इस विधि का प्रमुख गुण यह है कि यह सरल विधि है तथा इसके द्वारा चूंकि अध्ययनकर्ता वास्तविक परिस्थिति में रहकर तथ्य को प्राप्त करता है। अतः इसका परिणाम अधिक निर्भर योग्य होता है। इस विधि का प्रधान अवगुण यह है कि इसमें विश्वसनीयता कम पायी गयी है। रेडफील्ड (Redfield,1946) तथा लेविस (Lewis,1951) ने एक ही गांव की संस्कृति का अलग-अलग स्वतंत्र रुप से अध्ययन कर यह पाया कि दोनों व्यक्तियों द्वारा तैयार किये गये रिकार्ड में काफी अन्तर थे, जिनसे इन लोगों ने यह स्पष्ट निष्कर्ष निकाला कि क्षेत्र विधि में विश्वसनीयता अर्थात संगति नहीं होती है।

ii. विषय विश्लेषण- एक शोध प्रविधि के रुप में इस विधि का उपयोग बेरेलसन (Berelson,1952) द्वारा सबसे अधिक किया गया है। इस विधि में प्राप्त संचारों के विषय का क्रमबद्ध वस्तुनिष्ठ वर्णन किया जाता है। इस विधि द्वारा किसी संस्कृति के अध्ययन करने या विभिन्न संस्कृतियों का आपस में तुलनात्मक अध्ययन करने में एक महत्वपूर्ण पूर्वकल्पना यह होती है कि समाज के लोकप्रिय संचार जो मैगजीन, नाटक, रेडियो, टेलीविजन अखबार आदि द्वारा प्राप्त किये जाते हैं। उसके द्वारा समाज के

व्यक्तियों की सामान्य मनोवृत्तियां रहन सहन तथा अन्य व्यवहारों का सही-सही स्पष्टीकरण होता है। इस विधि द्वारा संस्कृति के अध्ययन करने में निम्नांकित चार प्रधान चरण बतलाये गये हैं।

- अध्ययन के पहले चरण में अध्ययनकर्ता को यह निश्चित करना होता है कि संचार के किस रुप को चुना जाय। उदाहरणार्थः किसी संस्कृति के अध्ययन करने के लिए अध्ययनकर्ता वहाँ से प्रकाशित अखबारों के सम्पादकीय विचारों को विषय के रुप में चुन सकता है।
- अध्ययन के दूसरे चरण में वह विषय के तत्वों की गणना करता है। यहां तत्व से मतलब विषय की मुख्य घटनाओं जैसे दूसरों की मदद करने की घटना, उपलब्धि, लड़ाई झगड़ा आदि। तत्वों की गणना के लिए वह विश्लेषण की इकाई तैयार करता है। विश्लेषण की इकाई शब्द, वाक्य, पैराग्राफ कुछ भी हो सकता है।
- अध्ययन का तीसरा चरण जो सबसे महत्वपूर्ण होता है में अध्ययनकर्ता उपयुक्त विश्लेषणात्मक श्रेणियों को चुनता है। विश्लेषणात्मक श्रेणी मूल्य श्रेणी के हो सकते हैं, या विषय वस्तु श्रेणी के हो सकते हैं या फिर पक्ष प्रतिपक्ष श्रेणी के हो सकते हैं।
- अध्ययन के अन्तिम चरण में अध्ययनकर्ता तैयार किये गये विश्लेषणात्मक श्रेणियों के आधार पर मात्रात्मक व्याख्या करता है। कभी -कभी वह इस मात्रात्मक व्याख्या के अलावा गुणात्मक व्याख्या भी सम्पूरक के रुप में कार्य करती है।

  चाइल्ड तथा उनके सहयोगियों ने अपने अध्ययनों में इस विधि की उपयोगिता को साबित किया है। इस विधि का एक प्रमुख अवगुण यह बतलाया गया है कि इसका प्रयोग संस्कृति के हर पहलुओं के अध्ययन में नहीं किया जा सकता है। खासकर अव्यक्त संस्कृति के कुछ पहलुओं के अध्ययन में इसका प्रयोग संभव नहीं हो पाता है।

iii. **क्रास सांस्कृतिक विधि (Cross Cultural Method) -** इस विधि का प्रयोग मूलतः कुछ सीमित संख्या में चुने गये समाज के संस्कृतियों का आपस में तुलना करने के लिए किया जाता है। इस विधि का मुख्य उद्देश्य चुने गये विभिन्न संस्कृतियों के बीच समानता तथा अन्तर पर प्रकाश डालना होता है। इस विधि में सबसे पहले अध्ययनकर्ता कुछ खास-खास सांस्कृतिक पहलुओं को चुनता है। और उन्हीं पहलुओं पर वह चुने गये समाज के संस्कृतियों की तुलना करता है। प्रत्येक समाज की संस्कृति को वह उन पहलुओं जैसे- कोई विशेष प्रथा, रीति रिवाज विश्वास, मूल्य पर एक प्राप्तांक प्रदान करता है, और बाद में वह इन्हीं प्राप्ताकों की तुलना करके विभिन्न संस्कृतियों के बीच व्याप्त समानता तथा अन्तर के बारे में एक सामान्य निष्कर्ष पर पहुँचता है। व्हाटिंग (Whiting,1954), मुरडॉक (Murdock]1954) ने अपने अध्ययनों में इस विधि की उपयोगिता का वर्णन किया है।

iv. **प्रक्षेपी विधियां एवं मनोवृत्ति मापनी (Projective Methods and Attitude Scale)-** कुछ अध्ययनकर्ताओं ने प्रक्षेपी प्रविधि तथा मापनी विधि द्वारा भी संस्कृति का अध्ययन किया है। प्रक्षेपी प्रविधि में संस्कृति के मूल्यों मानकों आदि से सम्बन्धित तस्वीरें होती हैं जिन्हें देखकर कुछ प्रश्नों का उत्तर उन व्यक्तियों को देना होता है, जो उस संस्कृति में पाले पोसे गये होते हैं। उनके दिये गए उत्तरों

का विश्लेषण कर अध्ययनकर्ता सम्बन्धित सांस्कृतिक मूल्यों तथा सांस्कृतिक मानकों के बारे में अंदाज लगाते हैं। गोल्डस्किमड तथा एडगर्टन (Goldschmidt &Adgerton1961) ने इस प्रक्षेपी प्रविधि द्वारा अमेरिका के एक जनजाति के सांस्कृतिक मूल्यों का सन्तोषजनक अध्ययन किया। मनोवृत्ति मापनी द्वारा भी संस्कृति के तत्वों का अध्ययन किया गया है। मनोवृति मापनी विशेष रुप से एक प्रश्नावली विधि के समान है जिसमें अंकित कथनों के प्रति की गयी अनुक्रियाओं के आधार पर संस्कृति के तत्वों अर्थात मूल्यों, प्रथाओं आदि के बारे में अनुमान लगाया जाता है। टर्नर (Turner,1960) ने एक मनोवृत्ति मापनी जो गटमैन प्रविधि पर आधारित थी, बनाकर अमेरिकन छात्रों एवं अंग्रेजी छात्रों के सांस्कृतिक मूल्यों का संतोषजनक तुलनात्मक अध्ययन किया।

इन प्रविधियों का एक दोष यह बतलाया गया है कि व्यक्ति अध्ययनकर्ता के साथ खुलकर सहयोग नहीं देते और उत्तरों की वास्तविक दिशा का ज्ञान अध्ययनकर्ता को नहीं होने देते हैं। इसका परिणाम यह होता है कि इस विधि द्वारा प्राप्त आंकड़ों पर पूर्णरुपेण विश्वास नहीं किया जा सकता है।

v. **कारक विश्लेषण विधि (Factor analysis Method)** -कारक विश्लेषण आधुनिक सांख्यिकीय अध्ययनों की देन है। मूलतः इस विधि का प्रतिपादन व्यक्तियों में विभिन्न मनोवैज्ञानिक कारकों को एक दूसरे से अलग करने के लिए किया गया था। परन्तु कुछ लोगों ने इस विधि का प्रयोग संस्कृति के तत्वों को पता लगाने में किया है। कारक विश्लेषण एक जटिल सांख्यिकीय विधि है जिसमें सहसम्बन्धों के आधार पर कुछ प्रमुख कारकों का पता लगाया जाता है। कैटेल (Cattle,1949) ने इस विधि का प्रयोग कर संस्कृति की मुख्य विमाओं का पता लगाया है। इस अध्ययन में उन्होंने 69 राष्ट्रीय संस्कृतियों से 2 चरों पर विभिन्न जीवन सम्बन्धी घटनाओं, स्रोतों से आंकडे इकट्ठा पर 2,556 अन्तर सहसम्बन्ध ज्ञात किये। इन अन्तर सहसम्बन्धों के आधार पर उन्होंने कुल 12 कारकों को अलग किया जिसे उस संस्कृति विशेष की प्रमुख विमा माना गया।

vi. इस विधि का प्रमुख अवगुण यह बतलाता है कि यह एक ऐसी सांख्यिकीय विधि है जो काफी जटिल है जिसके कारण इसका प्रयोग हर परिस्थिति में संभव नहीं है। विशेषकर जहां चरों की संख्या अधिक होती है, वहां इस प्रविधि का उपयोग करके कम समय में किसी निश्चित निष्कर्ष पर पहुंचना संभव नहीं है।

vii. इस तरह से हम देखते हैं कि संस्कृति के तत्वों अर्थात सांस्कृतिक मूल्यों, मानकों, प्रथाओं, आदि का अध्ययन तथा उनकी तुलना दूसरे संस्कृति के तत्वों से करने की अनेक विधियाँ है। इन विधियों में से प्रथम तीन अर्थात क्षेत्र विधि, विषय विश्लेषण विधि तथा क्रास सांस्कृतिक विधि अपेक्षाकृत अधिक महत्वपूर्ण हैं।

8.7. व्यक्तित्व का अर्थ

अनेक वर्षां से व्यक्तित्व को जीवन की सफलता व असफलता के निर्धारक के रुप में माना जाता रहा है, जैसे यदि किसी व्यक्ति में कुछ सामाजिक वांछनीय शीलगुण हैं, तो निश्चय ही उसने अपने माता-पिता से विरासत में प्राप्त किये होंगे। यदि वह आलसी है तो वह सक्रिय व प्रसन्न नहीं रह सकता। इसका यह अर्थ

है कि कोई भी व्यक्ति किसी भी इच्छा या प्रशिक्षण से अपनी उन विशेषताओं को नहीं बदल सकता जो उसके पास पहले से हैं। व्यक्ति अपने जीने का दास होता है। यदि हम इस विश्वास को स्वीकार कर लेते हैं तो व्यक्तित्व को परिमार्जित करने के लिए कुछ नहीं बचता। दैहिक शीलगुणों का पीढ़ी दर पीढ़ी अनुक्रमण होता है और उसमें परिवर्तन नहीं होता है, लेकिन उनके सहवर्ती व्यक्तित्व शीलगुणों में परिवर्तन होता रहता है। सर्व स्वीकृत विश्वास है कि शरीर में परिवर्तन के साथ-साथ व्यक्तित्व में परिवर्तन होता रहता है। चूंकि शारीरिक परिर्वतन विकासात्मक चरण का एक भाग है, जिस पर व्यक्तित्व का कोई नियंत्रण नहीं होता। यह माना जाता है कि सहवर्ती व्यक्तित्व परिवर्तन भी अनियत्रिंत होते हैं।

शारीरिक परिवर्तन या आमूल व्यक्तित्व परिवर्तन जीवन में दो बार होता है । पहला वयः सन्धि की अवस्था में जब बच्चे के शरीर का विकास वयस्क के समान होने लगता है और दूसरा वृद्धावस्था के समय जब उनकी पुनरुत्पादन क्षमता में ह्रास आ जाता है। पारम्परिक विश्वास है कि दैहिक व व्यक्तित्व परक विशेषताएं एक साथ चलती हैं। यह इतना अधिक लोकप्रिय है कि लोग शारीरिक विशेषताओं को देखकर व्यक्तित्व का आंकलन कर लेते हैं।

कुछ प्रतीकों का प्रयोग व्यक्तित्व के विश्लेषण हेतु होता है। वे आत्मन के महत्वपूर्ण प्रतीक होते हैं जैसे ,कपड़े, बोलचाल, नाम, खाली समय का उपयोग। बहुत से पारस्परिक विश्वास के अनुसार व्यक्ति के व्यक्तित्व का विकास उसी प्रकार से होता है जैसे कि उसके माता-पिता का। यह भी विकास की इच्छा को रोक देता है। यह माता-पिता और अध्यापकों की उस अभिप्रेरणा को अवरुद्ध कर देता है, जो वे बच्चों के प्रारम्भिक जीवन में व्यक्तित्व विकास हेतु प्रस्तुत करते हैं।

व्यक्तित्व की कुछ परिभाषाएं निम्नवत हैं।

आलपोर्ट (Allport 1937) के अनुसार ''व्यक्तित्व व्यक्ति के भीतर उन मनोशारीरिक तंत्रो का गत्यात्मक संगठन है, जो वातावरण में उसके अपूर्व समायोजन को निर्धारित करते हैं''।व्यहारवाद के जन्मदाता वाटसन (1924) ने सतही दृष्टिकोण से व्यक्तित्व को परिभाषित करने का प्रयास किया। उन्होंने अपनी रचना व्यवहारवाद में व्यक्तित्व की परिभाषा देते हुए कहा व्यक्तित्व का तात्पर्य विश्वसनीय सूचना हेतु एक लंबे समय तक निरीक्षण की जाने वाली क्रियाओं के योगफल से है।

चाइल्ड (Child,1968) के अनुसार ''व्यक्तित्व से तात्पर्य कमोवेश स्थायी आन्तरिक कारकों से होता है जो व्यक्ति के व्यवहार को एक समय से दूसरे समय में संगत बनाता है तथा तुल्य परिस्थितियों में अन्य लोगों के व्यवहार से अलग करता है''।

आइजेंक (Eysenck,1952) व्यक्तित्व व्यक्ति के चरित्र ,चित प्रकृति ज्ञान प्रकृति तथा शरीर गठन का करीब करीब एक स्थायी एवं टिकाउ संगठन है जो वातावरण में उसके अपूर्व समायोजन का निर्धारण करता है ।''

बैरोन (1993) व्यक्तियों के संवेगों , चितनों तथा व्यवहारों के अनूठे एवं सापेक्ष रूप से स्थिर पैटर्न के रूप में व्यक्तित्व को सामान्यतः परिभाषित किया जाता है

उपर्युक्त परिभाषाओं का संयुक्त विश्लेषण कर हम व्यक्तित्व के अर्थ को और अच्छी तरह से स्पष्ट कर सकते हैं, जो कि इस प्रकार है -

i. **मनोशारीरिक तंत्र (Psychophysical System)-**व्यक्तित्व एक ऐसा तंत्र (System) है जिसका मानसिक या मनोवैज्ञानिक तथा शारीरिक दोनों ही पक्ष होते हैं। यह तंत्र ऐसे तत्वों का एक गठन होता है जो आपस में अंतः क्रिया करते हैं। इस तंत्र के मुख्य तत्व शीलगुण, संवेग, आदत, ज्ञानशक्ति, चित्रप्रकृति, चरित्र तथा अभिप्रेरक आदि हैं जो सभी मानसिक गुण हैं, परन्तु इनका आधार शारीरिक अर्थात् व्यक्ति के ग्रंथीय प्रक्रियाएँ एवं तांत्रिकीय प्रक्रियाएँ हैं। इसका स्पष्ट मतलब यह हुआ कि व्यक्तित्व न तो पूर्णतः मानसिक या मनोवैज्ञानिक है और न ही पूर्णतः शारीरिक ही है। व्यक्तित्व इन दोनों तरह के पक्षों का मिश्रण है।

ii. **गत्यात्मक संगठन (Dynamic organization)-** गत्यात्मक संगठन से यह तात्पर्य होता है कि मनोशारीरिक तंत्र के भिन्न-भिन्न तत्व जैसे- शीलगुण, चित्रप्रकृति, चरित्र आदि एक-दूसरे से इस तरह संबन्धित होकर संगठित होते हैं कि उन्हें एक-दूसरे से पूर्णतः अलग नहीं किया जा सकता है। इस संगठन में परिवर्तन सम्भव है। यही कारण है कि इसे एक गत्यात्मक संगठन कहा गया है। उदाहरणस्वरूप, कोई व्यक्ति नौकरी पाने के पहले एक ईमानदार, उत्तरदायी तथा समयनिष्ठ गुणों को दिखा सकता है, परंतु नौकरी मिलने के कुछ वर्षों बाद उसमें उत्तरदायित्व तथा समयनिष्ठता का शीलगुण ज्यों-का-त्यों हो सकता है। परंतु सम्भव है कि उसमें ईमानदारी का गुण बदलकर बेइमानी का गुण विकसित हो जाय। इन शीलगुणों के संगठन में इस तरह का परिवर्तन गत्यात्मक संगठन का उदाहरण है इस तरह के संगठन में विसंगठन भी सम्मिलित होता है जिसके सहारे असामान्य व्यवहार की व्याख्या होती है। दूसरे शब्दों में, यदि किसी व्यक्ति के शीलगुणों के संगठन में इस ढंग का परिवर्तन आ जाता है कि उसका व्यवहार विसंगठित हो जाता है तथा जिसके परिणामस्वरूप वह असमान्य व्यवहार अधिक करने लग जाता है, तो इसे भी गत्यात्मक संगठन की श्रेणी में ही रखेंगे।

iii. **वातावरण में अपूर्व समायोजन का निर्धारण -**प्रत्येक व्यक्ति में मनोशारीरिक गुणों का एक ऐसा गत्यात्मक संगठन पाया जाता है कि उसका व्यवहार वातावरण में अपने-अपने ढंग का होता है। इसका मतलब यह हुआ कि वातावरण समान होने पर भी प्रत्येक व्यक्ति का व्यवहार, चिंतन प्रक्रिया, संवेग आदि अपूर्व होता है जिसके कारण वातावरण के साथ समायोजन करने का ढंग भी प्रत्येक व्यक्ति में अलग-अलग होता है। आइजेंक, आलपोर्ट तथा मिसकेल ने इस पक्ष पर करीब-करीब समान रूप से अपनी-अपनी परिभाषाओं में बल डाला है। यही कारण है कि आलपोर्ट ने इस बात पर बल डाला है कि व्यक्ति वातावरण के साथ सिर्फ अभियोजन या अनुकूलन ही नहीं करता है बल्कि इस वातावरण के साथ वैसी अंतः क्रिया भी करता है जिससे वातावरण को भी व्यक्ति के साथ अनुकूल या अभियोजन योग्य होना पड़ता है।

हम कह सकते हैं कि व्यक्तित्व विभिन्न शीलगुणों का एक ऐसा गत्यात्मक संगठन होता है जिसके कारण व्यक्ति का व्यवहार तथा विचार किसी भी वातावरण में अपने ढंग का होता है।

अभ्यास प्रश्न

1. प्रथा, विश्वास, मानक, मूल्य, धर्म संस्कृति के भौतिक तत्व हैं। (सत्य/असत्य)
2. संस्कृति सीखी जाती है। (सत्य/असत्य)
3. आलपार्ट के अनुसार व्यक्तित्व व्यक्ति के भीतर मनोशारीरिक तंत्रो का गत्यात्मक संगठन है। (सत्य/असत्य)
4. क्रास सांस्कृतिक विधि का प्रयोग संस्कृतियों की आपस में तुलना करने के लिए नहीं किया जाता है।(सत्य/असत्य)

8.8. सारांश

व्यक्ति किसी एक समाज में जन्म लेता है तथा वहीं पाला पोषा जाता है। स्वयं समाज की संरचना उस समाज की संस्कृति के आधार पर बनती है। इसका स्पष्ट अर्थ यह है कि व्यक्ति के व्यक्तित्व का निर्धारण न केवल सामाजिक कारकों बल्कि सांस्कृतिक कारकों द्वारा भी होता है। सामान्यतः संस्कृति से तात्पर्य उन सभी सीखे गये व्यवहारों की समग्रता से होता है। जिनका सम्बन्ध प्रथा, मानक, विश्वास, कला, ज्ञान मूल्यों आदि से होता है।

संस्कृति के दो तत्व बतलाये हैं। भौतिक तत्व तथा अभौतिक तत्व। मकान मंदिर, कपड़े बर्तन सड़कें आदि भौतिक तत्व के उदाहरण हैं तथा प्रथा, विश्वास, मानक, मूल्य, धर्म आदि अभौतिक तत्व के उदाहरण है। संस्कृति के अध्ययन हेतु कई विधियों का प्रयोग किया जाता है प्रमुख विधियां- क्षेत्र विधि,क्रास सांस्कृतिक विधि, प्रक्षेपी विधि, कारक विश्लेषण विधि आदि हैं। व्यक्तित्व विभिन्न शीलगुणों का एक ऐसा गत्यात्मक संगठन होता है जिसके कारण व्यक्ति का व्यवहार तथा विचार किसी भी वातावरण में अपने ढंग का होता है।

8.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. असत्य
2. सत्य
3. सत्य
4. असत्य

8.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. होवेल (1958) मैन इन द प्रिमिटिव वर्ड,पेज- 7
2. लिंडग्रेन (1973) एन इंट्रोडक्शन टू सोशल साइकोलोजी. पेज- 270
3. सिंह ,अरुण कुमार (2015).समाज मनोविज्ञान की रूपरेखा.मोतीलाल बनारसी दास.बंगलो रोड,जवाहर नगर, नई दिल्ली

8.11 निबन्धात्मक प्रश्न

1. संस्कृति क्या है? परिभाषित कीजिये। तथा संस्कृति के अध्ययन की विभिन्न विधियों की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिए।
2. संस्कृति क्या है? संस्कृति को परिभाषित कीजिए।
3. संस्कृति की विशेषतायें बताते हुए उसके प्रकारों का वर्णन कीजिए।

इकाई 9- संस्कृति एवं व्यक्तित्व में सम्बन्ध, व्यक्तित्व के विकास में संस्कृति का प्रभाव, व्यक्तित्व अध्ययन के उपागम

इकाई संरचना-

9.1 प्रस्तावना
9.2 उद्देश्य
9.3 संस्कृति एवं व्यक्तित्व में सम्बन्ध
9.4 संस्कृति का व्यक्तित्व पर प्रभाव
9.4.1 संस्कृति तथा व्यक्तित्व के कुछ पुरातन अध्ययन
9.4.2 संस्कृति तथा व्यक्तित्व के कुछ आधुनिक अध्ययन
9.4.3 व्यक्तित्व का संस्कृति पर प्रभाव
9.5 व्यक्तित्व के सैद्धान्तिक उपागम
9.6 सारांश
9.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
9.8 निबन्धात्मक प्रश्न

9.1 प्रस्तावना

कहा गया है कि ‘‘व्यक्ति अपनी संस्कृति का आईना होता है‘‘ संस्कृति एवं व्यक्ति हमेशा एक दूसरे को प्रभावित करते हैं। व्यक्तित्व एवं संस्कृति में सम्बन्ध बताते हुए रयूटर एवं हार्ट (Reuter and Hart) ने कहा है कि‘‘समाज मनुष्य को पशु जीवन से अवश्य अलग करता है, लेकिन इस बात का निर्धारण संस्कृति ही करती है कि व्यक्ति के व्यक्तित्व का रूप किस प्रकार होगा।‘‘अर्थात जब बच्चा जन्म लेता है वह मात्र शरीर होता है अर्थात कच्चे माल की तरह। वह जिस संस्कृति में जन्म लेता है वह संस्कृति उसके अनुभवों व व्यवहारों को प्रभावित करना प्रारम्भ कर देती है। संस्कृति में ही बच्चे का व्यक्तित्व विकसित होने लगता है। व्यक्ति को भी अगर अपनी संस्कृति में किसी प्रकार की बुराई नजर आती है तो उसमें परिवर्तन करने के लिए वह अन्य व्यक्तियों को भी प्रेरित करता है। इस प्रकार व्यक्ति एवं संस्कृति लगातार एक दूसरे को प्रभावित करते रहते हैं ओर यही प्रभाव संस्कृति में एक निरन्तरता बनाये रखता है, व्यक्ति अपने आगामी पीढ़ी को अपनी संस्कृति को हस्तान्तरित करता है। इसलिए मानव अपनी बुद्धि विवेक एवं संस्कृति के कारण निरन्तर आगे बढ़ रहा है।

9.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप -

1. संस्कृति एवं व्यक्तित्व में सम्बन्ध जान सकेंगे।
2. व्यक्तित्व के विकास में संस्कृति के प्रभाव को समझ सकेंगे।
3. व्यक्तित्व के सैद्धान्तिक उपागमों का वर्णन कर सकेंगे।

9.3 संस्कृति एवं व्यक्तित्व में सम्बन्ध

व्यक्ति के व्यक्तित्व के विकास पर संस्कृति की अहम भूमिका है। व्यक्ति का व्यक्तित्व संस्कृति के अनुरूप होता है। जन्मकाल से ही शिशु का पालन-पोषण तथा सामाजीकरण उसकी सांस्कृतिक परम्परा के अनुरूप होता है। प्रत्येक संस्कृति में शिशु के सामाजीकरण की एक विधि होती है क्योंकि इसी विधि के द्वारा संस्कृति अपने को सुरक्षित रखती है। संस्कृति और व्यक्तित्व एक दूसरे के पूरक होते हैं। आज के अधिकतर मनोवैज्ञानिकों का यह विचार है कि संस्कृति और व्यक्तित्व दो भिन्न वस्तुएं नहीं हैं, बल्कि एक ही वस्तु के दो पहलू हैं। जिस संस्कृति में बालक का लालन-पालन होता है उसी संस्कृति के गुण उसके व्यक्तित्व में आ जाते हैं।

मैकाईवर और पेज (MacIver and Page) के शब्दों में "संस्कृति हमारे रहने व सोचने के ढंगों में, दैनिक कार्यकलापों में, कला में, साहित्य में, धर्म में, मनोरंजन और सुखोपभोग में हमारी प्रकृति की अभिव्यक्ति है"।इस तरह संस्कृति कार्य करने की शैलियों, मूल्यों, भावात्मक लगावों और बौद्धिक अभियान का क्षेत्र है। एक संस्कृति दूसरी संस्कृति से इन्हीं गुणों के आधार पर भिन्न होती है। अलग-अलग संस्कृतियों के अलग-अलग मूल्य होते हैं। जैसे-प्राचीन काल में भारतीय लोग धर्मपरायण और आध्यात्मिक थे। आधुनिक भारतीय उतने आध्यात्मिक एवं धार्मिक नहीं हैं। फिर भी उनमें आध्यात्मिक एवं धार्मिक मूल्य उच्च स्तर के हैं। इसका कारण भारतीय संस्कृति का प्रभाव ही है। पाश्चात्य लोगों के लिए भौतिक व मानसिक मूल्य उच्च स्तर के हैं। इसी तरह अलग-अलग संस्कृति के समाजों में रहन-सहन, रीति-रिवाज, धर्म, कला, मूल्यों और परम्पराओं में भिन्नताएं देखी जा सकती हैं। कुछ संस्कृतियों की जातियों में मनुष्य हत्या को पाप समझते हैं तो दूसरी ओर नागा संस्कृति में उन लोगों का बड़ा सम्मान होता है जो नर मुण्ड काट के लाते है। जो व्यक्ति जितने ज्यादा नर मुण्ड काटता है उतनी ही समाज में उसकी प्रतिष्ठा बढ़ती है और उतने ही ज्यादा स्त्रियों के विवाह के प्रस्ताव आते हैं। जबकि दूसरी संस्कृति में नर हत्या करने वाले के साथ समाज के लोग अपनी बेटी का विवाह नहीं करना चाहते। भारतीय संस्कृति के कुछ परिवारों में तलाक देना अच्छा नहीं माना जाता परन्तु कुछ जनजातियों में जो स्त्री जितने अधिक तलाक पाती है, उसकी प्रतिष्ठा उतनी ही अधिक बढ़ती है। पाश्चात्य देशों में तलाक को बुरा नहीं माना जाता है। कुछ समाज में कुंआरी कन्या के गर्भवती हो जाने पर कोई उससे विवाह नहीं करता, परन्तु कुछ जन-जातियों में विवाह से पहले संतानोत्पत्ति करना लड़की के विवाह में सहायक होता है। इस तरह की सांस्कृतिक भिन्नताएं बालक के व्यक्तित्व के विकास पर प्रभाव डालती हैं। संस्कृति की छाप व्यक्तित्व के शीलगुणों के विकास पर सीधी पड़ती है। संस्कृति विशेष पालन-पोषण प्रक्रिया एवं अन्य समान प्रक्रियाओं द्वारा व्यक्तित्व के शीलगुणों को विकसित करता है तथा उसे खास सांचे में ढालता भी है।

9.4 संस्कृति का व्यक्तित्व पर प्रभाव

प्रत्येक समूह या समाज की अपनी मान्यतायें होती है। मानव को उन मान्यताओं के अनुरूप ही व्यवहार करना पड़ता है, ऐसा न करने पर समूह तथा समाज व्यक्ति को दण्ड, आलोचना एवं तिरस्कार का सामना करना पड़ता है। चूंकि शिशु जब पैदा होता है तो उसे मानव निर्मित पर्यावरण मिलता है। उसी पर्यावरण में वह जीवन जीने का सलीका सीखता है, यह पर्यावरण ही उसकी संस्कृति होती है। व्यक्ति का सम्पूर्ण जीवन संस्कृति से होकर गुजरता है अर्थात कहने का तात्पर्य यह है कि संस्कृति व्यक्ति के सम्पूर्ण व्यक्तित्व को विभिन्न कारकों द्वारा प्रभावित करती रहती है।

व्यक्तित्व पर संस्कृति के प्रभावों को दिखलाने के लिए वैज्ञानिकों ने जितने भी अध्ययन किये हैं उन्हे मूलतः दो भागों में बांटा जा सकता है -

i. पुरातन समाजों में संस्कृति तथा व्यक्तित्व के कुछ अध्ययन
ii. आधुनिक समाज में संस्कृति तथा व्यक्तित्व के कुछ अध्ययन

9.4.1. संस्कृति तथा व्यक्तित्व के कुछ पुरातन अध्ययन

व्यक्तित्व पर संस्कृति के प्रभावों को दिखलाने के लिए रुथ बेनेडिक्ट तथा मारगैरेट मीड रुथ बेनेडिक्ट ने अपनी पुस्तक पैटर्नस् आफ कल्चर में निम्नांकित तीन पुरातन समाज के सदस्यों के व्यक्तित्व उनके संस्कृति के पड़ने वाले प्रभावों के अध्ययन की चर्चा की है। ये तीन समाज हैं- क्वाकिटयूटल समाज, डोबूसमाज, जूनि समाज।

i. **क्वाकियूटल समाज-** क्वाकियूटल समाज के जनजाति के लोग प्रशान्त उत्तरी पश्चिमी क्षेत्र में रहते हैं। इस समाज में वर्ग व्यवस्था के नियमों का पालन काफी कठोरता से किया जाता है। प्रत्येक वर्ग के मुखिया या प्रधान को धार्मिक या राजनैतिक अधिकार प्राप्त होते हैं। समाज में उन व्यक्तियों की प्रतिष्ठा सबसे अधिक होती है जो धन अधिक मात्रा में इकट्ठा करते है तथा उनकी बर्बादी भी अधिक मात्रा में करते हैं। समाज में पितृसत्तात्मक परिवार होते हैं जिसके अनुसार पिता के बाद परिवार के समस्त सम्पत्ति का उत्तराधिकारी बड़ा भाई होता है। सबसे छोटे लड़के को काफी चतुर एवं चालाक समझ जाता है। ऊँचे कुल की लड़कियों से शादी हो जाने पर उस परिवार की सामाजिक प्रतिष्ठा एवं स्तर बढ़ी हुई मानी जाती है। असाधारण बहादुरी दिखलाने पर भी व्यक्ति का सामाजिक स्तर उँचा उठ जाता है। इस समाज में अपने सामाजिक स्तर को उँचा करने के लिए विशेष संस्थागत प्रविधि भी होती है। जिसे पोटलैच कहा जाता हे।

   क्वाकियूटल जनजाति के इस सांस्कृतिक प्रतिमानों का प्रभाव उनके व्यक्तित्व विकास पर काफी अधिक पड़ता है। चूकि समाज में वर्ग व्यवस्था अधिक कटुरुप में होती है तथा उच्च सामाजिक प्रतिष्ठा प्रभुत्व करने के लिए एक होड़ सी रहती है। अतः इन लोगों में प्रतिस्पर्द्धा की भावना तीव्र होती है। प्रतिस्पर्द्धा की भावना के अलावा इन लोगों में तीव्र ईर्ष्या की भावना होती है। चूँकि बड़े भाई को

ही समस्त सम्पत्ति मिल जाती है। इस जनजाति में धार्मिक विश्वास का अभाव पाया जाता है क्योंकि इनकी संस्कृति भौतिकवादी होती है।

ii. **डोबू समाज-** डोबू जनजाति के लोग पूर्वी न्यू गिनिया के नजदीक एक द्वीप में रहते हैं। इस मसाज की संस्कृति में धोखेबाजी, चोरी, दूसरों को क्षति पहुँचाना आदि कार्यां को अच्छा समझा जाता है। पति एवं पत्नी के बीच विद्वेष अधिक पायी जाता है। प्रत्येक व्यक्ति को किसी न किसी तरह के शक की निगाह से देखा जाता है। इन लोगों में ऐसा विश्वास पाया जाता है कि दूसरों के आक्रमण से बचने के लिए तथा दूसरों पर आक्रमण करने के लिए जादू का ट्रिक जानना जरुरी है। डोबू समाज के इस सांस्कृतिक प्रतिमानों का परिणाम उनके व्यक्तित्व विकास पर अधिक पड़ता है। बेनेडिक्ट के अनुसार इस जनजाति के लोग अधिक ईष्यालू, विद्वेषी तथा शक्की होते हैं। जो व्यक्ति इस समाज में सबसे सामान्य होता है, उसे हम लोग अपने समाज में असामान्य कह सकते हैं।

iii. **जूनि समाज-** इस समाज में नेतृत्व सम्बन्धी कार्यां एवं प्रभुत्व को बुरा समझा जाता है और जो व्यक्ति इस तरह का कार्य करते हैं उसे घृणा की दृष्टि से देखते हैं। ये लोग शान्ति तथा दोस्ताना सम्बन्धी कार्यों को अधिक महत्वपूर्ण समझते हैं। जूनि समाज के इन सांस्कृतिक प्रतिमानों का परिणाम यह होता है कि इन लोगों के व्यक्तित्व में सहनशीलता, सांवेगिक स्थिरता तथा क्रमबद्धता आदि जैसे शीलगुणों का विकास तेजी से होता है।

इसके अलावा 1935 में मारगैरेट मीड (Margaret Mead) ने अपनी पुस्तक श्सेक्स एण्ड टैम्परामेंट इन थ्री प्रिमिटिव सोसाइटीजश् के निम्नांकित तीन जनजातियों के व्यक्तित्व के विकास में उनके सांस्कृतिक प्रतिमानों के प्रभावों को दिखलाकर रुथ बेनेडिक्ट के विचारों को पुष्ट किया-

i. **एरापेश जनजाति-** जैसा कि कहा जा चुका है यह जनजाति न्यू गिनिया में पायी जाती है। इस जनजाति के लोग न्यू गिनिया के ऐसे पहाड़ी क्षेत्र में रहते हैं जो बाहरी दुश्मनों से पूर्ण रुपेण सुरक्षा प्रदान करता है। ये लोग कृषि व्यापार एवं शिकार द्वारा अपना रोजी रोटी चलाते हैं। इस जनजाति के लोगों में कोई सामाजिक संगठन नहीं होता है क्योंकि इसकी कोई जरूरत नहीं महसूस की जाती है। बिना इस तरह के संगठन के ही लोगों में एक दूसरे को मदद करने की भावना तीव्र होती है। चूंकि उनके क्षेत्र की सड़के एवं गलियां काफी चिकनी होती हैं। अतः उनमें कोई बड़ी सामाजिक पार्टी या कार्यक्रम अक्सर नहीं हो पाता है। इस जनजाति के पुरुषों एवं स्त्रियों दोनों में ही नारीगुण की श्रेष्ठता पायी जाती है। इन लोगों में शिशुओं के पालन पोषण में माता और पिता समान रुप से हाथ बंटाते हैं। ऐरापेश जनजाति के इन सांस्कृतिक प्रतिमानों का परिणाम यह होता है कि ऐसे लोगों के व्यक्तित्व में सहानुभूति, प्रेम सदभावना एवं सहयोग आदि का शीलगुण पाया जाता है।

ii. **मुण्डुगुमोर जनजाति-** यह जनजाति भी न्यू गिनिया में ही पायी जाती है। इस जनजाति की भौगोलिक स्थिति तथा जलवायु करीब - करीब एरापेश जनजाति के भौगोलिक स्थिति एवं जलवायु के ही समान है। फिर भी इनके व्यक्तित्व के शीलगुण ऐरापेश जनजाति के शीलगुणों से काफी भिन्न होते हैं। मुण्डुगुमोर जनजाति में बच्चों के पालन पोषण करने का तरीका ही कुछ ऐसा है ,जिससे बाद में चलकर उनमें असुरक्षा एवं निराशा की भावना ही नहीं बल्कि निर्दयता एवं आक्रामकता की भावना

तीव्र रुप से उत्पन्न हो जाती है। इस जनजाति की स्त्रियां अपने शिशुओं का पालन पोषण करने में उन्हें स्तन पान नहीं कराना चाहती है। या बहुत कम समय तक करा कर बंद कर देती हैं। जब शिशु रोते हैं तो स्त्रियां उन्हें थप्पड़ मार मारकर चुप कराती हैं। शिशुओं के पालन पोषण से वे काफी दूरी रहना चाहती हैं तथा वे उनका तिरस्कार भी काफी करती हैं। ऐसा देखा गया है कि कभी- कभी माँ की उपेक्षा के कारण शिशुओं की मृत्यु भी हो जाती है। शिशुओं को अपनी माता से इस प्रकार मिलने वाला दुर्व्यवहार ,तिरस्कार एवं फटकार का परिणाम यह होता है कि वयस्क होने पर वे लोग निर्दयी, आक्रामक, प्रतिद्वन्द्वी, ईर्ष्यालु, शंकालू एवं अहंवादी स्वभाव के हो जाते हैं।

iii. **शाम्बूली जनजाति-** इस जनजाति की संस्कृति स्त्री प्रधान होती है। इसमें महिलाऐं कठिन एवं सभी महत्वपूर्ण कार्य करती हैं और समाज पर उन्ही की हुकूमत चलती है। पूरे समुदाय का शासन प्रबन्ध स्त्रियां ही करती हैं। पुरुष घर का कामकाज सम्भालते हैं। तथा रसोई एवं बच्चों के पालन पोषण की जिम्मेदारी उन्हीं की होती है। पुरुष क्लब में जाते हैं और नाचते भी हैं। स्त्रियां उनके नाचों को देखने के लिए दूर दूर से आकर एकत्रित होती हैं। स्त्रियां स्वयं ही अपने पति का चुनाव करती हैं परन्तु पुरुषों में विनम्रता, सहनशीलता एवं भावुकता का शीलगुण अधिक होता है जबकि स्त्रियों में प्रभुत्व आका्रमकता ,उत्तरदायित्व आदि का शीलगुण अधिक होता है।

इन सभी के अलावा कुछ समाजशास्त्रियों तथा सांस्कृतिक मानवशास्त्रियों ने कुछ और जनजातियों के संस्कृति का व्यक्तित्व पर पड़ने वाले प्रभावों का अध्ययन किया है। इनमें न्यू मैक्सिको के होपी जनजाति तथा ग्रीनलैंड के एस्किमो आदि प्रधान हैं। होपी जनजाति में वर्णव्यवस्था नहीं पाया जाती है तथा समाज की आर्थिक व्यवस्था को सुचारु रुप से चलाने के लिए लोग आपस में अधिक सहयोग करते हैं। इस जनजाति में धार्मिक व्यवस्था को छोड़कर अन्य सभी तरह की सामाजिक व्यवस्था में स्त्रियों का स्थान प्रमुख हाता है। इन लोगों में सहयोगिता के अलावा धर्मपरायणता भी पायी जाती है। इस तरह की संस्कृति में पलने के कारण होपी लोग दयालु, सहयोगी तथा समाजसेवी अधिक होतें हैं। इन लोगों में दूसरों पर आश्रित रहने की प्रवृत्ति भी अधिक होती है तथा घमंड एवं स्वार्थ सम्बन्धी इच्छाओं का सर्वथा अभाव पाया जाता है।

एस्किमों जनजाति की संस्कृति में व्यक्तिवादिता अधिक पायी जाती है। शिकार करके जीविका चलाना यहां के लोगों का मुख्य धन्धा है। प्रत्येक व्यक्ति अपने लिए अलग अलग शिकार करता है और यहां तक कि औजारों एवं हथियारों का निर्माण भी स्वयं ही करता है। कोई भी दूसरा व्यक्ति उन औजारों एवं हथियारों का प्रयोग नहीं कर सकता है। प्रत्येक व्यक्ति को चाहे जिस तरीके से क्यों न हो आर्थिक योगदान करना होता है। एस्किमो के इस सांस्कृतिक प्रतिमान का प्रभाव यह होता है कि इन लोगों में आत्मनिर्भरता, प्रतिद्वन्द्विता, आक्रामकता, नेतृत्व आदि शीलगुणों की प्रधानता होती है।

ऊपर के विवरण से स्पष्ट है कि संस्कृति का प्रभाव व्यक्तित्व के शीलगुणों के विकास पर सीधा एवं प्रत्यक्ष रुप से पड़ता है। संस्कृति में जिन-जिन कार्यां पर अधिक बल डाला जाता है इन कार्यों से सम्बन्धित शीलगुणों का विकास तीव्रता से होता है।

9.4.2 संस्कृति तथा व्यक्तित्व के कुछ आधुनिक अध्ययन

कुछ समाजशास्त्रियों मानवशास्त्रियों तथा मनोवैज्ञानिकों ने संस्कृति का आम व्यक्तियों पर अध्ययनों के आधार पर संस्कृति का व्यकित्व विकास पर प्रभाव दिखाया है। एन्थोनी (Anthony,1974)) के अध्ययन के अनुसार जिस संस्कृति में पारिवारिक कलह एवं झगड़े होते रहते हैं। उनके बच्चों की बुद्धि, सर्जनात्मक क्षमता तथा संज्ञानात्मक शैली का विकास मन्दित हो जाता है।

ब्रोर्नफेनब्रेनर (Bornfenbrenner,1970) - के अध्ययन में अमेरिकन बच्चों की मनोवृत्ति साथी उन्मुखी अधिक तथा वयस्क उन्मुखी कम थी जबकि रुसी बच्चों की मनोवृत्ति वयस्क उन्मुखी अधिक, साथी उन्मुखी कम थी। स्टैनली मिलग्राम (Stanley Milgram,1961) ने फ्रेंच बच्चों की तुलना नार्वेनियन बच्चों के साथ की। परिणाम में पाया कि फ्रेंच बच्चों में स्वतंत्रता का शीलगुण तुलनात्मक रुप से अधिक था, परन्तु नार्वेयिन बच्चों में अनुरुपता का गुण फ्रेंच बच्चों को अपेक्षा अधिक था। कोनिंग (Koening,1971) ने एक अध्ययन में तीन संस्कृति के व्यक्तियों की तुलना की गयी। वे तीन संस्कृति थे- अमेरिकन, फ्रेंच, तथा स्वेडिस , परिणाम में यह देखा गया कि अमेरिकन प्रयोज्यों द्वारा फ्रेंच प्रयोज्यों की तुलना में सहमति जन्य अनुक्रियाएं अधिक की गयी। इन्होंने अपने इस अध्ययन में यह पाया कि इन तीनों संस्कृतियों में प्रथम जन्म क्रम वाले बच्चों में सहमतिजन्य अनुक्रियाएं बाद के जन्म क्रम वाले बच्चों की अपेक्षा अधिक थी। कोनिंग ने यह भी बतलाया है कि स्वेडिस माता-पिता अमेरिकन या फ्रेंच माता-पिता की तुलना में अपने बच्चों के प्रति अधिक अनुक्रियाशील नहीं होते। ग्रीकवासियों की संस्कृति में समझौते को एक तरह से समूह निष्ठा के प्रति धोखा समझा जाता है। फलस्वरुप, ग्रीकवासियों का स्वाभिमान पश्चिमी देशों के लोगों के स्वाभिमान से काफी भिन्न है।

राष्ट्रीय चरित्र या मॉडल व्यक्तित्व के क्षेत्र में किये गये अध्ययनों से भी व्यक्तित्व के विकास में संस्कृति का प्रभाव प्रमाणित होता है। गोरेर तथा रिकमैन (Gorer and Rickman,1949) ने रुसी राष्ट्रीय चरित्र का अध्ययन कर बतलाया कि इन लोगों में सत्तावादी तथा अनुशासन पालन जैसे गुणों की अधिकता होती है। लैचमैन (Lachman,1969) ने जापानी एवं पुर्तगाली राष्ट्रीय चरित्रों का अध्ययन किया और बतलाया कि जापानी लोगों में क्रमबद्धता बाध्यता तथा दमित आक्रामकता का शीलगुण अधिक पाया जाता है। जबकि पुर्तगालियों में विनम्रता, धूर्तता आदि जैसे शीलगुणों की प्रधानता होती है।

व्यक्तित्व निर्माण में पड़ने वाले संस्कृति प्रभाव का कुछ उदाहरण हमें मानसिक विकारों तथा उनसे सम्बन्धित व्यक्तित्व शीलगुणों के अध्ययन से भी मिलता है। कांडिल तथा लिन (Candil and Lin,1969) वॉन मेरिंग तथा कासदान (Von Mering & Kasdan,1970) आदि मानवशास्त्रियों ने अपने अपने अध्ययनों के आधार पर निम्नांकित निष्कर्ष दिया है-

i. मानसिक अवस्था के बदलाव से संबंधित बीमारियों एवं व्यवहार में विकृतियां विकसित देशों की संस्कृतियों में कम तथा अविकसित देशों की संस्कृतियों में अधिक होती हैं।

ii. अफ्रीका एवं एशिया के देहाती क्षेत्रों में व्यवहारों एवं विचारों की अनावश्यक पुनरावृत्ति से संबंधित लक्षण नहीं दिखलाई देते हैं। हालांकि भारत जैसे देश के बड़े-बडे शहरों में ऐसे लक्षण प्राय देखने को मिलते हैं।

iii. अशिक्षित समाज की संस्कृतियों में यौन भूमिका से संबंधित मनोवृत्ति कम देखने को मिलती है। परन्तु शिक्षित एवं विकसित समाज की संस्कृतियों में यह प्रायः देखने को मिलती है।

iv. जापान,स्वीटजरलैंड, स्वीडन तथा डेनमार्क की संस्कृतियों में आत्महत्या एवं उससे संबंधित व्यवहारों की आवृत्ति अधिक पायी जाती है। परन्तु भारत, पाकिस्तान, लंका,वर्मा आदि की संस्कृतियों में ऐसी प्रवृत्तियों की कमी पायी गयी है।

ऊपर किये गये अध्ययनों से स्पष्ट हो जाता है कि व्यक्तित्व निर्माण में संस्कृति का काफी प्रभाव पड़ता है।

9.4.3 व्यक्तित्व का संस्कृति पर प्रभाव

जिस तरह से संस्कृति का प्रभाव व्यक्तित्व निर्माण पर पड़ता है। उसी तरह से व्यक्तित्व का भी प्रभाव संस्कृति के विकास पर पड़ता है। व्यक्तित्व पर संस्कृति के प्रभावों को दिखलाने के लिए जितने अध्ययन किये गये हैं तथा जितने सबूत प्रस्तुत किये गये हैं। उतने संस्कृति पर व्यक्तित्व के प्रभावों को दिखलाने के लिए नहीं किये गये हैं। फिर भी समाज मनोवैज्ञानिकों ने कुछ सबूत उपस्थित कर यह दिखलाया है कि संस्कृति भी व्यक्तित्व द्वारा प्रभावित होती है। क्रेच, क्रचफिल्ड, तथा वैलेची के अनुसार निम्नांकित चार तरह की भूमिकाओं द्वारा व्यक्ति अपने समाज की संस्कृति को प्रभावित करता है-

i. व्यक्ति संस्कृति के एक विशेष सृष्टि जीव के रुप में कार्य करता है। इस तरह की भूमिका में संस्कृति के विभिन्न भौतिक तथा अभौतिक तत्वों के साथ वह अनुपालन दिखलाता है। और प्रत्येक परिस्थिति में उपयुक्त ढंग से व्यवहार करने को प्रेरित रहता है।

ii. व्यक्ति संस्कृति के वाहक के रुप में कार्य कर संस्कृति के तत्वों को प्रभावित करता है। वाहक के रुप में वह एक सक्रिय एवं धनात्मक भूमिका निभाता है। तथा सांस्कृतिक तौर तरीकों, मूल्यों, मानकों तथा उपयोगिताओं का वर्णन दूसरों के सामने करके एक पीढ़ी से उसे दूसरी पीढ़ी तक पहुँचाता है।

iii. संस्कृति के परिचालक के रुप में व्यक्ति समाज की सामान्य मनोवृत्तियों, मूल्यों ,मानकों, आदि का प्रयोग कर एक विशेष उद्देश्य की पूर्ति करता है। इस भूमिका में पूर्ण सफलता मिलने पर व्यक्ति सांस्कृतिक तत्वों की महत्ता को अधिक प्रभावकारी बना पाता है।

iv. संस्कृति के सृष्टिकर्ता के रुप में व्यक्ति संस्कृति में आवश्यक परिवर्तन लाता है। तथा इसमें से अमानवीय तत्वों को निकालकर बाहर फेंक देता है। इससे संस्कृति की उज्जवलता बढ़ जाती है। भारतीय संस्कृति में राजा राम मोहनराय तथा महात्मा गांधी की भूमिका इसके सटीक उदाहरण हैं। राजा राम मोहन राय ने भारतीय संस्कृति से सती प्रथा को हटाकर तथा महात्मा गांधी ने भारतीय संस्कृति से छुआछूत जैसे कुप्रथा को हटाकर इस संस्कृति की उज्जवलता को काफी

बढ़ाया है। इस तरह से इन दोनों महान व्यक्तियों ने भारतीय संस्कृति में महत्वपूर्ण सांस्कृतिक परिवर्तन लाकर उसमें चार चांद लगाया है।

ऊपर किये गये वर्णन से यह स्पष्ट है कि व्यक्तित्व का प्रभाव भी संस्कृति पर पड़ता है।

संस्कृति एवं व्यक्तित्व के सम्बन्धों के बारे में एक सामान्य निष्कर्ष- संस्कृति तथा व्यक्तित्व के बीच में दोहरा सम्बन्ध होता है। संस्कृति व्यक्तित्व विकास को काफी प्रभावित करती है तथा स्वयं महान व्यक्तियों से प्रभावित भी होती है।जब संस्कृति के तत्व महान व्यक्तियों से प्रभावित होते हैं तो उसमें महत्वपूर्ण सामाजिक एवं सांस्कृतिक परिवर्तन आते हैं।

9.5 व्यक्तित्व के सैद्धान्तिक उपागम (Theoretical approaches of Personality)

व्यक्तित्व के स्वरुप की व्याख्या करने के लिए विभिन्न तरह के उपागमों को सैद्धान्तिक उपागम कहा गया है। ऐसे प्रमुख उपागमों का वर्णन यहां अपेक्षित है , जो निम्नांकित है -

i. **मनोविश्लेषणात्मक उपागम-** व्यक्तित्व का अध्ययन करने का सबसे पहला उपागम मनोविश्लेषणात्मक उपागम है, जिसका प्रतिपादन सिगमण्ड फ्रायड द्वारा किया गया। इस उपागम में मानव प्रकृति के निराशावादी तथा निश्चयवादी छवि पर बल डाला गया है। इसमें व्यक्तित्व की व्याख्या करने के लिए अचेतन की इच्छाओं, यौन एवं आक्रामकता के जैविक आधारों आरंभिक बाल्यावस्था के मानसिक संघर्षों को महत्वपूर्ण समझा गया है और इन्हें व्यक्तित्व का प्रमुख निर्धारक माना गया है।

ii. **नवमनोविश्लेषणात्मक उपागम-** इस उपागम का विकास दो श्रेणी के मनोवैज्ञानिकों द्वारा हुआ है। एक श्रेणी में वैसे मनोवैज्ञानिक हैं जो कभी पहले फ्रायड के काफी नजदीक और निष्ठावान थे, परंतु फ्रायड द्वारा व्यक्तित्व के स्वरुप की एक स्वतंत्र व्याख्या प्रस्तुत करते हैं। इनमें एडलर एवं युंग के नाम मशहूर हैं। अतः नवमनोविश्लेषणात्मक उपागम के तहत हम छह मनोवैज्ञानिकों के विचारों को अर्थात एडलर, युंग, हार्नी, सुल्लीभान, फ्रोम, तथा मर्रे के सिद्धान्तों पर विचार करेंगे। नवमनोविश्लेषणात्मक उपागम मनोविश्लेषणात्मक उपागम से निम्नांकित दो बिन्दुओं पर स्पष्ट रुप से भिन्न है-

- नवमनोविश्लेषणात्मक उपागम में व्यक्तित्व के सामाजिक कारकों या प्रभावों पर तुलनात्मक रुप से अधिक बल डाला गया है, जबकि मनोविश्लेषणात्मक उपागम में व्यकित्त्व के जैविक कारकों पर अधिक बल डाला गया है। ध्यान रहे कि नवमनोविश्लेषणात्मक उपागम के जैविक कारकों को सिर्फ गौण कारक समझा गया है न कि उसे अस्वीकृत कर दिया गया है।
- मानव मनोविश्लेषणात्मक उपागम में मानव प्रकृति के आशावादी छवि पर अधिक बल डाला गया है और इसमें यह माना गया है कि व्यकित्तव पर्यावरणी कारकों का प्रतिफल अधिक होता है जबकि मनोविश्लेषणात्मक उपागम में मानव प्रकृति के निराशावादी छवि पर

अधिक बल डाला गया है तथा व्यक्तिव को जन्मजात दैहिक कारकों का प्रतिफल अधिक माना गया है।

iii. **शारीर गठनात्मक उपागम-** इस उपागम की विशेषता यह है कि इसमें व्यक्तित्व पैटर्न तथा विकास की व्याख्या शरीर के संगठन एवं उनके आकार- प्रकार तथा उससे संबंधित चितप्रकृति के रुप में किया जाता है। इसके तहत क्रेश्मर तथा शेल्डन द्वारा प्रतिपादित व्यक्तित्व सिद्धान्तों को रखा जाता है।

iv. **जीवन अवधि उपागम-** इस उपागम की विशेषता यह है कि इसमें व्यक्तित्व की व्याख्या जन्म से मृत्यु तक व्यक्ति के व्यवहारों में हाने वाले परिवर्तनों के आलोक में किया जाता है। व्यक्तित्व के सभी पहलुओं की व्याख्या जन्म से लेकर मृत्यु तक की आठ अवस्थाओं में से प्रत्येक अवस्था में उत्पन्न संकट या परिवर्तन बिन्दुओं से उत्पन्न समस्याओं के समाधान के रुप में की जाती है। इसके तहत इरिक इरिक्सन के सिद्धान्त की व्याख्या की जाती है।

v. **प्रकार उपागम-** व्यक्तित्व के वर्णन का यह एक क्लासिकी उपागम है जिसमें व्यक्तित्व को विभिन्न प्रकारों में बांटकर अध्ययन किया जाता है। इस उपागम के अनुसार कोई व्यक्ति सामाजिक प्रकार का हो सकता है। तो कोई प्रभावकारी प्रकार का तो कोई एकांतवासी प्रकार का। प्रकार उपागम की व्याख्या के साथ एक महत्वपूर्ण कठिनाई यह आती है कि शायद ही कोई व्यक्ति का व्यक्तित्व किसी एक प्रकार में स्पष्ट रुप से पूर्णतः फिट करता हो।

vi. **शीलगुण उपागम-** व्यक्तित्व के इस उपागम के तहत हम ऑलपोर्ट तथा कैटेल द्वारा प्रतिपादित व्यक्तित्व के सिद्धान्तों की व्याख्या करेंगे। इस तरह के शीलगुण उपागम में व्यवहार के व्यक्तिगत निर्धारक पर बल डाला जाता है इस उपागम की प्रमुख मान्यता यह है कि शीलगुणों के ही कारण व्यक्ति विभिन्न परिस्थितियों में संगत ढंग से व्यवहार करता है। परिस्थिति का प्रभाव व्यक्ति पर बहुत थोड़ा पड़ता है।

vii. **विमीय उपागम-** इस उपागम के तहत व्यक्तित्व की व्याख्या विमा के रुप में की जाती है। अतः व्यक्ति को संबंध विमा पर उच्च या निम्न के रुप में रेट किया जा सकता है। जैसे- वहिमुर्खता व्यक्तित्व की एक विमा है जिस पर कोई व्यक्ति उच्च या निम्न प्राप्तांक प्राप्त कर सकता है।

viii. **सांवृत्तिक या मानवतावादी उपागम-**इस उपागम द्वारा व्यक्तित्व के अध्ययन में व्यक्ति के आत्मगत अनुभूतियों पर ध्यान डाला जाता है। दूसरे शब्दों में अध्ययनकर्ता इस बात पर ध्यान देता है कि व्यक्ति वातावरण को किस तरह से प्रत्यक्षण करता है। सचमुच में देखा जाय तो व्यक्तित्व अध्ययन का यह सांवृत्तिक उपागम मनोविश्लेषणात्मक उपागम तथा व्यवहारवादी उपागम दोनों के प्रति एक तरह की प्रतिक्रिया है। ठीक उसी तरह व्यवहारवादी उपागम का यह दावा कि व्यवहार सिर्फ पर्यावरणी कारकों द्वारा प्रभावित हाता है, को भी सांवृतितक उपागम में अधिक महत्व नहीं दिया गया। सावृत्तिक उपागम में मानवतावादी संप्रत्ययों जिस पर मैस्लो ने अधिक बल डाला अतः सांवृतिक उपागम में मैस्लो तथा रोजर्स द्वारा प्रतिपादित व्यक्तित्व के सिद्धान्तों की व्याख्या की जाती है।

ix. **संज्ञानात्मक उपागम-** इस उपागम द्वारा व्यक्तित्व अध्ययन में इस बात पर बल डाला गया है कि व्यक्ति किन तरीकों से अपने पर्यावरण तथा अपने आप को जानता है। वे उनका किस तरह से प्रत्यक्षण करता है, मूल्यांकन करता है, सीखता है, सोचता है, निर्णय लेता है तथा समस्या का समाधान करता है। यद्यपि यह सही है कि व्यक्तित्व अध्ययन के अन्य उपागमों में भी संज्ञानात्मक प्रक्रियाओं का उपयोग किया जाता है,परंतु इस उपागम में सम्पूर्ण व्यक्तित्व को ही उसके संज्ञानात्मक प्रक्रियाओं के रुप में समझने की कोशिश की जाती है।

x. **व्यवहारात्मक एवं अधिगम उपागम-** इस उपागम में व्यक्तित्व को उद्दीपकों के प्रति विशेष सीखी गई अनुक्रियाओं का एक संग्रहण तथा स्पष्ट व्यवहारों या आदत तंत्रों का एक सेट माना गया है। अतः इस उपागम में व्यक्तित्व से तात्पर्य सिर्फ उन तथ्यों से होता है जिसे वस्तुनिष्ठ रुप से प्रेक्षण किया जाए तथा जिसमें जोड़ तोड़ किया जाए इन दोनों पूर्व कल्पनाओं के आलोक में यह कहा जा सका है कि इस उपागम में व्यक्तित्व का अध्ययन करने के लिए लोगों के अर्जित या सीखे गये व्यवहारों को समझना जरुरी होता है और लोगों के अर्जित व्यवहारों को समझने के लिए उनके अधिगम इतिहास या उनके वर्तमान वातावरण या दोनों को ही समझना आवश्यक है।

xi. **सामाजिक संज्ञानात्मक उपागम-** इसे पहले सामाजिक सीखना उपागम कहा जाता था। व्यक्तित्व के अध्ययन के लिए पर्यावरण या परिस्थिजिन्य कारकों के महत्व पर बल डाला गया है। सामाजिक संज्ञानात्मक उपागम की प्रमुख मान्यता यह है कि व्यवहार व्यक्तिगत चरों एवं पर्यावरणीय चरों के सतत अन्तःक्रिया तथा उनके संज्ञान पर पड़ने वाले प्रभाव का परिणाम होता है। पर्यावरणी कारक सीखने या अधिगम की प्रक्रिया द्वारा व्यवहार को निर्धारित करते हैं और व्यकित के इस व्यवहार से पर्यावरण तथा संज्ञान में कुछ परिमार्जन होता है। किसी व्यक्ति के व्यवहार के बारे में पूर्वकथन करने के लिए हम लोगों को यह जानना आवश्यक हो जाता है कि व्यक्ति के गुण किस तरह से परिस्थिति के गुणों के साथ अन्तःक्रिया करते हैं। इस उपागम के तहत अल्बर्ट वैन्डूरा वाल्टर मिशकेल तथा मार्टिन सेलिगमैन द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्तों की व्याख्या की जाती है।

xii. **सीमित क्षेत्र उपागम-** आजकल कुछ व्यक्तित्व मनोवैज्ञानिकों का विचार है कि व्यक्तित्व के सभी पहलुओं को ठीक ढंग से समझने के लिए हम लोगों को कई अलग-अलग ऐसे सिद्धान्तों की जरुरत होती है। जिसमें व्यक्तित्व के मात्र एक या दो पहलुओं की विस्तृत व्याख्या की जाए इसमें मूलतः उपलब्धि आवश्यकता सिद्धान्त तथा संवेदन खोज सिद्धान्त का वर्णन किया जाता है।

स्पष्ट हुआ कि व्यक्तित्व के स्वरुप को समझने तथा उसका अध्ययन करने के लिए कई तरह के उपागमों का वर्णन किया गया है। प्रत्येक उपागम के तहत विभिन्न तरह के सिद्धान्तों का वर्णन भिन्न-भिन्न मनोवैज्ञानिकों द्वारा किया गया है।

भावमूलक एवं नियमान्वेषी उपागम

व्यक्तित्व मनोवैज्ञानिकों ने व्यक्तित्व को अध्ययन करने के लिए कई तरह के शोध विधियों का प्रतिपादन किया है जिनमें निम्नांकित दो शोध उपागम अधिक लोकप्रिय हैं।

i. **भावमूलक उपागम-** इस अध्ययन विधि में किसी एक व्यक्ति का विस्तृत विश्लेषण करके तथा उन विमाओं को जो उस व्यक्ति के व्यक्तित्व को समझने के लिए आवश्यक होते हैं, का विश्लेषण करके व्यक्तित्व के बारे में जानने की कोशिश की जाती है। दूसरे शब्दों में इस उपागम में विशिष्ट व्यक्तियों के अनोखेपन या अपूर्वता के अध्ययन पर बल डाला जाता है। इसमें शोधकर्ता उन शीलगुणों के संयोगों की पहचान करने की कोशिश करता है जो किसी विशिष्ट व्यक्ति के व्यक्तित्व की व्याख्या उचित ढंग से करता है। इस उपागम में कभी-कभी कई व्यक्तियों पर एक ही तरह के मापन प्रविधियों का उपयोग किया जाता है परंतु किसी एक मापनी पर ही व्यक्ति के प्राप्तांक की तुलना उसी व्यक्ति के अन्य मापनियों पर के प्राप्तांकों के साथ, न कि प्रत्येक मापनी पर अन्य लोगों के प्राप्तांकों के साथ की जाती है। जैसे-कभी-कभी यह जानना आवश्यक हो जा सकता है कि क्या व्यकित राजनैतिक मूल्य को सैद्धान्तिक मूल्य से अधिक महत्व देता है इस तरह की परिस्थिति के लिए भावमूलक उपागम की आवश्यकता पड़ती है, क्योंकि यहां तुलना एक ही व्यक्ति के भीतर की जा रही है। इस उपागम के प्रमुख समर्थक गौर्डन आलपोर्ट हैं। भावमूलक उपागम में एक व्यक्ति के सम्पूर्ण व्यकितत्व के अध्ययन पर बल डाला जाता है। और जो मनोवैज्ञानिक इस दृष्टिकोण का समर्थन करते हैं वे व्यक्तित्व के विकासात्मक सिद्धान्तों के प्रति अपनी आस्था अधिक व्यक्त करते हैं।

ii. **नियमान्वेषी उपागम-** नियमान्वेषी उपागम भी व्यक्तित्व का अध्ययन करने का एक महत्वपूर्ण दृष्टिकोण है। इस उपागम में अध्ययन किये जाने वाले सभी व्यक्तित्यों की तुलना व्यकित्त्व के चुने गये खास विमाओं पर की जाती है। दूसरे शब्दों में व्यक्तित्व अध्ययन के इस दृष्टिकोण में अध्ययनकर्ता व्यक्तियों के कुछ खास खास विमाओं जैसे वर्हिमुखता, स्नायुविकृति, आदि का चयन कर लेता है । आलपोर्ट का मत था कि नियमान्वेषी उपागम में व्यक्ति के भीतर होने वाले प्रक्रियाओं को नजर अंदाज किया जाता है। अतः इस उपागम को उनके द्वारा तथा अन्य मनोवैज्ञानिकों द्वारा भी उतना प्रबल एवं महत्वपूर्ण नही बतलाया गया है जितना की भावमूलक उपागम को।

9.6 सारांश

जब बच्चा जन्म लेता है वह मात्र शरीर होता है अर्थात कच्चे माल की तरह वह जिस संस्कृति में जन्म लेता है। संस्कृति उसके अनुभवों व व्यवहारों को प्रभावित करना प्रारम्भ कर देती है। संस्कृति में ही बच्चे का व्यक्तित्व विकसित होने लगता है। व्यक्ति को भी अगर अपनी संस्कृति में किसी प्रकार की बुराई नजर आती है तो उसमें परिवर्तन करने के लिए वह अन्य व्यक्तियों को भी प्रेरित करता है। इस प्रकार व्यक्ति एवं संस्कृति लगातार एक दूसरे को प्रभावित करते रहते हैं और यही प्रभाव संस्कृति में एक निरन्तरता बनाये

रखता है। संस्कृति और व्यक्तित्व एक दूसरे के पूरक होते हैं। आज के अधिकतर मनोवैज्ञानिकों का यह विचार है कि संस्कृति और व्यक्तित्व दो भिन्न वस्तुएं नहीं हैं, बल्कि एक ही वस्तु के दो पहलू हैं।
संस्कृति विभिन्न प्रकार जैसे- धर्म, भाषा, नैतिकता, परम्पराओं, प्रथाओं आदि से व्यक्तित्व को लगातार प्रभावित कर विकसित करती है। व्यक्ति संस्कृति के वाहक के रुप में कार्य कर संस्कृति के तत्वों को प्रभावित करता है। वाहक के रुप में वह एक सक्रिय एवं धनात्मक भूमिका निभाता है। तथा सांस्कृतिक तौर तरीकों, मूल्यों, मानकों तथा उपयोगिताओं का वर्णन दूसरों के सामने करके एक पीढ़ी से उसे दूसरी पीढ़ी तक पहुँचाता है।

व्यक्तित्व के स्वरुप की व्याख्या करने के लिए विभिन्न तरह के उपागमों के तहत कई सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया गया है जिनमें मनोविश्लेषणात्मक उपागम, प्रकार उपागम, शीलगुण उपागम, मानवतावादी उपागम, सामाजिक संज्ञानात्मक उपागम आदि प्रमुख हैं।

अभ्यास प्रश्न

1. व्यक्तित्व व्यक्ति के बाह्य रूप को कहते हैं। (सत्य / असत्य)
2. व्यक्तित्व एवं संस्कृति एक दूसरे के पूरक हैं। (सत्य / असत्य)
3. संस्कृति के तत्व हैं-
    a. भाषा
    b. धर्म एवं नैतिकता
    c. परम्परायें
    d. उपरोक्त सभी
4. संस्कृति पीढ़ी-दर-पीढ़ी हस्तान्तरित होती है। (सत्य / असत्य)

9.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. डा0 श्रीवास्तव, डी0एन0- व्यक्तित्व मनोविज्ञान
2. डा0 सिंह, ए0 के0- व्यक्तित्व मनोविज्ञान
3. डा0 सिंह, आर0एन0-आधुनिक सामाजिक मनोविज्ञान
4. डा0 सिंह, अरूण कुमार- समाज मनोविज्ञान की रूपरेखा
5. डा0 अग्रवाल पी0के, डा0 पाण्डेय, एस0एस0- सामाजिक मनोविज्ञान

9.8 निबन्धात्मक प्रश्न

1. व्यक्तित्व पर संस्कृति के प्रभाव का विस्तृत वर्णन कीजिए।
2. जनजातीय उदाहरणों द्वारा सांस्कृतिक प्रभावों का विवेचन कीजिए।
3. टिप्पणी लिलिखिए -
    a. संस्कृति एवं व्यक्तित्व में सम्बन्ध।

b. व्यक्तित्व को प्रभावित करने वाले कारक।

ईकाई-10 व्यक्तित्व निर्माण,स्व का मनोविश्लेषणात्मक उपागम, सामाजिक स्वतंत्रता और निर्भरता

इकाई संरचना-

10.1 प्रस्तावना

10.2 उद्देश्य

10.3 व्यक्तित्व विकास का संप्रत्यय

10.3.1 आत्म संप्रत्यय

10.3.2 शीलगुण

10.4. व्यक्तित्व विकास की प्रक्रिया

10.5. व्यक्तित्व विकास के चरण

10.6. व्यक्तित्व विकास की सैद्धान्तिक व्याख्या

10.7. आत्मन के विकास का सिद्धान्त

10.8. स्वतंत्रता बनाम आश्रयता

10.9. सारांश

10.10. स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न एवं उनके उत्तर

10.11. सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

10.12. निबन्धात्मक प्रश्न

10.1 प्रस्तावनाः-

पिछली इकाई में आपने जाना कि व्यक्तित्व क्या है और संस्कृति से इसका क्या सम्बन्ध है और यह भी जाना कि व्यक्तित्व संस्कृति को कैसे प्रभावित करता है और स्वयं संस्कृति से कैसे प्रभावित होता है।

प्रस्तुत इकाई में आप इससे आगे की प्रक्रिया को समझेंगे अर्थात व्यक्तित्व का निर्माण कैसे होता है तथा इसके निर्माण में किन किन तत्वों कि भूमिका होती है, साथ ही स्व के मनोविश्लेषणात्मक उपागम को समझेंगे और अंत में स्वतंत्रता एवं निर्भरता के बारे में जानेंगे।

10.2 उद्देश्य:-

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप -

1. व्यक्तित्व विकास के बारे में जान पाएंगे।

2. व्यक्तित्व निर्माण की प्रक्रिया समझ पाएंगे।

3. विकास की विभिन्न अवस्थाओं में व्यक्तित्व विकास को स्पष्ट कर सकेंगे।

4. व्यक्तित्व विकास की सैदान्तिक व्याख्या कर पाएंगे।

5. स्वतंत्रता तथा आश्रयता के महत्त्व को समझ पाएंगे।

10.3 व्यक्तित्व विकास का संप्रत्यय:-

एक ऐसा संप्रत्यय है जिससे इस क्षेत्र के मनोवैज्ञानिकों को सबसे अधिक उलझा कर रखा है। अतः इसके अर्थ को गंभीरतापूर्वक समझना आवश्यक है। व्यक्तित्व विकास का अर्थ बतलाने के पहले हम यह बतला देना उचित समझते हैं कि विकास का अर्थ मनोविज्ञान में क्या होता है। विकास से तात्पर्य समय बीतने के साथ परिपक्वता तथा पर्यावरण के साथ होने वाले अंतःक्रिया के परिणामस्वरुप व्यक्ति के वर्द्धन तथा क्षमता में होने वाले परिवर्तन की प्रक्रिया से होता है। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि परिपक्वता तथा अनुभूति के परिणामस्वरुप परिवर्तनों के होने के उत्तरोत्तर क्रम को विकास कहा जाता है। वॉन डेन डेली के अनुसार विकास से आशय गुणात्मक परिवर्तन से होता है। इसका अर्थ यह हुआ कि विकास का अर्थ केवल यही नहीं होता है कि व्यक्ति की लम्बाई या उसका वजन पहले से अधिक हो गया है या उसकी क्षमता पहले से अधिक हो गयी है। बल्कि विकास की प्रक्रिया एक जटिल प्रक्रिया होती है जिसमें बहुत सारे संरचनाएं तथा क्रियाएं सम्मिलित होती हैं।

जहां व्यक्तित्व विकास का प्रश्न है, इससे तात्पर्य व्यक्तित्व संरुप (Pattern) के विकास से होता है। व्यक्तित्व पैटर्न में सभी मनोदैहिक तंत्र जिनसे व्यक्ति का व्यक्तित्व बना होता है, आपस में अंतर्संबंधित होते हैं और एक-दूसरे को प्रभावित करते रहते हैं। व्यक्तित्व पैटर्न के दो मुख्य तत्व होते हैं- आत्म-संप्रत्यय तथा शीलगुण। व्यक्तित्व विकास से तात्पर्य इन दोनों तत्वों में होने वाले विकासात्मक परिवर्तन से होता है। अतः इन दोनों तत्वों पर हम स्वतंत्र रुप से विचार करेंगे-

10.3.1आत्म संप्रत्यय (Self concept) :-

आत्म-संप्रत्यय से तात्पर्य उस तथ्य से होता है कि जिसमें व्यक्ति यह समझता है कि वह कौन है तथा वह क्या है। सचमुच में यह एक तरह का दर्पण प्रतिमा होता है जो व्यक्ति द्वारा किये गए अपनी भूमिकाओं, दूसरों के साथ संबंधों तथा उसके प्रति दूसरों द्वारा किये गए प्रतिक्रियाओं द्वारा मूलतः निर्धारित होता है। प्रत्येक आत्म संप्रत्यय के दो पहलू होते हैं-दैहिक तथा मनोवैज्ञानिक। दैहिक पहलू में वे सारे संप्रत्यय सम्मिलित होते है जो व्यक्ति अपने रुप, रंग, यौन उपयुक्तता, किये जाने वाले व्यवहार के संदर्भ में शरीर का महत्व तथा दूसरे लोगों से उनके शरीर को मिलने वाली प्रतिष्ठा आदि सम्मिलित होते हैं। मनोवैज्ञानिक पहलू में सारे सम्प्रत्यय सम्मिलित होते हैं जो व्यक्ति के अपनी क्षमता तथा अक्षमता, अपनी योग्यता तथा अन्य लोगों के साथ सबंध आदि के बारे में होते हैं। प्रारंभ में ये दोनों पहलू अलग-अलग होते हैं परंतु जैसे- जैसे व्यक्तित्व का विकास होते जाता है, वे आपस में मिलकर एक हो जाते हैं।

चूंकि आत्म संप्रत्यय व्यक्तित्व पैटर्न का सारभाग होता है अतः इससे शीलगुणों का विकास सीधे प्रभावित होता है। जैसे- यदि व्यक्ति का आत्म संप्रत्यय धनात्मक होता है तो व्यक्ति में अपने आत्म विश्वास, आत्म सम्मान तथा अपने आप को यथार्थपूर्ण संदर्भ में मूंल्यांकन करने की क्षमता विकसित होती है। दूसरी तरफ यदि आत्म संप्रत्यय नकारात्मक होता है तो व्यक्ति में हीनता तथा अपर्याप्तता का भाव विकसित हो जाता है। वह हमेशा अनिश्चित होकर व्यवहार करता है तथा उनमें आत्म विश्वास की कमी पायी जाती है। इससे उसका वैयक्तिक तथा सामाजिक दोनों ही समायोजन पर बुरा असर पड़ता है।

10.3.2 शीलगुण (Traits)-

शीलगुण से तात्पर्य व्यवहार या समायोजी पैटर्न के विशिष्ट गुणों, से होता है। बुद्धि, प्रभुत्व सहनशीलता आदि शीलगुण के कुछ उदाहरण है। व्यक्तित्व का शीलगुण आत्म संप्रत्यय से संघटित होता है तथा आत्म संप्रत्यय से प्रभावित भी होता है। कुछ शीलगुण तो अलग-अलग होते हैं। परन्तु कुछ ऐसे होते हैं जो व्यवहार के संबंधित पैटर्न में सयांजित होते हैं जिन्हें संलक्षण कहा जाता है। शीलगुण की दो विशिष्ट विशेषताएं होती हैं- वैयक्तिकता तथा संगतता। वैयक्तिकता से तात्पर्य यह होता है कि किसी शीलगुण की मात्रा प्रत्येक व्यक्ति में एक समान न होकर किसी में कम तथा किसी में अधिक होती है। संगतता से तात्पर्य यह होता है कि शीलगुण के कारण ही व्यक्ति समान परिस्थिति में समान ढंग से व्यवहार करता है।

व्यक्तियों में शीलगुण का विकास अंशतः अधिगम तथा अंशत: आनुवंशिक कारकों पर निर्भर करता है। शीलगुणों में परिवर्तन घर तथा स्कूल में दिए गए बाल्यावस्था के प्रशिक्षण द्वारा तथा उसे मॉडल व्यक्ति द्वारा होता है। जिसका व्यक्ति अपनी जिंदगी में अनुकरण करता है- जैसे- जिस बच्चे का बाल्यावस्था में सख्त सत्तावादी प्रशिक्षण प्राप्त होता है, प्रायः आगे चलकर उसमें एक अदम्य समायोजी पैटर्न विकसित हो जाता है। अन्य बातों के अलावा वयस्कावस्था में ऐसे लोग अतिनियंत्रित, अंतर्मुखी, रुढ़िवादी, परम्परागत अवरोधी आदि व्यवहार दिखाने वाले हो जाते हैं। इन सबों से मिलकर जिस व्यक्तित्व संलक्षण का विकास होता है, उसे सत्तावादी व्यक्तित्व संलक्षण कहा जाता है।

स्पष्ट हुआ है कि व्यक्तित्व विकास का अर्थ उतना सरल नहीं है जितना कि यह ऊपर से दिखता है। इस विकास में न केवल आत्म संप्रत्यय बल्कि शीलगुणों का विकास भी सम्मिलित होता है।

10.4 व्यक्तित्व विकास की प्रक्रियाः-

मनोवैज्ञानिकों द्वारा किये गए अध्ययनों से स्पष्ट हुआ है कि व्यक्तित्व विकास की प्रक्रिया विभिन्न अवस्थाओं में संपन्न होती है। उन विभिन्न अवस्थाओं में होने वाले व्यक्तित्व विकास पर प्रकाश डालने के पहले यह अनिवार्य है कि हम पहले ऐसे विकास की कुछ सामान्य विशेषताएं है उन पर एक दृष्टि डालें। इन विशेषताओं में निम्नांकित प्रमुख हैं-

1.व्यक्तित्व विकास में आरंभिक नींव महत्वपूर्ण होती है- इसका अर्थ यह हुआ कि व्यक्तित्व विकास की आरंभिक अवस्थाओं में जो मनोवृत्ति, आदत तथा व्यवहार का पैटर्न स्थापित होता है, वह बहुत सीमा तक बाद के व्यक्तित्व विकास में होने वाले परिवर्तनों को निर्धारित करता है।

2. व्यक्तित्व विकास में परिपक्वता तथा अधिगम दोनों की भूमिका प्रधान होती है- व्यक्तित्व विकास में परिपवता मौलिक संसाधनों को प्रदान करता है जिसके अनुसार व्यक्ति सीखकर व्यवहार के सामान्य क्रम एवं पैटर्न को दिखाता है।

3.विकास का एक निश्चित एवं पूर्वानुमेय पैटर्न होता है-जब तक पर्यावरण या अन्य समान कारकों का हस्तक्षेप नहीं होता है तब तक व्यक्ति के विभिन्न अवस्थाओं में होने वाला विकास एक निश्चित पैटर्न के अनुसार चलता रहता है जो पूर्वानुमेय होता है। अब तक कोई ऐसा सबूत प्राप्त नहीं है जिसके आधार पर यह कहा जाय कि व्यक्तित्व का अपना विकास विशेष पैटर्न होता है। हां यह अवश्य होता है कि व्यक्तित्व विकास का दर अलग-अलग होता है।

4.**सभी व्यक्ति एक दूसरे से भिन्न होते हैं-** व्यक्तित्व का विकास इस ढंग से होता है कि सभी व्यक्ति एक दूसरे से भिन्न होते है। यह विशेषता एकांकी जुड़वों में भी पाया जाता है।

5. व्यक्तित्व विकास का प्रत्येक अवस्था की अपनी विशेषता होती है- व्यक्तित्व विकास के प्रत्येक अवस्था में व्यक्ति कुछ खास ढंग का विशेष व्यवहार करता है। प्रत्येक अवस्था में कुछ अवधि संतुलन की होती है तो कुछ अवधि असंतुलन की होती है। संतुलन की अवधि में व्यक्त अपने वातावरण की मांगो के साथ आसानी से समायोजन कर लेता है तथा उत्तम समायोजन करता हे। परंतु असंतुलन की अवधि में व्यक्ति अपने वातावरण के मांगों के साथ ठीक ढंग से समायोजन नहीं कर पाता है जिससे उसके सामाजिक समायोजन में कठिनाइयां होती है।

6. व्यक्तित्व विकास के प्रत्येक अवस्था में कुछ जोखिम होते है-विकास का प्रत्येक अवस्था में कुछ भौतिक, मनोवैज्ञानिक या पर्यावरणी जोखिम कारक हाते हैं। जिनसे व्यक्तित्व विकास थोड़ा अवरुद्ध होता है।

7. व्यक्तित्व विकास पर सांस्कृतिक परितर्वनों का प्रभाव पड़ता है- प्रत्येक व्यक्ति एक परिवार में जन्म लेता है और उस परिवार के सांस्कृतिक मानकों एवं मूल्यों से बंधा होता है। अतः यह स्वाभाविक है कि व्यक्तित्व विकास पर उन सांस्कृतिक परिवर्तनों का प्रभाव पड़े।

8. व्यक्तित्व विकास के प्रत्येक अवस्था की कुछ अपनी सामाजिक प्रत्याशाएं होती हैं- विकास को प्रत्येक अवस्था में व्यक्ति कुछ कौशलों को सीखता है तथा व्यवहार के विभिन्न अनुमोदित पैटर्न को सीखता है। इस हाविंगहर्स्ट ने विकासात्मक कार्य कहा है।

10.5 व्यक्तित्व विकास के चरण:-

व्यक्तित्व विकास के चरण निम्नलिखित हैं।

1. पूर्वप्रसूत अवस्था में व्यक्तित्व विकास
2. शैशवावस्था में व्यक्तित्व विकास
3. बचपनावस्था में व्यक्तित्व विकास
4. बाल्यावस्था में व्यक्तित्व विकास
5. किशोरावस्था में व्यक्तित्व विकास
6. प्रौढ़ावस्था में व्यकितत्व विकास
7. मध्यावस्था में व्यक्तित्व विकास
8. वृद्धावस्था में व्यक्तित्व विकास

इन सब का वर्णन इस प्रकार है-

1. **पूर्वप्रसूति अवस्था में व्यक्तित्व विकास-** पूर्व प्रसूति काल गर्भधारण से लेकर जन्म तक की अवधि जो सामान्यतः 20 दिनों तक विस्तरित रहती है। यह अवस्था तीन भागों में बंटी होती है। युग्मनंज की अवस्था, भ्रूण की अवस्था तथा फेटस की अवस्था। अध्ययनों से पता चलता है कि इस अवधि में हुए घटनाओं का मॉ के गर्भ में पल रहे बच्चे के व्यक्तित्व विकास पर काफी प्रभाव पड़ता है। बोवेस एवं उनके सहयोगियों ने अपने अध्ययन में यह पाया है कि यदि गर्भवती माता किसी कारण से कुनैन का उपयोग करती है तो उनके बच्चे में बहरापन रोग हो जाता है। उसी तरह एसपिरीन तथा एण्टीबायटिक्स का उपयोग करने से बच्चें में हृदय रोग की संभावना बढ़ जाती है। उसी तरह गर्भावस्था में जब माताएं कुपोषण का शिकार हो जाती है तो उनके बच्चों में मानसिक मंदता उत्पन्न होने की संभावना अधिक हो जाती है। सोनटैग ने फेल्स शोध संस्था में शोध करके यह दिखलाया है कि जब गर्भवती माताओं में तनाव एवं चिंता अधिक बढ़ जाती है

तो उनके गर्भ में पल रहे बच्चें का शारीरिक क्रियाओं में कई गुना बढ़ोत्तरी हो जाती है। इतना ही नहीं यदि माताएं तीव्र सांवेगिक तनाव से बहुत दिनों तक परेशान रहती हैं तो वैसी परिस्थिति में तो उनके ऐसे बच्चें में जन्म मे बाद तरह तरह की समायोजन समस्याएं उत्पन्न होती है। विशेषतः डाऊन संलक्षण के उत्पन्न होने की संभावना अधिक होती है। इन दोनों तरह की परिस्थिति में बच्चों का व्यक्तित्व विकास सामान्य नहीं हो पाता है।

2. **शैशवावस्था में व्यक्तित्व विकास** - शैशवावस्था जन्म से लेकर दो सप्ताह तक की अवधि को कहा जाता है तथा यह अवस्था सभी अवस्थाओं से छोटी होती है। इसे दो भागों में बांटा गया है- प्रसव अवधि जो जन्म से लगभग 30 मिनट तक का होता है तथा न्योनेट की अवधि जो नाभि को काटकर बांधने से दूसरे सप्ताह तक की अवधि को कहा जाता है। शैशवावस्था की क्रियाओं एवं घटनाओं से न केवल भविष्य में विकसित होने वाले व्यक्तित्व के पटर्न का पता चलता है बल्कि इनका ऐसे व्यक्तित्व विकास पर काफी प्रभाव भी पड़ता है। इस अवधि में बच्चों में तरह-तरह की भिन्नता पायी जाती है। कुछ बच्चे बहुत सोते हैं तो इस अवधि में कुछ बच्चे ऐसे भी होते हैं जो तुलनात्मक रुप से कम सोते हैं। इन सभी तरह की क्रियाओं का व्यक्तित्व विकास पर प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रुप से प्रभाव पड़ते देखा गया है। हरलॉक के अनुसार जो बच्चे इस अवधि में अधिक पेशीय क्रियाएं जैसे- हाथ पर फेंकना आदि करते हैं, उनमें आगे चलकर समायोजन संबंधी कठिनाइयां कम होती हैं क्योंकि उनका व्यक्तित्व विकास सामान्य होता है।
3. **बचपनावस्था में व्यक्तित्व विकास**- बाल्यावस्था का प्रारंभ जन्म के दो सप्ताह बाद से प्रारंभ होकर अगले दो साल तक रहती है। बचपनावस्था को व्यक्तित्व विकास का विवेचित या क्रान्तिक अवस्था कहा जाता है। इसे विवेचित इसलिए कहा जाता है क्योंकि इसी अवधि में उन सारे विशेषताओं की नींव पड़ती है जिस पर वयस्क व्यक्तित्व संरचना का आगे चलकर निर्माण होता है। निम्नांकित पांच ऐसे साक्ष्य प्राप्त हैं जिनके आधार पर यह कहा जा सकता है कि वयस्क व्यक्तित्व संरचना की नीव इस अवधि में पड़ती है-कोट्स एवं उनके सहयोगियों तथा रुट्टर ने अपने अपने अध्ययनों के आधार पर यह बतलाया है कि इस अवधि में बच्चों में सांवेगिक वंचन होने पर आगे उनके व्यक्तित्व विकास में बहुत सारी कमियां उत्पन्न होती है। चूंकि इस अवधि में बच्चे की अन्तक्रिया मां के साथ सबसे ज्यादा होती है अतः माँ के अपने व्यक्तित्व तथा बच्चे के साथ उसके संबंध का प्रत्यक्ष प्रभाव बच्चे के व्यक्तित्व विकास पर पड़ता है।

इस अवधि में जब कोई अप्रत्याशित तथा प्रतिकूल घटना घटती है तो उस समय बच्चों में विकसित हो रहा शीलगुण का बुरा प्रभाव पड़ता है। जैसे-स्टोन एवं चर्च ने अपने अध्ययन में यह पाया है कि इस अवधि में जब बच्चों में स्वतंत्रता का शीलगुण का निर्माण हो रहा होता है और

यदि उस समय माता पिता से उसे अति संरक्षण मिलता है तो यह बच्चे के लिए हानिकारक सिद्ध होता है और उस शीलगुण का विकास अवरुद्ध हो जाता है। जराई एवं स्कीनफिल्ड- के अध्ययन के अनसार इसी अवस्था में बच्चों में यौन अंतर की नीव भी पड़ जाती है जो बाद में पुरुष बच्चे को एक प्रकार से तथा स्त्री बच्चे को दूसरे प्रकार से व्यवहार करने एवं सोचने के लिए बाध्य करता है। इस अवस्था में व्यक्तित्व पैटर्न का सार आत्म संप्रदाय का जो जन्म होता है, वह बाद में करीब-करीब वैसा ही रह जाता है। वैसी परिस्थिति में व्यक्तित्व शीलगुणों में किसी तरह का परिवर्तन से व्यक्तित्व संतुलन बिगड़ जाता है। बाल्यावस्था में कुछ व्यक्तित्व शीलगुणों में परिवर्तन होता है इस परिवर्तन का स्वरुप मात्रात्मक या गुणात्मक कुछ भी हो सकता है। मात्रात्मक परिवर्तन होने पर पहले से उपस्थित शीलगुण दूसरे शीलगुण द्वारा प्रतिस्थापित हो जाता है। जैसे- यदि इस अवस्था में सामाजिक रुप से कोई अवांछनीय शीलगुण वांछनीय द्वारा प्रतिस्थापित होता है तो यह गुणात्मक परिवर्तन का उदाहरण होगा।

4. **बाल्यावस्था में व्यक्तित्व विकास**- बाल्यावस्था 2 वर्ष की आयु से प्रारंभ होकर 12 वर्ष की आयु तक की होती है। इसमें 2 वर्ष से 6 वर्ष की आयु तक को आरंभिक बाल्यावस्था तथा 6 से 12 वर्ष की आयु तक को उत्तर बाल्यावस्था कहा जाता है। बाल्यावस्था को प्राक्स्कूल अवस्था या प्राक टोली अवस्था तथा उत्तर बाल्यावस्था को टोली अवस्था भी कहा जाता है। इस अवस्था में बच्चों का शारीरिक विकास, भाषा विकास, सांवेगिक विकास, सामाजिक विकास, मानसिक एवं संज्ञानात्मक विकास तेजी से होता है। बाल्यावस्था समाप्त होते-होते सांवेगिक अभिव्यक्ति का ढंग अधिक परिपक्व हो जाता है। वे सामाजिक रुप से बहिष्कृत संवेगों की अभिव्यक्ति नहीं करते हैं क्योंकि वे जानते हैं कि ऐसा करने से उसे उन्हें दूसरों का सामाजिक अनुमोदन प्राप्त नही हो सकेगा। मनोवैज्ञानिकों द्वारा किये गए अध्ययनों से यह संयुक्त रुप से स्पष्ट हुआ है कि बाल्यावस्था समाप्त होते ही बच्चों के व्यक्तित्व में कुछ खास प्रकार के सामाजिक व्यवहार विकसित होते है जिनमें प्रमुख है- सामाजिक अनुमोदन की प्राप्ति के लिए प्रयास करना, किसी लक्ष्य की प्राप्ति के लिये प्रतियागिता करना उत्तरदायित्व लेना, सामाजिक सूझ, सामाजिक विभेद, पूर्वाग्रह तथा यौन प्रतिरोध आदि दिखाना।
5. **पूर्व किशोरावस्था में व्यक्तित्व विकास-** यह अवस्था सामान्यतः 12-13 वर्ष से 15-16 वर्ष तक की होती है। इस अवस्था में व्यक्तित्व विकास संबंधी परिवर्तन काफी स्पष्ट होते हैं और लड़कों की तुलना में लडकियों का व्यक्तित्व विकास अधिक प्रभावित होता है। लड़कों तथा लड़कियों दोनों में इस अवस्था में प्रायः सरदर्द, पीठ दर्द तथा पूरे शरीर में सामान्य दर्द की शिकायत भी होती है जो स्पष्टतः उनके ग्रन्थीय विकास के कारण होते हैं।

6. **किशोरावस्था में व्यक्तित्व विकास**- यह अवस्था 16-17 साल की आयु से लगभग 19-20 साल की आयु तक होती है। व्यक्तित्व विकास की यह अवस्था एक महत्वपूर्ण अवस्था है क्योंकि इसमें बहुत तरह के दैहिक एवं मनोवैज्ञानिक परिवर्तन होते है। गैसेल तथा मोर ने अपने अध्ययन में पाया कि 16-17 साल के बालक बालिकाओं दोनों में ही क्रोध के संवेग की तीव्रता अधिक होती है। इनमें विषम लैंगिकता का शीलगुण भी विकसित होने लगता है क्योंकि लड़के एवं लड़कियां अपने विपरीत यौन के व्यक्तियों के साथ मिलने-जुलने में काफी आनंद उठाते है। पियाजे के अनुसार इस अवस्था में व्यक्ति का संज्ञानात्मक विकास एक नया रुख अपनाता है और इनके द्वारा क्रमबद्ध निगमनात्मक चिंतन का उपयोग किसी समस्या के समाधान में अधिक होने लगता है। इस अवस्था में लड़के एवं लड़कियों में आर्थिक स्वतंत्रता की प्राप्ति की ओर अग्रसर होने की प्रवृत्ति भी अधिक होती है। इस अवस्था में जो व्यक्ति लक्ष्य निर्धारण करने में वस्तुनिष्ठ दृष्टिकोण अपनाते है तथा जो अपनी क्षमताओं एवं कमजोरियों का सही मूल्यांकन करते है, उनका व्यक्तित्व पैटर्न का विकास अपेक्षाकृत अधिक उपयुक्त एवं समुचित होता है।
7. **प्रौढ़ावस्था में व्यक्तित्व विकास**- यह अवस्था 21 वर्ष से लगभग 40 वर्ष की होती है। इस अवस्था में सामान्यतः व्यक्ति शादी करके अपना घर परिवार बसाता है और किसी नौकरी या व्यवसाय में लग जाता है तथा अपने आत्म विकास को मजबूत कर आगे बढ़ाता है। इन्हीं कारणों से इस व्यवस्था या बसाने की अवस्था कहा गया है। इस अवस्था में व्यक्ति की अभिरुचियां थोड़ी सीमित हो जाती है। परन्तु यदि उनका सामाजिक आर्थिक स्तर प्रतिकूल होता है तो ऐसी सामाजिक क्रियाएं काफी कम एवं सीमित ही हो पाती है। इस उम्र में अविवाहित व्यक्ति विवाहित व्यक्ति की तुलना में सामान्यतः अधिक सामाजिक क्रियाओं में भाग लेते हैं। अतः इनमें सामाजिकता का शीलगुण तुलनात्मक रुप से अधिक तेजी से विकसित होता है।
8. **मध्यावस्था में व्यक्तित्व विकास**- मध्यावस्था या मध्यवयस्कावस्था की अवधि 40 से 60 वर्ष की होती है। इस अवस्था में व्यक्ति में कई कारणों से तनाव अधिक होता पाया गया है। मारमोर के अनुसार इस अवस्था में चार तरह के तनाव मुख्य रुप से होते हैं जिनका व्यक्तित्व पैटर्न के विकास पर सीधा असर पड़ता है। वे चार तनाव निम्नांकित हैं -
   i. दैहिक तनाव- उम्र के परिणाम स्वरुप गिरते स्वास्थ्य के कारण इस तरह का तनाव उत्पन्न होता है।
   ii. सांस्कृतिक तनाव- इस तरह के तनाव का मुख्य कारण सामाजिक परिवेश में यौवन शक्ति को उनके तुलना में अधिक महत्व दिया गया होता है।

iii. आर्थिक तनाव- इसका कारण सेवामुक्त होने पर आय में कमी तथा इस सीमित आय से परिवार के सदस्यों को शिक्षित करके स्तर संकेत प्रदान करने के प्रयास से होता है।

iv. मनोवैज्ञानिक तनाव- इस तरह के तनाव के कई कारण होते हैं जिनमें पति या पत्नी का देहांत, घर से बच्चों का व्यवसाय या नौकरी पर चला जाना, वैवाहिक जीवन की उम्र मृत्यु के करीब होने का अनुमान आदि प्रमुख है।

सामान्यतः यह कहा जाता है कि इस अवस्था में दैहिक क्षमता में गिरावट आने के साथ ही साथ मानसिक क्षमता में भी गिरावट आती है। टरमैन एवं ओडेन ने पुरुषों तथा महिलाओं के समूह पर एक अनुदैर्ध्य अध्ययन किया और पाया कि उच्च बौद्धिक क्षमता वाले व्यक्तियों में इस मध्यावस्था में भी बौद्धिक तथा मानसिक ह्रास के कोई सबूत नहीं मिलते हैं। केसलर ने भी अपने अध्ययन में इस तथ्य की संपुष्टि करते हुए कहा है कि ऐसे व्यक्तियों में तो इस अवस्था में समस्या समाधान तथा शाब्दिक क्षमताएं और विकसित हो जाती है। मध्यावस्था में कुछ व्यक्तियों में सामाजिक समायोजन पहले से परिपक्व हो जाता है क्योंकि उनके पास अब सामाजिक क्रियाओं के लिये पर्याप्त समय मिलता है।

9. **वृद्धावस्था में व्यक्तित्व विकास**- जीवन अवधि की अंतिम अवस्था वृद्धावस्था होती है जो सामान्यतः 60 वर्ष से प्रारंभ होकर मृत्यु तक की अवधि तक विस्तारित होती है। 60 से 70 साल की अवधि को आरंभिक वृद्धावस्था तथा 70 से मृत्यु तक की अवधि को प्रगत वृद्धावस्था कहा जाता है। इस अवस्था में कुछ विशेष दैहिक एवं मनोवैज्ञानिक परिवर्तन होते हैं। जिनसे वृद्धों के समायोजन क्षमता पर बुरा प्रभाव पड़ता है तथा उनके खुशियों को कुप्रभावित करता है। हरलॉक के अध्ययनानुसार इस अवस्था में व्यक्ति के रुप रंग, एवं ढील ढौल से स्पष्ट परिवर्तन आते हैं। दैहिक कारणो में शक्ति की कमी, जोड संधियों में कड़ापन हाथ सिर एवं निम्न जबड़े में कमी मुख्य है। अध्ययनों से यह भी स्पष्ट हो गया है कि इस अवस्था के लोगों के आगमनात्मक तथा निगमनात्मक तर्कणा में पर्याप्त कमी हो जाती है।

निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि व्यक्तित्व विकास अवधि के विभिन्न अवस्थाओं में चलने वाले एक निरंतर प्रक्रिया है जिनका इन सभी अवस्थाओं में व्यक्तित्व पर स्पष्ट प्रभाव पडता है।

10.6 व्यक्तित्व विकास की सैद्धान्तिक व्याख्या

जैसा कि हम जानते है व्यक्तित्व विकास जीवन की विभिन्न अवधियों या अवस्थाओं में होने वाली एक निरंतर प्रक्रिया है। फलस्वरुप, व्यक्तित्व विकास एवं उसके संबंधित पहलुओं की व्याख्या करने के लिए मनोवैज्ञानिकों ने अलग-अलग सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया है। इस खंड में हम इन विभिन्न

मनोवैज्ञानिकों द्वारा सिर्फ व्यक्तित्व विकास की गयी सैद्धान्तिक व्याख्या पर प्रकाश डालेंगें। इन विभिन्न मनोवैज्ञानिकों में निम्नांकित मनोवैज्ञानिकों द्वारा की गयी व्याख्या अधिक मशहूर है-

i. फ्रायड की विचारधारा
ii. इरिक्सन की विचारधारा
iii. पियाजे की विचारधारा
iv. मूलर एवं डोलार्ड की विचारधारा
v. बैंदुरा की विचारधारा
vi. युग की विचारधारा
vii. सुल्लिभान की विचारधारा

इन सब का वर्णन इस प्रकार है -

फ्रायड, इरिक्सन तथा पियाजे द्वारा प्रदत्त व्यक्तित्व विकास की व्याख्या में एक उभयनिष्ठ बिंदु यह है कि इन तीनों में व्यक्तित्व विकास की सैद्धान्तिक व्याख्या विभिन्न संबंध अवस्थाओं में बांटकर किया है। यही कारण है कि इन्हें व्यक्तित्व विकास का अवस्था सिद्धान्त कहा गया है जिसका वर्णन हम यहां अलग-अलग करेंगे-

10.7 आत्मन के विकास का सिद्धान्तः-

आत्मन् के विकास की व्याख्या करने के लिए समाज वैज्ञानिकों का संयुक्त प्रयास हुआ है। फलस्वरुप जितने भी ऐसे सिद्धान्तों का निर्माण किया है उसे मौटे तौर पर दो भागों में बांटा गया है-

i. मनोवैज्ञानिकों का सिद्धान्त
ii. समाजशास्त्रियों एवं दर्शनशास्त्रियों का सिद्धान्त

इन दोनों तरह के श्रेणियों के सिद्धान्तों में से कुछ सिद्धान्तों का वर्णन यहां अपेक्षित है जो इस प्रकार है-

I. **मनोवैज्ञानिकों का सिद्धान्त**- इस श्रेणी के सिद्धान्तों में मुख्य रुप से यहां विलियम जेम्स फ्रायड, आलपोर्ट तथा रोजर्स के सिद्धान्तों पर विचार किया जाएगा।

a) **विलियम जेम्स की विचारधारा**- जेम्स का आत्मन से तात्पर्य वही था जो आधुनिक समय में मनोवैज्ञानिकों का व्यक्तित्व से है। आत्मन् से उनका विशिष्ट मतलब मुझे या आनुभविक या अनुभूतिमूलक आत्मन से था जिसमें उनके अनुसार तीन पहलुओं का एक पदानुक्रम होता है- सांसारिक आत्मन्, सामाजिक आत्मन या आध्यात्मिक आत्मन्। सांसारिक आत्मन् पदानुक्रम

के निचली सतह पर, आध्यात्मिक आत्मन सबसे ऊपर तथा सामाजिक आत्मन् पदानुक्रम के बीच में आते हैं। सांसारिक आत्मन् मे व्यक्ति का शरीर तथा उसके व्यक्तिगत धरोहर जैसे-धन दौलत, रुपया, घर कपड़ा, फर्नीचर आदि को रखा जाता है । आध्यात्मिक आत्मन से तात्पर्य सभी तरह के मनोवैज्ञानिक कार्यो से संयुक्त रुप से होता है । चिंतन, बौद्धिक क्षमता, इच्छा आदि आध्यात्मिक आत्मन के उदाहरण हैं। उन्होंने यह भी स्पष्ट किया कि आध्यात्मिक आत्मन् से तात्पर्य क्षमता से नहीं है ।

इन तीनों तरह के आत्मन के अलावा जेम्स ने अमिश्रित अहम के संप्रत्यय को भी स्वीकारा है। इसे मैं या ज्ञान प्राप्त करने वाला आत्मन भी उन्होंने कहा है जिसके द्वारा व्यक्ति अपने वातावरण के विभिन्न पहलुओं के बारे में एक समग्र ज्ञान प्राप्त करता है ।

b) **फ्रायड की विचारधारा**- फ्रायड ने आत्मन् के लिए एक दूसरा पद अर्थात अहम् का प्रतिपादन किया है। सचमुच में उन्होंने संरचनात्मक दृष्टिकोण से मन को तीन भागों में बांटा है- उपाह, अहम, तथा पराहं । उपाह मन का जैविक तत्व होता है तथा व्यक्ति की शारीरिक संरचना से संबंध होता है। उपाह की इच्छाएं एवं आवेग असंगठित होते हैं तथा वे कोई नियम एवं कानून नहीं मानने वाले होते हैं। अहम् मन का वह भाग होता है जिसका संबंध वास्तविकता से होता है तथा जो सोचता है अनुभव करता है तथा कोई निर्णय लेता है यह वास्तविकता को ध्यान में रखते हुए अपनी मानसिक एवं शारीरिक ऊर्जा का उपयोग करता है । यह नियम मूलप्रवृत्तिक तुष्टि की अनुमति तब देता है जब उसके लिए उपर्युक्त पर्यावरणी अवसर होते हैं। इस तरह से वास्तविकता के नियम का मूल उद्देश्य व्यक्तित्व में अखंड़ता बनाये रखना होता है। चूंकि हम् का संबंद्ध वाहा्र वास्तविकता से होता है अतः इसे व्यक्तित्व का कार्यपालक या निर्णय लेकर उसे कार्य रुप देने वाला शाखा कहा जाता है । दूसरा यह पराहं एवं बाहा्र दुनिया के बीच उत्तम सम्पर्क बनाये रखता है ।

स्पष्ट हुआ कि अहम जो कि फ्रायड के नजर में आत्मन के तुल्य है, की महत्वपूर्ण भूमिका होती है जिसके द्वारा व्यक्तित्व के विभिन्न व्यवहारों को संगठित किया जाता है ।

c) **आलपोर्ट की विचारधारा**- आलपोर्ट ने आत्मन् शब्द के लिए प्रोप्रियम पद का उपयोग किया है ओर कहा है कि यह पद आत्मन् पद की तुलना में अधिक वैज्ञानिक है तथा इसमें किसी प्रकार की आत्मनिष्ठता नहीं है । प्रीमियम एक लैटिन पद च्तवचतपने से बना होता है। आलपोर्ट के अनुसार प्रोप्रियम से तात्पर्य व्यक्तित्व के उन सभी पहलुओं से होता है जिनसे उसमें आंतरिक एकता तथा संगतता आती है । स्वयं आलपोर्ट ने प्रोप्रियम को इन शब्दों में परिभाषित किया है। प्रोप्रियम को ज्ञात आत्मन के रुप में परिभाषित किया जाता है जिसे भाव प्रबल एवं प्रमुख समझा

जाता है तथा जिसका एक विशेष महत्व होता है। यह आत्मगत अनुभूति का मुझे वाला अंश होता है। यह आत्मतत्व है। इस परिभाषा से स्पष्ट है कि आलपोर्ट के लिए प्रोप्रियम मानव प्रकृति के धनात्मक, सर्जनात्मक, वर्धन उन्मुखी तथा प्रगतिशीलता के गुणों को दर्शाता है। उन्होंने प्रोप्रियम को आत्मतत्व कहा है और इस आत्मतत्व के सात विभिन्न पहलू ऐसे होते हैं जो प्रोप्रियम के विकास के महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं । ये सातों पहलू जन्मजात नहीं होते हैं बल्कि धीरे-धीरे विकसित होते हैं । ये सभी पहलुओं अर्थात शारीरिक आत्मन्, आत्म पहचान तथा आत्मसम्मान का विकास बच्चों की प्रथम तीन वर्ष की आयु से होता है। प्रोप्रियम के इन सभी सात पहलुओं का वर्णन निम्नांकित है-

1. **शारीरिक आत्मन**- इस अवस्था में बालक अपने अस्तित्व से अवगत होता है और अपने शरीर को वातावरण के अन्य वस्तुओं से भिन्न समझता है।
2. **आत्म पहचान**- इस अवस्था में बच्चे यह अनुभव करने लगते हैं कि उनके भीतर कई तरह के परिवर्तन के बावजूद उनकी एक अलग पहचान बनी होती है। इसकी अभिव्यक्ति वह भाषा के माध्यम से करता है। जैसे- वह आईना में अपना चेहरा देखकर वह अपना नाम बतलाता है।
3. **आत्म सम्मान**- इस अवस्था में बच्चे अपनी उपलब्धियों का स्वयं ही मूल्यांकन करते हैं। प्रत्येक कार्य को बच्चा स्वयं करना चाहता है। अक्सर माता-पिता इस अवस्था को निषेधवृत्ति की अवधि मानते हैं क्योंकि बच्चे वयस्क के किसी भी प्रस्ताव को अपनी स्वायत्ता तथा अखंडता के प्रति एक चुनौती समझकर उसका विरोध भी करते हैं।
4. **आत्म विस्तार**- इस अवस्था में आत्मन का विस्तार होता है जो प्रायः 4 से 6 साल की आयु में होता है। इस अवस्था में बच्चे में यह भाव विकसित होता है कि यद्यपि अन्य लोग या चीज उनके शरीर के भीतर नहीं हैं परंतु वे उनके ही अंश हैं। जैसे- बच्चा जब यह कहता है, मेरी मम्मी, मेरे पापा, मेरा कुत्ता आदि तो यह निश्चित रुप से आत्म-विस्तार के उदाहरण है।
5. **आत्म प्रतिमा**- यहां बच्चे अपने एवं अपने व्यवहार के बारे में एक वास्तविक एवं आदर्श प्रतिमा विकसित कर लेते हैं और वे अपने माता-पिता की प्रत्याशाओं को पूरा करने की कोशिश करते हैं। लेकिन इसके बावजूद भी इस बाल्यावस्था में बच्चों में कोई स्पष्ट विकसित अन्तःकरण नहीं होता है और न ही यह भाव विकसित होता है कि वह कैसा वयस्क बनना चाहता है। आलपोर्ट ने इस बिंदु पर इस तरह से टिप्पणी की है, बाल्यावस्था में बच्चों में अपने बारे में जैसा वह है, जैसा वह होना चाहता है तथा जैसा उसे होना चाहिए से संबंद्ध चितंन मात्र जननिक होता है।

6. **युक्ति संगत समायोजक के रुप में आत्मन्**- इस अवस्था में बच्चे दिन प्रतिदिन की समस्याओं के समाधान में तर्क एवं विवेक का प्रयोग करना सीख लेते हैं। यह अवस्था 6 से 12 साल की होती है जिसमें बच्चों में यह चेतना आ जाता है कि वह अपनी जिंदगी की समस्याओं का समाधान करने तथा वास्तविकता की मांगों को प्रभावी ढंग से पूरा करने की क्षमता रखता है। क्योंकि वह यह समझने लगता है कि उसका परिवार, उसका धर्म तथा उसका साथी संगी का समूह अन्य की तुलना में अधिक सही है।
7. **उपयुक्त प्रयास**- यह अवस्था किशोरावस्था की होती है जहां किशोर दीर्घकालीन योजना तथा लक्ष्य विकसित करना प्रारंभ कर देते हैं इस तरह से इस अवस्था में व्यक्ति अपनी जिंदगी को एक सार्थक उद्देश्य प्रदान करता है।

d) **रोजर्स का विचारधारा**- रोजर्स के अनुसार प्राणी एक ऐसा दैहिक जीव है जो शारीरिक एवं मनोवैज्ञानिक दोनों ही तरह से कार्य करता है। जीव में प्रासंगिक क्षेत्र तथा आत्मन दोनों ही सम्मिलित होते हैं। प्राणी या जीव सभी तरह की अनुभूतियों का केन्द्र होता है। सभी तरह के चेतन एवं अचेतन अनुभूतियों के योग से प्राणी में जिस क्षेत्र का निर्माण होता है। उसे प्रासंगिक क्षेत्र कहा जाता है।

रोजर्स का मत है कि जब धीरे-धीरे अनुभव के आधार पर प्रासंगिक क्षेत्र का एक भाग अधिक विशिष्ट हो जाता है, तो उसे ही रोजर्स के शब्दों में आत्मन् कहा जाता है। इनके अनुसार आत्मन् व्यक्तित्व का एक अलग विमा नहीं होता है जैसा कि फ्रायड के अनुसार अहं व्यक्तित्व का एक अलग विमा होता है। रोजर्स ने यह भी दावा किया कि किसी व्यक्ति में आत्मन् नहीं होता है बल्कि स्वयं आत्मन का अर्थ ही सम्पूर्ण प्राणी होता है। रोजर्स के अनुसार आत्मन का विकास शैशावस्था में विशेषकर उस समय होता है जब शिशुओं की अनुभूतियों का एक अंश या भाग अधिक मूर्त रुप प्राप्त करने लगता है। और मैं या मुझको के रुप में धीरे-धीरे विशिष्ट होने लगता है। रोजर्स के अनुसार आत्मन् के दो उपतंत्र होते हैं- आत्म संप्रत्यय एवम आदर्श आत्मन्

इन दोनों का वर्णन इस प्रकार है-

a) **आत्म संप्रत्यय**- आत्म संप्रत्यय से तात्पर्य व्यक्ति के उन सभी पहलुओं एवं अनुभूतियों से होता है जिससे व्यक्ति अवगत होता है हालांकि उसका यह प्रत्यक्षण हमेशा सही नहीं होता है। आत्म संप्रत्यय को प्रायः विशेष कथनों के रुप में व्यक्ति व्यक्त करता है- जैसे मैं एक ऐसा व्यक्ति हूँ जो......। आत्म संप्रत्यय की दो विशेषताएं हैं जो इस प्रकार हैं-

i. पहली विशेषता यह है कि आत्म संप्रत्यय का एक बार निर्माण हो जाने पर उसमें सामान्यतः परिवर्तन नहीं होता है। हाँ, बहुत कोशिश करने से उसमें परिवर्तन हो सकता है।

जो अनुभूतियां व्यक्ति के आत्म संप्रत्यय के साथ असंगत होती हैं। उसे व्यक्ति स्वीकार नहीं करता है और यदि कभी स्वीकार करता भी है तो विकृत रुप में।

ii. दूसरी विशेषता यह है कि व्यक्ति का आत्म संप्रत्यय उसके वास्तविक या जैविक आत्मन से भिन्न होता है। जैविक आत्मन् का कुछ अंश या भाग ऐसा होता है जिससे व्यक्ति अवगत नहीं होता है। जैसे- यकृत हमारे जैविक संप्रत्यय का एक अंश या भाग है न कि हमारे आत्म संप्रत्यय का। परंतु यदि व्यक्ति का यकृत खराब ढंग से कार्य करने लगता है तो उससे अवगत हो जाता है कि अब यह आत्म संप्रत्यय का उदाहरण है।

b) **आदर्श आत्मन्**- आदर्श आत्मन् से तात्पर्य अपने बारे में विकसित किये गए एक ऐसे छवि से होता है जिसे वह आदर्श मानता है। दूसरे शब्दों में आदर्श आत्मन् में वे सभी गुण आते हैं जो प्रायः धनात्मक होते हैं तथा जिसे व्यक्ति अपने में विकसित होने की तमन्ना करता है। रोजर्स ने यह भी स्पष्ट किया है कि एक सामान्य व्यक्ति में आदर्श आत्मन तथा प्रत्याशित आत्मन् में अंतर नहीं होता है।

स्पष्ट हुआ कि रोजर्स द्वारा की गयी आत्मन् की व्याख्या अन्य मनोवैज्ञानिकों द्वारा की गयी व्याख्या से अधिक वैज्ञानिक, श्रेष्ठ एवं उत्तम है।

II. समाजशास्त्रियों तथा दर्शनशास्त्रियों का सिद्धान्त- कुछ समाजशास्त्रियों ने भी आत्मन् की व्याख्या करने के लिए अपने-अपने विचारधारा को लोगों के सामने रखा है। इसमें मुख्य रुप से सी0एच0 कूली का नाम मशहूर है।

a) **सी0एच0 कूली का विचार**- इनका मत है कि आत्मन् ओर समाज दोनों ही एक दूसरे को प्रभावित करते हैं। व्यक्ति समाज को प्रभावित करता है और उससे प्रभावित होकर अपने आप में कुछ परिवर्तन लाता है। कुली का आत्मन् से तात्पर्य मैं या मुझको से था। व्यक्ति को समाज से जो अनुभूतियां प्राप्त होती है, उन आत्मगत अनुभूतियों से उसका आत्मन का विकास होता है। अतः व्यक्ति वातावरण के संकेतो से न कि वस्तुओं से घिरा होता है। अन्तःक्रिया से तात्पर्य यह होता है कि संकेतों के माध्यम से हम अन्य लोगों के साथ संचार स्थापित करने में सफल न होकर दो व्यक्तियों के बीच होने वाली अन्तक्रिया एवं अन्य लोगों के बीच होने वाली अन्तक्रिया होती है। इस तरह के अंतक्रिया का परिणाम यह होता है कि आत्मन् का स्वयं के साथ ही सामना होता है और तब व्यक्ति स्वयं अपने बारे में अवगत होता है। इस तरह से सांकेतिक अन्तःक्रिया के माध्यम से व्यक्ति का आत्मन धीरे-धीरे विकसित होता है।

b) **जी0एच0मीड का विचार**- जी0एच0मीड का एक दार्शनिक थे जिन्होंने समाज मनोविज्ञान का अध्ययन बहुत दिनों तक किया तथा इस पर उनके महत्वपूर्ण व्याख्यान दिये और इन व्याख्यानों

के दौरान उन्होंने आत्मन् के बारे में जो विचार सामने रखे, वे मनोवैज्ञानिकों के लिए वरदान साबित हुआ। कूली के समान मीड ने भी आत्मन् के लिये सांकेतिक अन्तक्रिया के संप्रत्यय को महत्वपूर्ण बतलाया है । मीड के अनुसार आत्मन का सबसे प्रमुख गुण यह है कि यह आत्मवाचक होता है । अतः आत्मन् स्वयं अपने लिए ही एक वस्तु हो सकता है । इस विचारधारा के अनुसार हम लोग अपने आप को ठीक उसी ढंग से अनुभव करते हैं जिस ढंग से वातावरण के अन्य वस्तुओं एवं व्यक्तियों को। इस तरह का अनुभव भाषा के माध्यम से अन्य लोगों के साथ अन्तःक्रिया करने पर ही हमें प्राप्त होता है। मीड का मत है कि इस प्रक्रिया द्वारा हम लोग अपने बारे में एक तस्वीर बना पाते हैं जिसे उन्होंने सामान्यीकृत अन्य की संज्ञा दी है। व्यक्ति के प्रति समाज के अन्य दूसरे लोगों की मनोवृत्ति से ही सामान्यीकृत अन्य का निर्माण होता है। अतः यह एक तरह का सामाजीकरण का परिणाम होता है। अतः आत्मन् का स्वरुप सामाजिक एवं सामाजीकृत दोनों ही होता है। दूसरे लोगों की मनोवृत्ति से हम लोग अन्य दूसरों पर अपने व्यवहारों के पड़ने वाले प्रभाव से अवगत होते हैं।

मीड के अनुसार आत्मन् के दो भाग होते हैं। एक को मीड ने मुझे या सामान्यीकृत अन्य की संज्ञा दी है तथा दूसरे को मैं की संज्ञा दी है जो मुझे वाला भाग अगली बार किस तरह से व्यवहार करेगा। जैसे ही मैं द्वारा किये गये निर्णयों को कार्यरुप देना व्यक्ति प्रारम्भ करता है। वे मुझे का एक अंश बन जाते हैं अर्थात गत या अतीत का एक भाग बन जाते हैं। इस तरह से मैं वाले भाग को कभी भी हम अभिग्रहित नहीं कर सकते हैं। जब तक हम इसके बारे में जान पाने की कोशिश करते हैं वह मुझे का एक अंश बन जाता है । मीड द्वारा प्रतिपादित आत्मन के सिद्धान्त का सबसे महत्वपूर्ण बल इस बात पर था कि उसके उत्पत्ति का स्वरुप सामाजिक होता है । दूसरे शब्दों में आत्मन् के विकास के लिये दूसरों के साथ अन्तःक्रिया करना अति आवश्यक है। जैसा की मीड ने स्वयं ही कहा है... अन्य लोगों के साथ आत्मन् के सुस्पष्ट सबंध से ही आत्मन् का अस्तित्व बना होता है। इससे तब यह स्पष्ट अर्थ निकलता है कि आत्मन् व्यक्ति का जन्मजात गुण नहीं होता है । बल्कि इसका निर्माण अन्य लोगों के साथ किये गए अन्तःक्रिया से प्राप्त अनुभूति से बना होता है। इसे एक उदाहरण से इस तरह से समझाया जा सकता है- मान लिया जाए कि किसी मानव शिशु को अकेले किसी मनुष्य रहित द्वीप में छोड़ दिया जाए और वह यदि अपनी वयस्कावस्था तक जीवित रह जाता है तो इसमें कोई आत्मन नहीं होगा और उसे अपने बारे में कुछ पता नहीं हो पायेगा।

निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि आत्मन् की व्याख्या करने के लिए मनोवैज्ञानिकों दार्शनिकों एवं समाजशास्त्रियों का जो प्रयास किया गया है वह अपने आप में काफी सराहनीय है तथा अन्य सामाजिक वैज्ञानिकों के लिए एक महत्वपूर्ण शोध प्रेरणा भी है।

10.8 स्वतंत्रता बनाम आश्रयता:-

स्वतंत्रता बनाम आश्रयता एक अन्तक्रिया का संसय है जिसका किसी भी मनुष्य के व्यवहार में परिदर्शन हो जाता है। वर्ष 2007 के अनुसार यह कार्य उसके व्यवहार को प्रत्यक्ष रुप से पुनर्कलित करता है जो सकारात्मक या नकारात्मक दोनां में हो सकता है। ये दोनों प्रकार सामाजिक अन्तक्रिया व व्यक्ति की योग्यता के महत्वपूर्ण प्रकार है। जहां स्वतंत्रता में व्यक्ति को किसी सहारे की आवश्यकता नहीं पड़ती और दूसरों द्वारा दी गई सहायता उसके बाधा पहुंचाती है। दूसरी ओर वहीं जो व्यक्ति आश्रयता की ओर उन्मुख होता है वह बिना किसी अन्य व्यक्ति की सुझाव या सलाह के कोई कार्य नहीं कर पाता इसके ऊपर आयु का भी प्रभाव पड़ता है जहां बच्चों के किसी भी कार्य की पूर्णता बड़ों के सहारे के बिना नहीं होती और वे जीवन यापन के प्रतिदिन कार्य भी बड़ों की सहायता बिना नहीं कर पाते वहीं वयस्क लोग अपना कार्य स्वयं कर लेते हैं।

आत्मविश्वासी वयस्कों के लिए प्रतिदिन के जीवन में भी घटित होने वाली सामाजिक अन्तक्रिया में संतुष्टि बोध आवश्यक है। उन वयस्कों के लिए जो प्रतिदिन के कार्यों में सहायता की आवश्यकता महसूस करते हैं। अन्तक्रिया कम सकारात्मक अस्तित्व से जुड़ी होती है उनका यह सोचना कि वे वृद्ध हो गए हैं, अक्षम है या कोई कार्य नहीं कर सकते उन्हें दूसरों से सहायता मांगने पर विवश कर देता है। जहां बच्चों द्वारा प्रतिदिन के कार्यों में सहायता मांगना बुरा नहीं माना जाता, वहीं बड़ों द्वारा सहायता मांगना अर्थहीन या असुखद रुप में देखा जाता है। वे दूसरों की प्रत्याशाओं पर खरे नहीं उतरते। सहायता लेने की उनकी यह प्रवृत्ति उन्हें दूसरों की दृष्टि में एहसानमंद एवं दुर्बल बना देती है। ये अनुभूतियां उन्हें अवसाद ग्रस्त भी कर सकती हैं। पश्चिमी देशों में ऐसा नहीं होता यहां व्यक्ति जीवनपर्यन्त स्वतंत्र ही रहता है। इससे सिद्ध होता है कि वयस्कों के जीवन में संतुलन बनाए रखने के लिए स्वतंत्रता एवं आश्रयता दोनों की आवश्यकता होती है। वयस्कों में स्वतंत्रता लेने की प्रवृत्ति का विनाश उसी समय दृष्टिगोचर होना चाहिए जब कठिन आवश्यकता पड़ने पर भी छोटे लोग उनकी सहायता करें। छोटे लोगों ने सहायता लेने के उपरान्त उन्हें धन्यवाद देने के लिए बड़ों को चाहिए कि उन्हें घुमाने या कही ले जाएं। इससे उन्हें आगे भविष्य में भी सहायता मिलती रहेगी। बड़ों की सहायता करते समय सभी को यह बात ध्यान में रखनी चाहिए कि अनावश्यक या अपरिचित सहायता बड़ों के मानसिक स्वास्थ्य व दैहिक रुप से नकारात्मक रुप में प्रभावित कर सकती है। अपरिचित सहायता के फलस्वरुप एक व्यस्क यह सोच सकता है कि वह परिस्थिति में परिवर्तन करने में सक्षम नहीं है ये अनुभूतियां उसके एक अधिगत आवश्यकता की सहायता को जन्म देती है। वह यह सोचने लगता है कि वह ऐसा कुछ भी नहीं कर सकता जिससे उसका जीवन सकारात्मक हो सके और जब नकारात्मक अनुभूतियां उत्पन्न होती हैं। तब उनकी उत्पत्ति का कारण वह अपनी अक्षमता ,अयोग्यता व वृद्धावस्था को मानने लगता है। अधिक सहायता की दशा अभिप्रेरणात्मक व संवेगात्मक दोष निष्क्रियता और अवसाद को जन्म देती है। अतः आवश्यक यह है कि उसको उतनी ही सहायता दी जाय जिससे कार्य के प्रति उसमें शक्ति एवं ऊर्जा का संचार हो और उसके जीवन की

गुणवत्ता का विकास हो, यह प्रत्यक्षीकृत सामाजिक समर्थन उन वृद्धों को समर्थन देगा जो मानसिक या शारीरिक रुप से कष्ट में है।

विस्तृत अध्ययनों से यह पाया गया कि यदि सहायता की रीति सही है तो उसके फलस्वरुप वयस्कों स्वायत्ता कार्यशीलता एवं स्वतंत्रत व्यवहार का विकास होगा। प्रायः यह देखा जाता है कि वृद्धों में स्वतंत्रता का विकास घर में रहने की अपेक्षा वृद्धाश्रम में रहने से अधिक होता है। वृद्धाश्रम में उनकी ही आयु के लोगों के रहने के कारण वे एक दूसरे से कार्य करने की गुणत्वत्तापूर्ण रीति या विधि सीखते हैं इसे साथ वे यह भी जानते हैं कि यदि यहां पर उन्होंने अपना कार्य स्वयं नही किया तो कोई भी उनकी सहायता नहीं करेगा क्योंकि वे सभी उन्हीं की आयु के हैं। वृद्धाश्रम एवं स्वपालन कार्य संस्थाओं में चलने वाली योजनाएं वृद्धों को अपने ढंग से सक्रिय एवं स्वतंत्र रुप से जीने के लिए प्रेरित करती हैं। कहने का तात्पर्य यह नहीं है कि वृद्धों को घर में रखना हानिकारक है या उनकी देखरेख करना गलत है हमारा केवल यह अर्थ है कि उनकी देखभाल में आदर हो सम्मान हो लेकिन उनकी इस सीमा तक सहायता न की जाए कि वे अपना कार्य स्वयं न कर पाए एवं उनका जीवन गुणवत्ता विहीन हो जाए।

10.9 सारांश:-

व्यक्तित्व विकास से तात्पर्य व्यक्तित्व संरुप के विकास से होता है। व्यक्तित्व पैटर्न में सभी मनोदैहिक तंत्र जिनसे व्यक्ति का व्यक्तित्व बना होता है, आपस में अंतर्सबंधित होते हैं और एक-दूसरे को प्रभावित करते रहते हैं। व्यक्तित्व पैटर्न के दो मुख्य तत्व होते हैं- आत्म-संप्रत्यय तथा शीलगुण। आत्म-संप्रत्यय से तात्पर्य उस तथ्य से होता है कि जिसमें व्यक्ति यह समझता है कि वह कौन है तथा वह क्या है। सचमुच में यह एक तरह का दर्पण प्रतिमा होता है जो व्यक्ति द्वारा किये गए अपनी भूमिकाओं, दूसरों के साथ संबंधों तथा उसके प्रति दूसरों द्वारा किये गए प्रतिक्रियाओं द्वारा मूलतः निर्धारित होता है। शीलगुण से तात्पर्य व्यवहार या समायोजी पैटर्न के विशिष्ट गुणों, से होता है। बुद्धि, प्रभुत्व ,सहनशीलता आदि शीलगुण के कुछ उदाहरण हैं। व्यक्तित्व का शीलगुण आत्म संप्रत्यय से संघटित होता है तथा आत्म संप्रत्यय से प्रभावित भी होता है। कुछ शीलगुण तो अलग-अलग होते हैं। परन्तु कुछ ऐसे होते हैं जो व्यवहार के संबंधित पैटर्न में सयांजित होते हैं जिन्हें संलक्षण कहा जाता है। शीलगुण की दो विशिष्ट विशेषताएं होती हैं- वैयक्तिकता तथा संगतता।

व्यक्तित्व विकास एवं उसके संबंधित पहलुओं की व्याख्या करने के लिए मनोवैज्ञानिकों ने अलग-अलग सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया है।जिनमें फ्रायड, आलपोर्ट, रोजर्स आदि मनोवैज्ञानिकों के सिद्धान्त महत्वपूर्ण हैं इसके अतिरिक्त कूली,एवं मीड का सिद्धान्त भी महत्वपूर्ण है।

स्वतंत्रता बनाम आश्रयता के बारे में आपने जाना कि जहां स्वतंत्रता में व्यक्ति को किसी सहारे की आवश्यकता नहीं पड़ती और दूसरों द्वारा दी गई सहायता उसको बाधा पहुंचाती है। दूसरी ओर वहीं जो व्यक्ति आश्रयता की ओर उन्मुख होता है वह बिना किसी अन्य व्यक्ति की सुझाव या सलाह के कोई कार्य नहीं कर पाता इसके ऊपर आयु का भी प्रभाव पड़ता है जहां बच्चों के किसी भी कार्य की पूर्णता

बड़ों के सहारे के बिना नहीं होती और वे जीवन यापन के प्रतिदिन कार्य भी बड़ों की सहायता बिना नहीं कर पाते , वहीं वयस्क लोग अपना कार्य स्वयं कर लेते हैं।

10.10 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न एवं उनके उत्तर:-

1. व्यक्तित्व पैटर्न के दो मुख्य तत्व ....होते हैं।
2. आरंभिक बाल्यावस्था को .... तथा उत्तर बाल्यावस्था को ....भी कहा जाता है।
3. अधिक सहायता की दशा अभिप्रेरणात्मक व संवेगात्मक दोष ....को जन्म देती है।

उत्तर:-

1. आत्म-संप्रत्यय तथा शीलगुण
2. प्राक्स्कूल अवस्था, टोली अवस्था
3. निष्क्रियता और अवसाद

10.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूचीः-

1. श्रीवास्तव, डी0एन0- व्यक्तित्व मनोविज्ञान.
2. सिंह, ए0 के0- व्यक्तित्व मनोविज्ञान
3. अग्रवाल, पी0के, पाण्डेय, एस0एस0- सामाजिक मनोविज्ञान

10.12 निबन्धात्मक प्रश्नः-

1. व्यक्तित्व को परिभाषित करें तथा फ्रायड के विचार की विवेचना करें।
2. व्यक्तित्व विकास के विभिन्न चरणों की विवेचना कीजिए।
3. स्व को परिभाषित कीजिए तथा रोजर्स के सिद्धान्त की विवेचना कीजिए।

इकाई 11- सामाजिक प्रभाव स्वरूप , अवयव एवं प्रकार अन्तवैंयक्तिक आकर्षण के सिद्धांत

इकाई संरचना-

11.1 प्रस्तावना
11.2 उद्देश्य
11.3 सामाजिक प्रभाव की परिभाषा एवं अर्थ
11.4 सामाजिक प्रभाव का स्वरूप
11.5 सामाजिक प्रभाव प्रक्रिया के अवयव
11.5.1 लक्ष्य क्रिया
11.5.2 लक्ष्य व्यक्ति
11.5.3 लक्ष्य व्यक्ति एवं अन्य व्यक्तियों में संबंध
11.5.4 लक्ष्य क्रिया का सामाजिक परिवेश
11.5.5 सामाजिक प्रभाव मॉडल
11.6 सामाजिक प्रभाव के प्रकार
11.6.1 सूचनात्मक सामाजिक प्रभाव
11.6.2 मानकात्मक सामाजिक प्रभाव
11.7 अन्तवैंयक्तिक आकर्षण के सिद्धांत
11.8 सारांश
11.9 शब्दावली
11.10 अभ्यास पश्नों के उत्तर
11.11 निबंधात्मक प्रश्न
11.12 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

11.1 प्रस्तावना

सामाजिक अन्तःक्रियाओं के माध्यम से प्रत्येक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति को प्रभावित करता है। सामाजिक अन्तःक्रियाओं के कारण ही शिक्षक अपने छात्रों को तथा माता पिता अपने बच्चों को प्रभावित करते हैं। अतः सामाजिक प्रभाव , जन्म से मृत्यु तक व्यक्ति के व्यवहारों को प्रभावित करने वाला एक मुख्य कारक है। यही कारण है कि ''सामाजिक मनोविज्ञान'' को व्यक्ति के व्यवहार पर सामाजिक प्रभावों का अध्ययन करने वाले विज्ञान के रूप में भी जाना जाता है। अन्तवैंयक्तिक आकर्षण के कारण ही लोग एक दूसरे के

निकट सम्पर्क में आते हैं। मित्रता स्थापित होती है और पारस्परिक सहायता का व्यवहार प्रदर्शित होता है। इसके अभाव में लोगों में दूरी , आशंका , घृणा एवं विकर्षण बढता है। सामाजिक जीवन इसके अभाव में नीरस हो जाता है , सामाजिक संरचना विघटित हो सकती है। मानव व्यवहार को निर्धारित व नियंत्रित करने हेतु समाज की शक्ति एवं सामाजिक अन्तःक्रिया की उपयुक्त दिशा सुनिश्चित करना आवश्यक होता है। अन्तःवैयक्तिक आकर्षण को बढावा देकर ही इस लक्ष्य तक पहुंचा जा सकता है। प्रस्तुत इकाई से इनके विषय में आप जान सकेगें तथा इनका विस्तृत अध्ययन कर सकेंगे।

11.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई को पढ़ने के बाद आप-

1. सामाजिक प्रभाव के अर्थ , स्वरूप , अवयव एवं प्रकार को भली प्रकार समझ सकें।
2. मानव व्यवहार निर्धारण एवं नियंत्रण में सामाजिक प्रभाव की भूमिका से अवगत हो सकें।
3. सामाजिक शक्ति, एवं सामाजिक अन्तःक्रिया तथा अन्तर्वैयक्तिक आकर्षण के आपसी संबन्धों की व्याख्या कर सकें।
4. सामाजिक अन्तःक्रिया की दिशा (धनात्मक तथा ऋणात्मक) पर स्पष्ट विचार कर सकें।
5. अन्तर्वैयक्तिक आकर्षण के अर्थ , स्वरूप को समझ सकें।
6. सामाजिक मनोवैज्ञानिकों द्वारा प्रतिपादित संतुलन ,पुनर्बलन,विनिमय समदृष्टि एवं पूरक आवश्यकताओं आदि सिद्धांतोंके आधार पर अन्तवैयक्तिक आकर्षण की समुचित विवेचना कर सकें।

11.3 सामाजिक प्रभाव की परिभाषाएं एवं अर्थ

फ्रेंच तथा रेवेन (1959) एवं रेवेन तथा क्रुगलान्सकी (1970) के अनुसार "सामाजिक प्रभाव का अर्थ किसी व्यक्ति के विश्वासों, मनोवृत्तियों, अभिप्रेरकों आदि में ऐसे परिर्वतन से है, जिसे किसी अन्य व्यक्ति या व्यक्तियों ने उत्पन्न किया है"।

रेवेन (1974) के अनुसार "सामाजिक प्रभाव से तात्पर्य व्यक्ति की मनोवृत्ति तथा व्यवहार में उस परिवर्तन से होता है जो अन्य व्यक्ति द्वारा उत्पन्न किया जाता है"।

सिकार्ड एवं बैकमैन (1974) के अनुसार "यदि किसी व्यक्ति की क्रियाओं के कारण दूसरा व्यक्ति क्रियाएं करता है तो इसे सामाजिक प्रभाव कहा जाता है"।

A social influence may be said to have occurred when the actions of one person are conditions for the actions of another.

फ्रेच तथा रेवेन (1969) के अनुसार "सामाजिक प्रभाव का ही परिणाम है कि व्यक्ति का विचार या अभिवृत्ति अनुकूल से प्रतिकूल या प्रतिकूल से अनुकूल बन जाती है"।

इस प्रकार स्पष्ट है कि जब किसी व्यक्ति का प्रभाव दूसरे व्यक्ति पर पड़ता है और उसके व्यवहार में परिवर्तन प्रदर्शित होता है तो इसे सामाजिक प्रभाव कहा जाता है। सामाजिक अन्तःक्रिया के माध्यम से प्रत्येक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति को प्रभावित करता है , जैसे शिक्षक अपने छात्रों को , माता पिता अपने बच्चों को तथा नेता अपने अनुयायियों को तरह तरह से सामाजिक अन्तःक्रिया करके उन्हें प्रभावित करता है। इस तरह का प्रभाव किसी अभिप्राय से हो सकता है अथवा प्रासंगिक भी हो सकता है जो प्रभाव डालता है उसे प्रभावक अभिकर्ता तथा जो व्यक्ति प्रभावित होता है उसे लक्षित व्यक्ति कहा जाता है । समाज की प्रभावित करने की क्षमता को सामाजिक शक्ति कहते हैं। सामाजिक प्रभाव तथा सामाजिक शक्ति में मूल अंतर यह है कि सामाजिक प्रभाव तब उत्पन्न होता है जब व्यक्ति वास्तव में अन्य व्यक्ति के व्यवहार में परिवर्तन ला पाता है जबकि सामाजिक शक्ति से तात्पर्य मात्र ऐसा परिवर्तन लाने की क्षमता से होता है।

11.4 सामाजिक प्रभाव का स्वरूप

यह सर्वदा स्थायी नहीं होता हैं। सामाजिक प्रभाव तभी तक प्रभावित होते हैं जब तक व्यक्ति प्रभावक अभिकर्ता के संपर्क में रहता है। जैसे विद्यालय की फाइनल परीक्षा पास करने के बाद छात्र का संबन्ध स्कूल के शिक्षक से समाप्त हो जाता हैं और शिक्षक का प्रभाव भी छात्र पर से समाप्त हो जाता है। इसी प्रकार कुछ सामाजिक प्रभाव , सामाजिक रूप से आश्रित प्रभाव होते हैं तथा वे स्थाई होते हैं। जैसे यदि रोगी ,डाक्टर द्वारा दी गई सलाह को स्वीकार कर उसका पालन करता है तो यह सामाजिक रूप से आश्रित प्रभाव होगा तथा यह प्रभाव स्थायी होगा। अर्थात डाक्टर की अनुपस्थिति में उसके निदशों का अनुपालन होता रहेगा।

i. अनुरूपता , आज्ञाकारिता , तथा अनुपालन आदि सामाजिक प्रभाव के व्यावहारिक परिणाम हैं।
ii. सामाजिक प्रभाव 'धनात्मक' तथा ऋणात्मक दोनों हो सकते हैं।

- धनात्मक सामाजिक प्रभाव का तात्पर्य , प्रभावक अभिकर्ता की इच्छानुसार लक्षित व्यक्ति पर प्रभाव उत्पन्न हो। जैसे शिक्षक छात्र को यह कहते हैं कि उन्हे गृहकार्य करके कल दिखाना होगा। यदि छात्र ऐसा अनुपालन करते हैं तो यह धनात्मक सामाजिक प्रभाव होगा । धनात्मक सामाजिक प्रभाव की विशेषता यह होती है कि इसमें व्यक्ति सामाजिक व्यवस्था के नियमों के अनुरूप व्यवहार करता है।
- ऋणात्मक सामाजिक प्रभाव के अन्तर्गत लक्षित व्यक्ति प्रभावक अभिकर्ता द्वारा किये गये प्रबलों के विपरीत , व्यवहार करता है । इस तरह से सामाजिक प्रभाव के विपरीत होने पर व्यक्ति विपरीत व्यवहार करके विचलित हो जाता है।
- धमाका प्रभाव कभी कभी सामाजिक प्रभाव डालने के कारण व्यक्ति में विपरीत प्रभाव पहले से भी अधिक प्रबल हो जाता है। इसे समाज मनोवैज्ञानिकांे ने धमाका प्रभाव कहा है।

iii. सामाजिक प्रभाव का स्वरूप सामाजिक शक्तियों के श्रोतों या आधारों द्वारा निर्धारित होती है। रवेन तथा रूबिन (1983) के अनुसार ''पुरस्कार , अवपीड़न , विशेषज्ञता , संदर्भ , तथा आत्मीकरण वैधता एवं सूचना आदि सामाजिक प्रभाव के छः आधार हैं।

iv. सामाजिक प्रभाव व्यक्ति के व्यवहार को प्रभावित करने वाला स्वतंत्र परिवर्त्य है।

v. सामाजिक प्रभाव , प्रभावक व्यक्ति की सामाजिक शक्ति से प्रभावित होता है अर्थात अधिक शक्तियुक्त व्यक्ति का प्रभाव अधिक और कम शक्तियुक्त व्यक्ति का प्रभाव कम पड़ता है।

vi. सामाजिक प्रभाव प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से भी घटित हो सकता है।

vii. प्रभावक व्यक्ति ,सामाजिक प्रभाव का प्रदर्शन किसी निश्चित इरादे या बिना इरादे से भी कर सकता है।

11.5 सामाजिक प्रभाव प्रक्रिया के अवयव

i. लक्ष्य क्रिया (Target Act)

ii. लक्ष्य व्यक्ति (Target Person)

iii. लक्ष्य व्यक्ति एवं अन्य व्यक्तियों में सम्बन्ध (Relation between target person and other persons)

iv. लक्ष्य क्रिया का सामाजिक परिवेश (Social Context of Target Act)

11.5.1 लक्ष्य क्रिया

लक्ष्य क्रिया का आशय उस कार्य या व्यवहार से है जो प्रभावित होने वाले व्यक्ति ;लक्षित व्यक्ति द्ध को करना होता है। इस प्रकार जब कोई प्रभावक व्यक्ति किसी लक्षित व्यक्ति को प्रभावित करके उससे अपेक्षित व्यवहार कराता है या वैसा करने के लिये तत्पर कर लेता है तो उसे ही लक्ष्य क्रिया कहा जाता है। किसी विक्रेता द्वारा ग्राहक को प्रभावित करके सामान की बिक्री कर लेना या नेता द्वारा मतदाताओं को अपने पक्ष में मतदान करने के लिये तैयार कर लेना या किसी की अभिवृत्ति परिवर्तित करना आदि लक्ष्य क्रिया के उदाहरण हैं।

11.5.2 लक्ष्य व्यक्ति

सामाजिक प्रभाव की प्रक्रिया में प्रभावक व्यक्ति समूह या संगठन जिसको प्रभावित करने का लक्ष्य बनाता है उसे लक्ष्य व्यक्ति कहते है। जैसे - अपना अपराध स्वीकार करने वाला अपराधी , विक्रेता से प्रभावित ग्राहक , शिक्षक से प्रभावित होने वाला छात्र आदि लक्ष्य व्यक्ति के उदाहरण है।

11.5.3 लक्ष्य व्यक्ति एवं अन्य व्यक्तियों से संबन्ध

प्रभावक जितना शक्तियुक्त या प्रभावशाली होगा , लाभ एवं हानि के निर्धारण पर उसका उतना ही अधिक प्रभाव होगा, उसका लक्ष्य व्यक्ति पर उतना ही प्रभाव भी पड़ेगा। प्रभावक की विश्वसनीयता भी

लक्ष्यव्यक्ति को प्रभावित करती है। लक्ष्य व्यक्ति प्रभावक व्यक्ति पर कितना आ़िश्रत है अथवा प्रभावक का लक्ष्य व्यक्ति पर कितना प्रभाव है इनका भी प्रभाव ,लक्षित व्यक्ति के व्यवहार पर पड़ता है।

11.5.4 लक्ष्य क्रिया का सामाजिक परिवेश

सामाजिक परिवेश का सीधा असर सामाजिक प्रभाव प्रक्रिया को प्रभावी बनाने में दिखाई देता है। जैसे - किसी कार्य को सामाजिक स्वीकृति प्राप्त है तो व्यक्ति उसको करने में संकोच नहीं करेगा , अन्यथा वह उसे नहीं करेगा। ड्रग लेने वालों को उसके कुपरिणामों की जानकारी देकर मादक पदार्थों के सेवन से रोकने का प्रयास किया जा सकता है। किसी कार्य को करने के लिये अकेले में प्रतिबद्धता करायी जाये तो अपेक्षाकृत उसका प्रभाव कम पड़ेगा ,परन्तु यदि उस व्यक्ति से सामूहिक रूप में वचनबद्धता करायी जाये तो उसका प्रभाव अधिक पड़ेगा। सामाजिक प्रभाव, संभावित परिस्थिति पर भी निर्भर करता है।

जैसे-यदि कोई शिक्षक किसी छात्र पर गृह कार्य पूरा करने के लिये बल देता है तो वह इसे वैध मानकर स्वीकार कर लेगा। इसके विपरीत बाल छोटा कराने , दाढ़ी नहीं रखने या फिल्म कम देखने की बात को अप्रत्याशित या अवैध मानकर उसे अस्वीकार कर सकता है। प्रभावक एवं प्रभावित व्यक्तियों में यदि कोई आपसी सहमति अथवा सामाजिक संविदा है तो इससे उनके व्यवहार प्रभावित होंगे। जैसे दो मित्र प्रायः मिलते जुलते रहने की आशा करते हैं ऐसा न होने पर वे परेशान हो जाते हैं।

11.5.5. सामाजिक प्रभाव का मॉडल

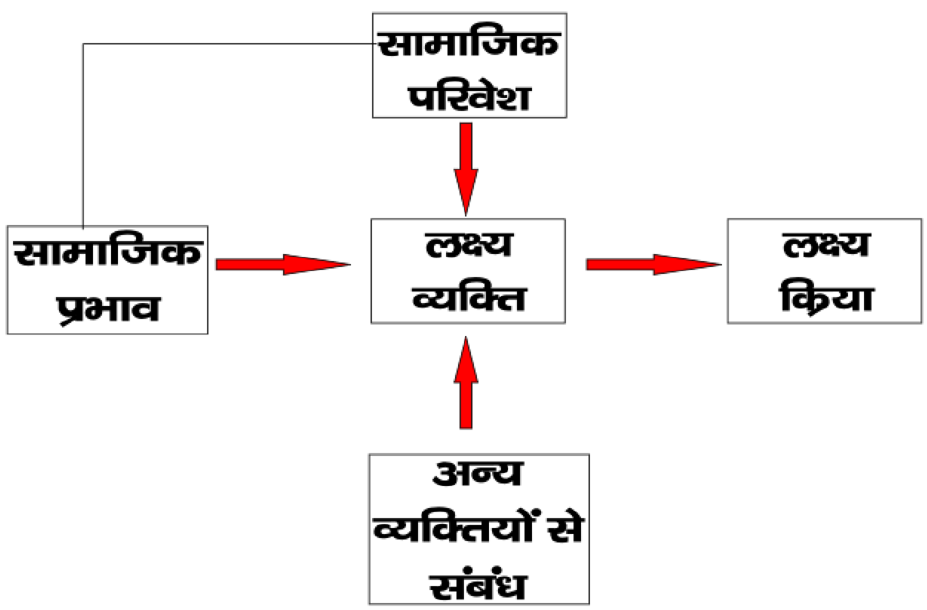

11.6. सामाजिक प्रभाव के प्रकार

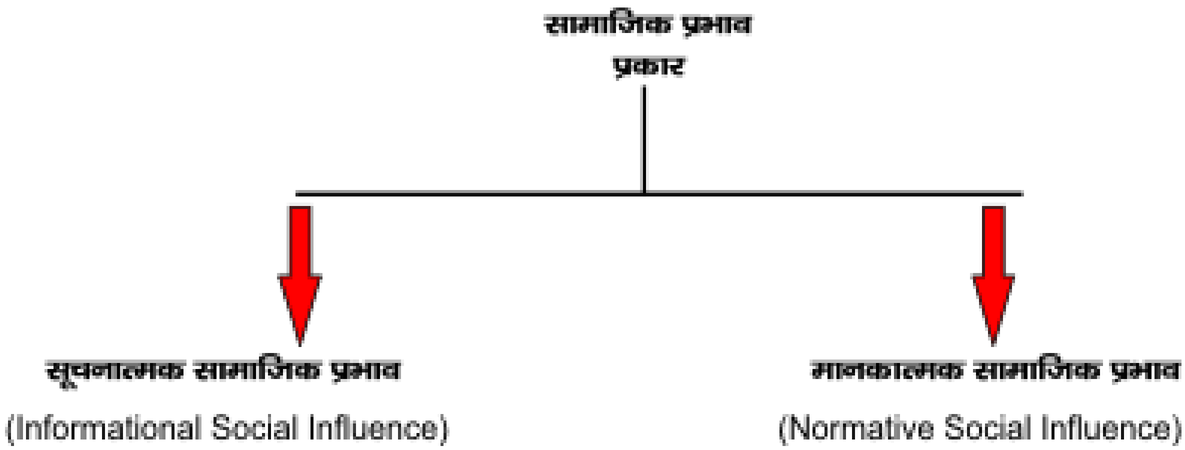

i. सूचनात्मक सामाजिक प्रभाव (**Informational Social Influence**)
ii. मानकात्मक सामाजिक प्रभाव (**Normative Social Influence**)

11.6.1 सूचनात्मक सामाजिक प्रभाव

यदि कोई व्यक्ति किसी अन्य व्यक्ति या स्रोत से प्राप्त सूचना के आधार पर अपने व्यवहार , विचार ,कार्य या अभिवृत्ति में परिवर्तन करता है तो इसे सूचनात्मक सामाजिक प्रभाव कहते हैं। सूचनात्मक सामाजिक प्रभाव व्यक्ति में सामाजिक वास्तविकताओं के बारे में सही या वैध जानकारी प्राप्त करने की इच्छा के फलस्वरूप उत्पन्न होता है। जैसे - यदि कोई विश्वसनीय व्यक्ति यह सूचना देता है कि कल भूकम्प आ सकता है और इससे प्रभावित होकर यदि दूसरा व्यक्ति मकान छोड़कर किसी मैदान में बसेरा कर लेता है , तो यह प्रभाव सूचनात्मक सामाजिक प्रभाव कहा जायेगा।

11.6.2. मानकात्मक सामाजिक प्रभाव

यदि कोई व्यक्ति सामाजिक प्रशंसा , पुरस्कार , लाभ पाने के प्रयास में अथवा किसी कष्ट या असफलता से बचने के लिये किसी के सुझाव को स्वीकार करके तदनुसार व्यवहार करता है तो उसे मानकीय सामाजिक प्रभाव कहते हैं। जैसे - परीक्षा में असफल हो जाने पर विद्यार्थी अपने माता पिता का पढाई से संबन्धित प्रत्येक सुझाव को तुरंत मान लेता है क्योंकि वह समझता है कि ऐसा करने से वह माता पिता की फटकार से बच जायेगा।

11.7 अन्तर्वैयक्तिक आकर्षण के सिद्धान्त

अन्तर्वैयक्तिक आकर्षण के अर्थ एवं स्वरूप

परस्पर एक दूसरे के प्रति आकर्षित होना ही अन्तर्वैयक्तिक आकर्षण है। दूसरे के प्रति खिंचाव को आकर्षण कहा जाता है। समाज मनोविज्ञान में आकर्षण का अर्थ पसंदगी या नापसंदगी की एक मनोवृत्ति (Attitude) से होती है। समाज के व्यक्ति आपस में एक दूसरे को पसंद नापसंद बहुधा अन्तर्वैयक्तिक आकर्षण के कारण ही करते हैं। यह सामाजिक अन्तः क्रियाओं का एक मुख्य आधार है। इसके कारण ही लोग एक दूसरे के समीप आते हैं , मित्रता स्थापित होती है और पारस्परिक सहायता का व्यवहार प्रदर्शित होता है। इसके अभाव में लोगों में दूरी , आशंका ,घृणा एवं विकर्षण बढ़ता है। इसके बगैर सामाजिक जीवन नीरस हो जाता है। यह एक अनुकूल या रचनात्मक अन्तःक्रिया है।

बैरोन तथा वर्न (1988) के अनुसार - ' अन्तर्वैयक्तिक आकर्षण से तात्पर्य "दूसरों के प्रति हमारी मनोवृत्ति से होता है। इस तरह की मनोवृत्ति अस्वीकारात्मक - स्वीकारात्मक विमा जो घृणा से प्रेम तक प्रसारित होती है , में सुसज्जित होती है"। इस परिभाषा के विश्लेषण से अन्तर्वैयक्तिक आकर्षण के स्वरूप का निम्नवत पता चलता है।

i. अन्तर्वैयक्तिक आकर्षण दूसरे के प्रति एक तरह की हमारी मनोवृत्ति होती है।
ii. मनोवृत्ति के अनुरूप अन्तर्वैयक्तिक आकर्षण स्वीकारात्मक या धनात्मक तथा अस्वीकारात्मक या ऋणात्मक कुछ भी हो सकता है।

व्यक्ति जब किसी लक्षित व्यक्ति के प्रति आकृष्ट होता है तो इसका मतलब हुआ कि वह लक्षित व्यक्ति के प्रति धनात्मक मनोवृत्ति विकसित करता है। तथा वह उसके प्रति प्रेम भाव दिखलायेगा। जब प्रभावक , लक्षित व्यक्ति के प्रति ऋणात्मक या निषेधात्मक मनोवृत्ति विकसित कर लेता है। इससे परस्पर घृणा का भाव उत्पन्न होता है। लोगों के आकर्षण संबन्धों का निर्धारण अन्तर्वैयक्तिक मूल्यांकनों की दिशा (धनात्मक या ऋणात्मक) और तीव्रता कम या अधिक के आधार पर होती है।

अन्तर्वैयक्तिक आकर्षण के प्रमुख सिद्धांत

अन्तर्वैयक्तिक आकर्षण की व्याख्या के लिए समाज मनोवैज्ञानिकों ने कई सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया है। जिसमें निम्न लिखित प्रमुख हैं:-

- समानता या संतुलन सिद्धांत (Similarity or balance theory)
- पुनर्बलन सिद्धांत (Reinforcement Theory)
- विनिमय सिद्धांत (Exchange Theory)
- समदृष्टि सिद्धांत (Equity Theory)
- पूरक आवश्यकता सिद्धांत (Complimentary Need Theory)

i. **समानता या संतुलन सिद्धांत (Similarity or Balance Theory) -** स्तुलन सिद्धांत का प्रतिपादन हाइडर (1946,1958) द्वारा किया गया। हाइडर के विचारों से प्रभावित होकर न्यूकाम्ब (1956, 1961) ने समानता सिद्धांत का प्रतिपादन किया। न्यूकाम्ब के सिद्धांत को ABX सिद्धांत के नाम से भी जाना जाता है। यह एक प्रमुख संज्ञानात्मक सिद्धांत (Cognitive Theory) है।
मान्यता के आधार:- संज्ञानात्मक समानता या संज्ञानात्मक संतुलन ही अन्तःवैयक्तिक आकर्षण का आधार है। जिन व्यक्तियों में संज्ञानात्मक समानता या संतुलन पाया जाता है , उनके प्रत्यक्षीकरण और अभिवृत्तियां समान और धनात्मक होती हैं। संज्ञानात्मक असमानता की स्थिति में उनकी अभिवृत्तियां ऋणात्मक भी हो सकती हैं।

प्रमुख मान्यताएं

- संज्ञानात्मक संतुलन या समानता का अर्थ है परस्पर आकर्षित होने वाले व्यक्तियों के विचारों एवं विश्वासों में संगति का होना।
- संज्ञानात्मक संतुलन में व्यक्ति का ध्यान आकृति पर होता है तथा इस व्यक्ति की आकृति के विभिन्न तत्वों में संतुलन का प्रत्यक्षीकरण होता है।
- संज्ञानात्मक संतुलन की स्थिति में व्यक्ति एक दूसरे के अनुरूप होते है और उनमें परस्पर में ल होता है।
- अद्ध जब व्यक्तियों की प्रकृति में में ल न होकर विषमता होती है तब असंतुलन की स्थिति दिखलाई देती है। इस अवस्था में विषमता के साथ साथ संज्ञानात्मक तनाव भी दिखाई देता है।

संतुलन सिद्धांत की व्याख्या **ABX** के रूप में:-

A = वह व्यक्ति जो आकर्षित हो रहा है।

B= वह व्यक्ति जो दूसरे व्यक्तियों को आकर्षित कर रहा है।

X = सामान्य तथ्य, वस्तु या विचार या व्यक्ति।

जब A,B,X, में परस्पर समानता पायी जाती है तब संतुलन की स्थिति रहती है। इस स्थिति में व्यक्ति एक दूसरे की ओर आकर्षित होते हैं। यह आकर्षण दो व्यक्तियों के बीच हो या तीन व्यक्तियों के बीच हो या समूह में तीन से अधिक व्यक्ति हों। व्यक्ति के विचारों , भावनाओं और अभिवृत्तियों में परस्पर जितनी ही समानता या संतुलन होता है उनमें अन्तर्वैयक्तिक आकर्षण उतना ही अधिक पाया जाता है।

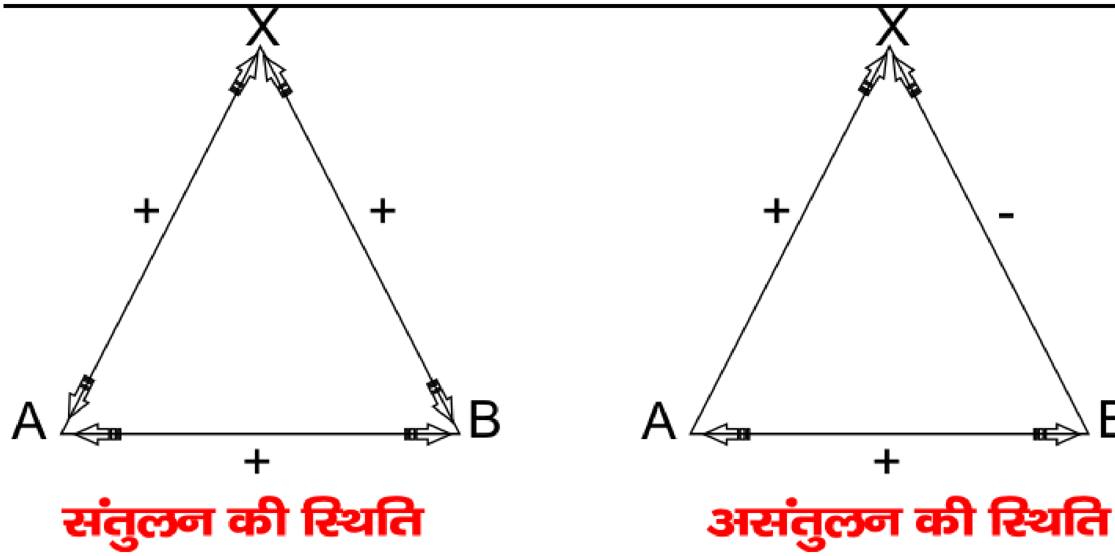

तीनों में से किसी एक की भी भिन्नता या असमानता असंतुलन उत्पन्न कर देती है। इस स्थिति में परस्पर आकर्षण की कमी हो जाती है। व्यक्तियों में आकर्षण के स्थान पर तनाव, चिंता , और कुण्ठा दिखाई देने लगती है।

ABX **सिद्धान्त में असंतुलित स्थिति से बचने के उपाय-**

i. यदि A, B के गुण समान हैं और X के गुण A और B के गुणों से पूर्णतया भिन्न हैं । तो A, B दोनों ही X के असमान गुणों का प्रव्यक्षीकरण न करें। ऐसा करने से असंतुलन स्थिति से बचा जा सकता है।
ii. A और B व्यक्ति X के असमान गुणों या विशेषताओं को स्वयं में अपना लें तभी A, B और X में असंतुलन की स्थिति समाप्त हो जायेगी।
iii. व्यक्ति X अपने गुणों को A और B के अनुरूप कर लें तो संतुलन की स्थिति बन जाती है। फलतः परस्पर आकर्षण उत्पन्न होता है।

संतुलन सिद्धांत की उपयोगिता

i. संतुलन बनाने की किसी विधि को अपनाकर असंतुलन से बचा जा सकता है और समूह को टूटने से बचाया जा सकता है।
ii. न्यूकाम्ब के सिद्धान्त द्वारा समानता आधारित अन्तर्वैयक्तिक आकर्षण की व्याख्या संतोषप्रद ढंग से हो जाती है।

संतुलन सिद्धांत की सीमाएं

i. अन्तर्वैयक्तिक आकर्षण के लिए संतुलन सिद्धान्त में अभिवृत्तियों में समानता को आवश्यक माना जाता हैं , परन्तु कभी कभी समान अभिवृत्तियाँ ईर्ष्या एवं प्रतिस्पर्धा का कारण बन जाती हैं।

जैसे कोई वस्तु दोनों व्यक्तियों (A,B) को पसंद है। दोनों उसे प्राप्त करना चाहते हैं। ऐसा होने पर परस्पर आकर्षण के स्थान पर तनाव बढ़ सकता है।

ii. यदि लोगों के बीच भावनात्मक संबन्ध है तो उनमें आकर्षण भी होगा परन्तु उनमें किसी लक्ष्य या कार्य के लिये प्रतिस्पर्धा है तो परस्पर आकर्षण नहीं होगा। ऐसा होने पर यह सिद्धान्त आकर्षण की व्याख्या नहीं कर सकेगा। मोरान (1996) लेस्टर 1965)।

iii. यह सिद्धान्त नापसंदगी की व्याख्या नहीं कर पाता (Devol,1959) ऐसी दशा में संतुलन कैसे स्थापित होगा , इसकी समुचित व्याख्या न्यूकाम्ब के सिद्धांत द्वारा नहीं हो पाती हैं।

ii. **पुनर्बलन या पुरस्कार सिद्धान्त-**मायर्स (1988) के अनुसार आकर्षण के पुरस्कार सिद्धांत का आशय यह है कि हम उन्हें पसंद करते हैं , जिनका व्यवहार हमारे लिये सुखद या पुरस्कार उपलब्ध कराने वाली घटना से संबन्धित होता है। इससे स्पष्ट है कि हमें जिनसे पुरस्कार या संतुष्टि प्राप्त होती है या जो संतुष्टि के माध्यम होते हैं उनके प्रति पसंद स्थापित हो जाती है और प्रबलनों में वृद्धि के परिणाम स्वरूप आकर्षण में भी वृद्धि हो जाती है।

- **गौण पुनर्बलन सिद्धान्त-**लाट्ट तथा लाट्ट (1974) का मत है कि पुनर्बलन नियम के अनुसार जब व्यक्ति को किसी व्यक्ति से पुरस्कार प्राप्त होता है तो पुरस्कार पाने वाला व्यक्ति पुरस्कार दाता के प्रति आकर्षित हो जाता है । मानव के संबन्ध में पुरस्कार से तात्पर्य आदर, सम्मान , धन , सामग्री सेवा या श्र्रम सम्बन्धी सहायता , प्रेम ,स्नेह , आदि से होता है। प्रबलन प्राथमिक भी हो सकता है तथा गौण भी हो सकता है। पुनर्बलन के समय घटित होने वाली अनुक्रियाएं जैसे किसी व्यक्ति द्वारा मुस्कुरा देना , शाबासी देना आदि प्राथमिक प्रबलन के अन्तर्गत आते हैं। ये अनुक्रियाऐं उपस्थित व्यक्ति के प्रति अनुबंधित हो जाती हैं। इसके विपरीत यदि कोई व्यक्ति अन्य व्यक्तियों की उपस्थिति में दण्ड पाता है, तो उसकी विकर्षणात्मक अनुक्रियाऐं उन अन्य व्यक्तियों के प्रति भी अनुबंधित हो जाती है जो अक्सर उस दण्डनात्मक परिस्थिति में उपस्थित रहते हैं । इससे स्पष्ट हुआ कि अन्तर्वैयक्तिक आकर्षण पुनर्बलन या प्रबलन पर आधारित अनुबंधित अनुक्रिया होती है। लाट्ट ने इस सिद्धान्त के समर्थन में किये गये प्रयोगों के आधार पर यह भी बतलाया है कि तात्कालिक पुनर्बलन के बाद आकर्षण अधिक तथा विलम्बित पुनर्बलन के बाद आकर्षण कम होता है। वैसे प्रबलन आकर्षण का स्वयं एक मुख्य आधार है। यह एक सामान्य अनुभव की बात है , इसे सिद्धान्त का नाम देना आवश्यक नहीं है। साधारण आलोचनाओं के बावजूद भी इस सिद्धान्त की वैधता आज भी प्रासंगिक है।
- **प्रबलन अन्तःभाव सिद्धान्त-**बाइरने इत्यादि (Byrne and Clore 1970,1974) ने यह मत व्यक्त किया कि किसी के प्रति आकर्षण अनुभव किया जायेगा या विकर्षण , यह इस बात पर निर्भर करता है कि उसके प्रति हमारी भावना कैसी है। किसी से पुरस्कार या प्रशंसा प्राप्त होने पर उसके प्रति अनुकूल भावना पैदा होती है और दण्ड या आलोचना प्राप्त होने पर प्रतिकूल भावना पैदा होती है। प्रथम दशा में आकर्षण और द्वितीय दशा में विकर्षण अनुभव किया जायेगा। बाइरने तथा उनके सहयोगियों द्वारा प्रस्तुत कुछ अभिग्रह निम्नवत हैं:-

i. धनात्मक पुरस्कार प्रदान करने वाले व्यक्ति के प्रति अनुकूल एवं निषेधात्मक व्यवहार करने वालों के प्रति प्रतिकूल प्रभाव उत्पन्न होते हैं।
ii. पुरस्कार या प्रशंसा प्राप्त होने की दशा में उदीप्त व्यक्ति या प्रयोज्य वस्तु की तरफ अग्रसर होता है और दण्ड या आलोचना की दशा में उसका परिहार करता है।
iii. किसी वस्तु के प्रति कितना आकर्षण या विकर्षण अनुभव किया जायेगा , यह पुरस्कार या दण्ड की मात्रा पर निर्भर करता है।
iv. अनुबंधन (conditioned) के आधार पर तटस्थ वस्तुओं व्यक्तियों के प्रति भी आकर्षण या विकर्षण का भाव पैदा किया जा सकता है।
v. सुखद भाव उत्पन्न होने पर उद्दीपक व्यक्ति के प्रति आकर्षण पैदा होता है और दुखद भाव उत्पन्न होने पर विकर्षण पैदा होता है। (May and Hamilton 1974, Griphitt and white 1971)

उदाहरण के लिए कल्पना कीजिए कि घर से निकलते ही कोई अजनबी व्यक्ति आपको तमाचा मार कर चला जाय , तो इस स्थिति में आपके अन्दर उस व्यक्ति के लिए ऋणात्मक भावना उत्पन्न होगी। इस स्थिति में यदि आपसे उस अजनबी का मूल्यांकन करने को कहा जाये तब आप यही कहेंगे कि उस अजनबी व्यक्ति का अकारण तमाचा मारना अच्छी बात नहीं है। मूल्यांकन में आप कहेंगे कि अजनबी व्यक्ति आपको तनिक भी पसंद नहीं है , इस घटना को देखने वाला अन्य समझदार व्यक्ति उस अजनबी को पसंद नहीं करेगा और उसका मूल्यांकन ऋणात्मक अन्तःभाव या भावनाओं के साथ ऋणात्मक रूप से करेगा।

कल्पना कीजिए कि दूसरे दिन जब आप अपने घर से बाहर निकल रहे हों तब एक अजनबी व्यक्ति आपको सिनेमा देखने के लिए फ्री्र पास दे जाये। इस अवस्था में इस अजनबी व्यक्ति के लिये आपके अन्दर धनात्मक भावना उत्पन्न होगी। यदि आपसे इस अजनबी व्यक्ति का मूल्यांकन करने को कहा जाये तो निश्चय ही अपनी सुखद अनुभूतियों के कारण आप उस अजनबी व्यक्ति को बहुत अच्छा कहेंगे।

पुनर्बलन सिद्धान्त की सीमायें:-

यदि धनात्मक भावना ही आकर्षण पैदा कर सकती है , तो दुखद दशाओं में आकर्षण नहीं उत्पन्न होना चाहिये परन्तु कभी कभी ऐसा होता है कि किसी दुखद परिस्थिति में सहभागियों में परस्पर आकर्षण बढ़ जाता हैं। ऐसे निष्कर्ष इस सिद्धान्त की महत्ता सीमित कर देते हैं। फिर भी यह मानना ही पड़ेगा कि आकर्षण की अनुभूति में भावना का विशेष महत्व है।

iii. विनिमय सिद्धान्त (**Exchange Theory**) - निमय सिद्धान्त के आधार पर अनेक मनोवैज्ञानिकों (Thibant and Kelley 1959,Homans 1961, Blau1964) ने अन्तर्वैयक्तिक और सामाजिक अन्तःक्रियाओं की व्याख्या की है। विनिमय सिद्धान्त में पुरस्कार लागत या व्यय जैसे पुर्नबलन प्रत्ययों का प्रयोग अन्तः वैयक्तिक आकर्षण की व्याख्या के लिये किया जाता है।

मायर्स (1988) ने लिखा है "सामाजिक विनिमय सिद्धान्त "का आशय है कि मानव अन्तर्क्रियाएं पारस्परिक आदान प्रदान हैं जिसमें व्यक्ति लागत या निवेश की तुलना में अधिकाधिक पुरस्कार प्राप्त करना चाहता है"। Myers

व्यक्ति प्रय़त्न परिश्रम तथा लागत कम करना चाहता है और लाभ या पुरस्कार अधिक प्राप्त करना चाहता है। इसे ही सामाजिक विनिमय का सिद्धांत कहा जाता है इससे स्पष्ट है कि यदि कोई सामाजिक संबन्ध हमारे लिये अपेक्षाकृत अधिक सुखदायी या लाभदायक हैं और हमें उसमें श्रम अथवा अर्थ का निवेश करना पड़ता है तो उसे हम जारी रखना पसन्द करेंगे। परंतु जो संबन्ध अधिक बोरियत वाले , द्वन्द्वात्मक और अपव्ययी हैं उन्हें हम जारी नहीं रखना चाहते हैं। (Burgess and Huston 1979, Kelly 1979, Rusbult 1980)

विनिमय सिद्धांत के मूल सम्प्रत्यय

a. **पुरस्कार (Reward)** - ऐसा कार्य ,व्यवहार या घटना जिससे किसी व्यक्ति की आवश्यकता की पूर्ति होती है , व्यक्ति की अभिवृत्ति की पुष्टि होती है , तथा असंवादिता का समाधान होता है या नकारात्मक अंतर्नोद (Negative Drive) में कमी होती है , पुरस्कार कहा जाता है।
b. **व्यय या लागत (Cost) -** लागत एक तरह की दण्डात्मक अनुभूति है, किसी के प्रति आकर्षित होने में किसी व्यक्ति को जो कठिनाई होती है उसे लागत या व्यय का नाम दिया जाता है। जैसे चिंता , थकान , परेशानी , तनाव एवं श्रम आदि को लागत के रूप में देखा जाता है। इसका अर्थ बहुत व्यापक होता है।
c. **प्रतिफल या परिणाम (Outcome) -** अन्तर्वैक्तिक आकर्षण की परिस्थिति में प्राप्त पुरस्कार (R) और लागत (C) का अन्तर परिणाम कहा जाता है। पुरस्कार - लागत = प्रतिफल अन्तर धनात्मक होने पर व्यक्ति लाभ (Profit)) की स्थिति में और अन्तर - ऋणात्मक होने पर हानि (loss) की स्थिति में होता है। लाभ की दशा में आकर्षण और हानि की दशा में विकर्षण अनुभव किया जायेगा। लाभ की दशा में यह आवश्यक नहीं है कि वह दूसरे व्यक्ति को पसंद करेगा ही या उसके प्रति आकर्षित ही होगा। सचमुच में आकर्षण उत्पन्न होने के लिए प्रतिफल को प्रत्याशा (Expectation) के न्यूनतम स्तर से ऊँचा होना चाहिए।
d. **तुलना स्तर (Comparison level) -** तुलना स्तर से तात्पर्य उस न्यूनतम प्रत्याशा स्तर से होता है जिसके अनुरूप एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति के साथ अन्तःक्रिया करने पर लाभ की उम्मीद करता है। इस प्रकार के लाभ का स्तर तुलना स्तर से जितना ही अधिक ऊपर होगा उतना ही अधिक आकर्षण अनुभव किया जायेगा। एक ही परिस्थिति में भिन्न भिन्न लोगों की प्रत्याशा भिन्न भिन्न होती है। ऐसा भी देखा जाता है कि कुछ लोग पुरस्कार को , तो कुछ लोग लागत को अधिक महत्व देते हैं। व्यक्ति के पुरस्कार तथा व्यय में परिवर्तन होने से उसके परिणाम में भी परिवर्तन हो जाता है।

विनिमय सिद्धांत के मौलिक अभिग्रह (Myers 1988)

- सामाजिक सम्बन्ध या अन्तर्क्रिया पारस्परिक आदान प्रदान पर आधारित होती है।
- संतुष्टिदायक सम्बन्धों में आकर्षण अधिक और कष्टदायक तथा तटस्थ संबन्धों में आकर्षण कम अनुभव होता है।
- सामाजिक संबन्धों में सहभागियों के योगदान समान होने पर पारस्परिक आकर्षण अधिक अनुभव किया जाता है।
- कुछ संबन्धों की दशा में जैसे (प्रेम) व्यक्ति प्रतिफल की तुलना में योगदान अधिक भी कर सकता है।
- आकर्षण को स्थायित्व प्रदान करने के लिए अन्तर्क्रिया होती रहनी चाहिए।
- स्वभावतः व्यक्ति न्यूनतम निवेश या योगदान करके अधिकतम प्रतिफल प्राप्त करना चाहता है।
- एक जैसी ही परिस्थिति किसी को कम तो किसी को अधिक आकर्षक लग सकती है। अर्थात इस पर वैयक्तिक भिन्नताओं का प्रभाव भी पड़ता है।

विनिमय सिद्धान्त की उपयोगिता (Application of Exchange Theory) अन्य सिद्धांतों की तुलना में विनिमय सिद्धांत के द्वारा आकर्षण के विभिन्न पक्षों की व्याख्या सरलता से की जा सकती है।

a. समान विशेषता के व्यक्ति के साथ अन्तर्क्रिया सुखदायी होती है। अतः पारस्परिक आकर्षण में वृद्धि होती है। अतः विनिमय सिद्धान्त द्वारा अन्तर्वैक्तिक आकर्षण में समानता एवं पारस्परिक आकर्षण के महत्व को समझाया जा सकता है। जैसे एक धर्म , जाति, भाषा, एवं आयु। एक ही विद्यालय के लोगों में आपस में अन्तःक्रिया अधिक होती है।
b. विनिमय में भैातिक समीपता से पारस्परिक आकर्षण बढ़ता है। निकट एवं पड़ोस में रहने वाले लोगों में आकर्षण अधिक होता है। थोड़ी दूर रहने वाले लोगों के मूल्यों में भी समानता अधिक पायी जाती है। दूर रहने पर दिन प्रतिदिन के तनाव तथा ईर्ष्या से संबन्ध प्रभावित नहीं होते हैं तथा पारस्परिक आकर्षण बना रहता है।
c. विनिमय सिद्धांत द्वारा मित्रता की स्थापना तथा प्रेम आदि जैसे व्यवहारों की भी व्याख्या की जा सकती है। मित्रता एवं प्रेम की स्थापना शून्य स्थिति से प्रारम्भ होती है।

इससे अन्तर्क्रिया या किसी अन्य रूप में सूचना प्राप्त होने पर दोनों पक्षों में एक दूसरे के प्रति कुछ चेतना पैदा होती है। आकर्षण का अनुभव होगा परस्पर संबन्ध स्थापना का प्रयास होगा। फिर आकर्षण प्रगाढ़ होने लगेगा , मित्रता प्रगाढ़ हो जाती है। परिस्थितियां या अनुभव नकारात्मक होने पर आकर्षण घटता है।

विनिमय सिद्धान्त के दोष:-अनेक उपयोगिताओं के बाबजूद इस सिद्धान्त में कुछ कमियां हैं:

i. इस सिद्धान्त में आकषर्ण तथा संबन्धों की स्थापना में लागत व पुरस्कार एवं परिणाम को महत्व दिया जाता हैं। सामान्यतः इसी आधार पर संबन्ध स्थापित होते हैं परन्तु गहन प्रेम की स्थिति में

लाभ - हानि पर ध्यान नहीं दिया जाता है। इसी प्रकार सामुदायिक संबन्धों में यह बात देखने को नहीं मिलती हैं। (Myres 1985 Clark 1984)

ii. आकर्षित होने वाले व्यक्ति की लागत, पुरस्कार व परिणामों को आधार मान कर आकर्षण की व्याख्या की जाती है, दूसरे पक्ष पर उतना ध्यान नहीं दिया जाता है।

iv. साम्य या समदृष्टि सिद्धान्त (Equity Theory) - इस सिद्धान्त के प्रमुख समर्थक वास्टलर, वास्टलर तथा बर्सचीड (Wastler& Wastler & Berschid 1978) हैं। इसका आशय यह है कि किसी सामाजिक संबन्ध से लोगों को जो प्रतिफल या परिणाम (outcome) प्राप्त होता है वह उस संबन्ध के लिये दिये गये योगदान (Input) के अनुपात में होना चाहिए (Myers1988) । इससे स्पष्ट है कि अन्तर्वैयक्तिक आकर्षण , सामाजिक विनिमय (न्यूनतम निवेश अधिकतम लाभ) की प्रत्याशा से प्रभावित होता है और सामाजिक संबन्धों के सहयोगियों को चाहिए कि वे साम्य (Equity) को बनाये रखें । इससे संबन्धों में स्थायित्व तथा अन्तर्वैयक्तिक आकर्षण बना रहेगा।

अतः यदि A और B व्यक्तियों में अन्तः वैर्यक्तिक आकर्षण है तो निम्नलिखित शर्तें पूरी होनी चाहिए।

$$\frac{\text{A's outcomes}}{\text{A's inputs}} = \frac{\text{B's Outcomes}}{\text{B's input}}$$

इससे स्पष्ट है कि यदि दोनों पक्षों के योगदान निवेश और प्रतिफल या परिणाम समान है तो परस्पर आकर्षण की स्थिति बनी रहेगी। यदि लोग मनमाने ढंग से अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति का प्रयास करते हैं तो संबन्ध कमजोर पड़ने लगेगा और अन्तर्वैयक्तिक आकर्षण कम होता जायेगा। दोनो पक्षों के लागत तथा परिणाम में असमानता होने पर असंतुलन या असाम्य की अनुभूति होगी। इसका पारस्परिक आकर्षण पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ सकता है।

सिद्धांत के मुख्य अभिग्रह

i. यदि दोनों पक्षों (A एवं B) के लागत तथा परिणाम में समानता है तो संतुलन तथा आकर्षण बना रहेगा।

ii. मनमाने ढंग से इच्छाओं की पूर्ति करने से संबन्ध कमजोर पड़ता है और आकर्षण भी घटता है।

iii. असंतुलन उत्पन्न होने पर लोग अपने चिंतन में परिवर्तन करके संतुलन की स्थिति ला सकते हैं।

समालोचना:-साम्य सिद्धान्त को विनिमय सिद्धान्त का परिमार्जित रूप माना जाता है। इसकी अच्छाई यह है कि यह दोनों पक्षों (A , B) की लागत तथा परिणाम दोनों को आकर्षण के लिये आवश्यक मानता है। यह सिद्धान्त पुरस्कार तथा व्यय में संतुलन की बात तो अवश्य करता है परन्तु संतुलन के आदर्श बिन्दुओं का उल्लेख नहीं करता है।

सामाजिक जीवन में सदैव साम्य नहीं पाया जाता है फिर भी लोगो में संबन्ध किसी न किसी कारण से बना रहता है। जैसे दो व्यक्तियों के पुरस्कार तथा व्यय अनुपात में भिन्नता तो होती है परन्तु किसी अन्य व्यक्ति या व्यक्तियों के समूह से उन दोनों को समान मात्रा में धमकी मिल रही हो।

v. **पूरक आवश्यकता सिद्धान्त (Complementary NeedTheory) -** के अनुसार यदि लोग एक दूसरे की आवश्यकताओं के लिये पूरक व्यक्तियों के रूप में कार्य करते हैं तो उनमें परस्पर आकर्षण अधिक अनुभव किया जायेगा। ऐसी दशा में मित्रता परस्पर आकर्षण का आधार बनती है इसे संपूरकता आकर्षण परिकल्पना (Complementary attraction hypothesis) कहा जाता है।

मायर्स (1988) के अनुसार 'लोगों के संबन्धों में पायी जाने वाली यह ऐसी प्रवृत्ति है जिसके कारण लोग एक दूसरे की आवश्यकताओं (कमियों) को पूरा करने का प्रयास करते हैं। व्यक्ति उन व्यक्तियों के प्रति आकर्षण का अनुभव करता है जिनकी आवश्यकता भिन्न तो है परन्तु उनसे उनकी स्वयं की आवश्यकताओं की पूर्ति होती है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि पूरक आवश्यकता सिद्धांत विभिन्नता को पारस्परिक आकर्षण के लिये आवश्यक माना जाता है। जैसे स्त्री पुरूष में असमानता होने पर भी लैंगिक आवश्यकता के परस्पर पूरक होते हैं। इस लिए इनमें परस्पर आकर्षण देखने को मिलता है।

पूरक आवश्यकताओं का आकर्षण का आधार बनने के कारण:-

i. जब लोग एक दूसरे की आवश्यकताओं को पूरा करते हैं तो यह उनके लिये पुरस्कार का कार्य करता है इससे परस्पर आकर्षण बढ़ता है। जैसे एक व्यक्ति चापलूसी पसंद है और दूसरा उसके द्वारा अपना लक्ष्य प्राप्त करना चाहता है ,तो वह चापलूसी करके अपना लक्ष्य प्राप्त कर लेगा। इससे दोनों में प्रगाढ़ता बढ़ेगी।

ii. कोई व्यक्ति किसी ऐसी विशेषता या गुण वाले व्यक्ति ;Bद्ध के प्रति आकर्षित होता है जिसे प्राप्त करने की इच्छा उसे कभी हुई थी परन्तु परिस्थितिवश वह उसे प्राप्त करने में सफल नहीं हो सका था।

पूरक आवश्यकताओं के प्रकार

- **प्रथम प्रकार की संपूरकता-** यदि एक व्यक्ति की एक तरह की आवश्यकता अधिक प्रबल है (जैसे प्रभुत्व) दूसरे में यह आवश्यकता कम है तो ऐसे दो लोगों में परस्पर आकर्षण अधिक पाया जायेगा।
- **द्वितीय प्रकार की संपूरकता-** यदि एक व्यक्ति में एक तरह की आवश्यकता अधिक उच्च है (जैसे निर्भरता) और दूसरे व्यक्ति में किसी अन्य तरह की आवश्यउच्च है (जैसे स्नेह , प्यार , संबन्ध) तो उनमें पारस्परिक आकर्षण अधिक पाया जायेगा।

पूरक सिद्धान्त की सीमाएं (Limitation of complementarity Theory)

i. इसे व्यापक शोध समर्थन प्राप्त नहीं हुआ है और प्राप्त निष्कर्षों में एक रूपता नहीं है (Secord 1972)

ii. पूरक आवश्यकताओं की अपेक्षा समान आवश्यकताएं आकर्षण को अधिक प्रभावित करती हैं। (Secord and Muthard 1965)

iii. इसके सम्प्रत्यय (Concepts) एवं विधियाँ भी अपेक्षाकृत कम स्पष्ट हैं जिसका निष्कर्षों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ना स्वाभाविक है। इस प्रकार पूरक आवश्यकता सिद्धान्त अन्तर्वैयक्तिक आकर्षण की व्याख्या करने में पूर्णतः सक्षम नहीं है।

अभ्यास प्रश्न

1. सामाजिक प्रभाव से तात्पर्य व्यक्ति की मनोवृत्ति तथा व्यवहार में ______ से होता हैं , जो ______द्वारा उत्पन्न किया जाता है।
2. सामाजिक प्रभाव सर्वदा _________नहीं होता हैं।
3. सामाजिक प्रभाव _________ तथा _________दोनों हो सकते हैं।
4. सामाजिक प्रभाव की प्रक्रिया में प्रभाव डालने को _________कहते हैं।
5. सामाजिक प्रभाव प्रक्रिया को प्रभावी बनाने में _________का सीधा असर पड़ता है।
6. किसी के प्रति स्नेह या अनुकूलता को _________कहते हैं।
7. _________सामाजिक अन्तःक्रियाओं का एक मुख्य आधार है।
8. लोगों के प्रतिफलों तथा योगदानों के आधार पर आकर्षण की व्याख्या ______से की जाती है।
9. सामाजिक संबन्धों से ‘‘कुछ न्यूनतम् प्रत्याशा ‘‘को _________कहा जाता है।
10. पारस्परिक समानता पसन्दगी _________उत्पन्न करती है।

11.8 सारांश

- सामाजिक प्रभाव से तात्पर्य व्यक्ति की मनोवृत्ति तथा व्यवहार में परिवर्तन से होता है। जो अन्य व्यक्ति या व्यक्तियों द्वारा उत्पन्न किया जाता है।
- जो व्यक्ति या व्यक्तियों का समूह दूसरों पर प्रभाव डालता है उसे ‘प्रभावक अभिकर्ता ‘ कहते हैं।
- प्रभावित होने वाले व्यक्ति या व्यक्तियों के समूह को लक्षित व्यक्ति कहते हैं।
- प्रभावित होने वाले ‘ लक्षित व्यक्ति द्वारा कराये जाने वाले कार्य/व्यवहार को लक्ष्य क्रिया कहते हैं।
- सामाजिक परिवेश का सीधा असर सामाजिक प्रभाव प्रक्रिया को प्रभावी बनाने में दिखाई देता है।

- किसी अन्य व्यक्ति या स्रोत से प्राप्त सूचना के आधार पर , व्यवहार , कार्य , अभिवृत्ति में परिवर्तन 'सूचनात्मक सामाजिक प्रभाव ' कहलाता है।
- सामाजिक प्रशंसा , पुरस्कार , लाभ पाने अथवा किसी कष्ट या असफलता से बचने के लिये किसी के सुझाव को स्वीकार कर व्यवहार करना ' मानकात्मक सामाजिक प्रभाव ' कहलाता है।
- परस्पर एक दूसरे के प्रति आकर्षित होना ही अन्तर्वैयक्तिक आकर्षण है। किसी के प्रति स्नेह या अनुकूलता को अन्तर्वैयक्तिक आकर्षण कहते है। अन्तर्वैयक्तिक आकर्षण सामाजिक अन्तःक्रियाओं का आधार है।
- अन्तर्वैयक्तिक आकर्षण की व्याख्या के लिये समाज मनोवैज्ञानिकों ने , समानता या संतुलन सिद्धान्त पुनर्बलन सिद्धांत , विनिमय सिद्धांत , साम्य या समदृष्टि सिद्धान्त एवं पूरक आवश्यकता सिद्धांतों का प्रतिपादन किया है।
- व्यक्तियों के विचारों , भावनाओं और अभिवृत्तियों में परस्पर जितनी ही समानता/संतुलन होता है उनमें अन्तर्वैयक्तिक आकर्षण उतना ही अधिक पाया जाता है। इनमें किसी के भी भिन्न होने पर असंतुलन उत्पन्न होता है। इस स्थिति में उत्पन्न विकर्षण के कारण तनाव ,चिन्ता ,और कुण्ठा उत्पन्न होने लगती है।
- मायर्स (1988) के अनुसार पारस्परिक समानता पसंदगी पुनर्बलन उत्पन्न करती है।
- लाट्ट ने यह भी बताया कि तात्कालिक पुनर्बलन के बाद आकर्षण अधिक तथा विलम्बित पुनर्बलन के बाद आकर्षण कम हो जाता है।
- मायर्स (1988) के अनुसार मानव अन्तःक्रियाए , पारस्परिक आदान प्रदान है , जिसमें व्यक्ति लागत या निवेश की तुलना में अधिकाधिक पुरस्कार प्राप्त करना चाहता है। यही सामाजिक विनिमय सिद्धान्त का आशय है।
- साम्य या समदृष्टि सिद्धान्त का प्रतिपादन (Wastler,Wastler & Berschid (1978) ने किया। इसका आशय यह है कि किसी सामाजिक संबन्ध से लोगों को जो प्रतिफल (Outcomes) प्राप्त होता है वह इस संबन्ध के लिए दिये गये योगदान (input) के अनुपात में होना चाहिए।
- विन्च (Winch 1958) के अनुसार यदि लोग एक दूसरे की आवश्यकताओं के लिए पूरक व्यक्तियों के रूप में कार्य करते हैं तो उनमें परस्पर आकर्षण अधिक अनुभव किया जाता है। ऐसी दशा में भिन्नता परस्पर आकर्षण का आधार बनती है।

11.9 शब्दावली

1. **लक्ष्य क्रिया-** सामाजिक व्यवहार प्रक्रिया में कार्य या व्यवहार जो प्रभावित व्यक्ति को करना होता है
2. **लक्ष्य व्यक्ति-** सामाजिक प्रभाव प्रक्रिया में जो व्यक्ति प्रभावित होता है

3. **प्रभावक अभिकर्ता-** सामाजिक प्रभाव प्रक्रिया में प्रभाव डालने वाला व्यक्ति
4. **सामाजिक परिवेश-** सामाजिक स्वीकृति प्राप्त क्रिया-कलाप रीति रिवाज , प्रथा , वातावरण आदि
5. **मानकात्मक-** प्रशंसा , पुरस्कार , लाभ / आदि अर्जित करने का मापदण्ड
6. **अन्तर्वैयक्तिक -** एक व्यक्ति का दूसरे व्यक्ति से संबन्ध
7. **संतुलन-** समानता
8. **पुनर्बलन-** प्रबलन-पुरस्कार, प्रोत्साहन
9. **अन्त:भाव-** किसी के प्रति आन्तरिक भावना
10. **विनिमय -** पारस्परिक आदान प्रदान
11. **समदृष्टि-** साम्य , समानता
12. **पूरक-** कमी को पूर्ण करने वाला

11.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. परिवर्तन , अन्य व्यक्ति या व्यक्तियों
2. स्थायी
3. धनात्मक , ऋणात्मक
4. प्रभावक अभिकर्ता
5. सामाजिक परिवेश
6. अन्तर्वैयक्तिक आकर्षण
7. अन्तर्वैयक्तिक आकर्षण
8. साम्य सिद्धान्त
9. तुलना स्तर ।
10. प्रबलन

11.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. सिंह आर. एन. - 2007-2008 आधुनिक सामाजिक मनोविज्ञान अग्रवाल पब्लिकेशन आगरा- 7
2. सिंह आर. एन.- (2005) आधुनिक सामाजिक मनोविज्ञान विनोद पुस्तक मंन्दिर आगरा -2
3. सिंह ए.के - (2002) समाज मनोविज्ञान की रूपरेखा मोतीलाल बनारसीदास दिल्ली
4. सिंह ए.के. -(2000) उच्चतर सामान्य मनोविज्ञान मोती लाल बनारसी दास दिल्ली
5. श्रीवास्तव डी. एन.- (दसवां संस्करण) समाजिक मनोविज्ञान साहित्य प्रकाशन आगरा
6. श्रीवास्तव डी. एन एवं अन्य-(2000-2001)आधुनिक समाज मनोविज्ञान एच.पी. भार्गव बुक हाउस आगरा।
7. भटनागर ए.बी.एवं अन्य - डेवलपमें न्ट आफ लर्नर एण्ड टीचिंग लर्निगं प्रोसेस विनय राखेजा C/O लाल बुक डिपोमेरठ

8. रोवर्ट, ए बैरन एवं डान बैरन (नौवा संस्करण) पीयर्सन एडूकेशन (सिंगापुर) प्रा. लि. इण्डियन ब्रांच 482 एम. आइ्र पटपरगंज दिल्ली 110092 इंडिया।
9. त्रिपाठी, आर.बी. (2002) व्यक्तित्व का मनोविज्ञान सुमित भार्गव , एवं सिंह आर. एन. गंगा सरन एण्ड ग्रेण्ड सन्स सी. के. 37/44 बी बॉसफाटक वाराणसी
10. मुहम्मद, सुलेमान (2006) सामान्य मनोविज्ञान , मूल प्रक्रियाऐं एवं संज्ञानात्मक प्रक्रियाएं। मोती लाल बनारसी दास दिल्ली
11. अग्रवाल, विमल (2010-11) मनोविज्ञान एस.बी.पी.डी. पब्लिकेशन आगरा।

11.12 निबंधात्मक प्रश्न

1. सामाजिक प्रभाव से आप क्या समझते हैं? इसके प्रमुख अवयवों का वर्णन कीजिए।
2. सामाजिक प्रभाव के स्वरूप को समझाते हुये उसके प्रकारों का वर्णन कीजिए।
3. अन्तर्वैयक्तिक आकर्षण से क्या तात्पर्य है ? इसके निर्धारकों का वर्णन कीजिए।
4. आकर्षण के संतुलन सिद्धान्त का वर्णन कीजिए।
5. अन्तर्वैयक्तिक आकर्षण के विनिमय सिद्धान्त की आलोचनात्मक व्याख्या करें।
6. निम्नलिखित पर संक्षिप्त नोट लिखें:-
   i. पूरक आवश्यकता सिद्धान्त (Complimentary need theory)
   ii. समदृष्टि सिद्धांत (Equity Theory)
   iii. पुनर्बलन सिद्धान्त (Reinforcement theory)

इकाई 12-प्रसामाजिक व्यवहार ,परोपकारी व्यवहार , परोपकारी व्यवहार सिद्धान्त

इकाई संरचना-

12.1 प्रस्तावना

12.2 उद्देश्य

12.3 प्रसामाजिक व्यवहार

12.3.1 परिभाषाएं एवं अर्थ

12.3.2 विशेषताएं

12.4 परोपकारी व्यवहार

12.4.1 परिभाषाएं एवं अर्थ

12.4.2 विशेषताएं

12.4.3 प्रकार

12.5 प्रसामाजिक व्यवहार एवं परोपकारी व्यवहार में अन्तर

12.6 परोपकारिता एवं प्रसामाजिक व्यवहार के निर्धारक

12.6.1 परिस्थितिजन्य कारक

12.6.2 सामाजिक कारक

12.6.3 वैयक्तिक कारक

12.7 परोपकारिता एवं प्रसामाजिक व्यवहार के सिद्धान्त

12.8 परोपकारिता में वृद्धि करना

12.9 सारांश

12.10 शब्दावली

12.11 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

12.12 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

12.13 निबंधात्मक प्रश्न

12.1 प्रस्तावना

प्रकृति में पाए जाने वाले समस्त जीवों को स्वार्थी माना जाता हैं। मनुष्य भी इससे अछूता नही हैं। उसके समस्त क्रियाकलाप प्रायः स्वार्थपरक ही होते हैं। वह जो कुछ भी करता है उसके पीछे उसका स्वार्थ या निजी उद्देश्य छिपा रहता हैं। कभी कभी वह निःस्वार्थ भी कार्य करता है ,दूसरों की सहायता करता है

जिसमें उसका कोई स्वार्थ नहीं होता है। ऐसे व्यवहारों को परोपकारी एवं समाजोपयोगी व्यवहार कहा जाता है। इन्हें निष्काम सेवा कहा जाता हैं। कसी के साथ सहयोग करना, किसी की सहायता करना, किसी का दुख बांट लेना, किसी की संतुष्टि के लिए स्वयं को कष्ट में डाल देना, सामाजिक मानकों या मर्यादाओं के अनुरूप व्यवहार करना या अन्य लोगों को लाभ प्रदान करना आदि ऐसे ही व्यवहार कहे जाते हैं। ऐसे व्यवहारों को अच्छा , मानवीय, वांछित, अनुकूल या धनात्मक व्यवहार माना जाता है। ऐसे व्यवहारों से समाज में सहयोग,सामंजस्य तथा सद्भाव की भावना बढ़ती है। यही कारण है कि आधुनिक शोधकर्ता इस तरहं के व्यवहारों में विशेष रूचि ले रहे हैं। ऐसे मानवीय व्यवहार आत्मिक सुख प्रदान करते हैं। रक्त दान करना ,मेधावी छात्रों को छात्रवृत्ति देना , गरीब लोगों को रोटी , कपड़ा व मकान के लिए आर्थिक सहायता देना, सूखा , बाढ़ क्षेत्रों के लिए खाद्य पदार्थ एवं अन्य राहत के सामान पहुंचाना, दान देना आदि प्रसामाजिक या प्रतिसामाजिक व्यवहार के उदाहरण हैं।

ऐसे कार्यां में लाभ के लिए न सही ,स्वान्तः सुखाय आप भी यथासंम्भव सहभागिता करते ही हैं। समाज आपसे ऐसी अपेक्षा भी करता हैं। आशा है , प्रस्तुत पाठ्य सामग्री से आपको जानकारी होगी तथा इन मानवीय व्यवहारों का आपके जीवन में अनुपालन भी सुनिश्चित हो सकेगा।

12.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के पश्चात् आप इस योग्य हो सकेंगे कि आपः-

1. परोपकारिता एवं प्रसामाजिक व्यवहार का अर्थ, स्वरूप एवं विशेषता को समझ सकें।
2. परोपकारिता एवं प्रसामाजिक व्यवहार के सिद्धान्तों से अवगत हो सकें।
3. परोपकारिता एवं प्रसामाजिक व्यवहार के अन्तर को समझ सकेंगे ।
4. आप निःस्वार्थ समाज सेवा करने के लिये सदैव तत्पर हो सकें।
5. सामाजिक मानकों के अनुसार व्यवहार करने में अपने सामाजिक उत्तरदायित्वों को समझें तथा उनका भली प्रकार निर्वहन कर सकें।

12.3 प्रसामाजिक व्यवहार (Pro Social Behaviour)

प्रसामाजिक व्यवहार को प्रतिसामाजिक व्यवहार या समाजोपयोगी व्यवहार कहते हैं। जब कोई व्यक्ति समाज में दूसरों को लाभ पहुंचाने वाला व्यवहार करता है, जो समाज में उपयोगी व वांछनीय समझा जाता है, ऐसे व्यवहार को प्र्रसामाजिक या प्रतिसामाजिक या समाजोपयोगी व्यवहार कहा जाता है। प्रतिसामाजिक/प्रसामाजिक व्यवहार की कई श्रेणियां हैं जिनमें से एक प्रमुख श्रेणी सहायता परक व्यवहार (Helping behaviour) भी है। सामान्य शब्दों में ‘परोपकारिता को सहायता परक व्यवहार भी कहा जाता है।

परोपकारिता - सहायता परक व्यवहार - प्रसामाजिक व्यवहार (श्रेणी)

12.3.1 परिभाषाएं एवं अर्थ

बैरन एवं वाइरन(1987) के अनुसार ' समाजोपयोगी व्यवहार वह व्यवहार हैं , जिसमें व्यवहार करने वालो को स्पष्ट लाभ नहीं रहता है बल्कि उन्हें कुछ जोखिम भी उठाना पड़ता हैं , और कुछ त्याग भी करना पड़ता हैं। ऐसे कार्य आचरण के नैतिक मानकों पर आधारित होते हैं।

" Prosocial behavior refers to acts that have no obvious benefits for the individual engaging in them and even involve risk and some degree of sacrifice such acts are based on ethical standards of conduct" **Baron & Byrne** –

मैक्डेविड और हरारि (Mc David J.W. & Harari.H 1986) ने समाजोपयोगी व्यवहार के अर्थ को स्पष्ट करते हुए लिखा है कि ''समाजोपयोगी व्यवहार समाज के सदस्यों के बीच पारस्परिक सहायता और ष्शुभेच्क्षा का उदार विनिमय है।''

ब्राउन और कुक (1986) ने प्रतिसामाजिक व्यवहार को परिभाषित करते हुए लिखा है कि ''प्रतिसामाजिक व्यवहार दूसरों की मदद करने, सहभागिता दिखाने, और सहयोग दिखाने के रूप में परिभाषित किया जा सकता है । प्रतिसामाजिक व्यवहार में अनेक प्रकार के व्यवहार आते हैं जो एक या अधिक व्यक्तियों से संबन्धित होते हैं।''

सहायता परक व्यवहार (Helping behaviour) और परोपकारी व्यवहार (Altruistic behaviour) एक प्रकार का समाज के हित में किया गया व्यवहार है तथा ये प्रसामाजिक व्यवहार के अन्तर्गत ही आते हैं। अतः यह कहा जा सकता हैं कि समस्त परोपकारी व्यवहार , प्रसामाजिक व्यवहार हैं परन्तु सभी प्रसामाजिक व्यवहार परोपकारी व्यवहार नहीं हो सकते हैं।

रैथस (1984) के अनुसार "बिना स्वार्थ के दूसरों के कल्याण के प्रति चिन्तित होना परोपकारिता कहा जाता है" Altruism is unselfish concern for the welfare of others"-Rathus

मायर्स (1988) के अनुसार "परोपकारिता का आशय , लाभ या प्रतिफल की आशा किए बिना दूसरों की चिंता तथा सहायता करने , अपने स्वार्थ के प्रति सचेष्ट हुए बिना दूसरों के प्रति समर्पित होने से है"।

"Altruism is concern and help for others that asks nothing in return, devotion to others about conscious regard for one's self interest".

उपर्युक्त परिभाषाओं से स्पष्ट है कि परोपकारिता ,सहायतापरक व्यवहार या समाजोपयोगी व्यवहार, ऐसे व्यवहार हैं जो मानवीय मूल्यों से निर्देशित होते हैं। इनका आधार नैतिक मर्यादायें होती हैं, और ऐसे व्यवहार किसी को लाभ या सहायता पहुँचाने के लिए किये जाते हैं। ऐसे व्यवहारों को करने के पीछे व्यक्ति का स्वार्थ या निजी उद्दश्य नहीं होता है। यदि होता भी है तो दूसरों के लिए खर्च करना ही पड़ता है। कभी कभी उसे संकट या जोखिम भी उठाना पड़ सकता है। ऐसे कल्याणकारी व्यवहार व्यक्ति स्वेच्छा से करता है। गरीबों जरूरतमंदों या संकट में पड़े व्यक्तियों की सहायता करना आदि परोपकारिता के उदाहरण

हैं। प्रतिसामाजिक व्यवहार से साधनहीन और निर्धन लोगो की सहायता होती हैं। सूखा पीड़ित और बाढ पीड़ित या भूकम्प पीड़ित लोगों के सहायतार्थ किये जाने वाले कार्य जैसे खाद्य पदार्थों का वितरण, औषधियों का वितरण, वस्त्रों का वितरण निःशुल्क आवास व्यवस्था आदि प्रति सामाजिक व्यवहार के अन्तर्गत आते हैं। निर्धन और मेघावी छात्रों को छात्रवृत्ति या पुस्तकों का वितरण भी प्रतिसामाजिक या समाजोपयोगी व्यवहार कहलाते हैं।

12.3.2 प्रसामाजिक व्यवहार की विशेषताएं

यह एक स्वैच्छिक व्यवहार है। इस प्रकार का व्यवहार व्यक्ति जानबूझकर करता है।

i. यह व्यवहार उनके लिए लाभप्रद होता है जिनके लिए यह किया जाता है।
ii. प्रतिसामाजिक व्यवहार करने वाले व्यक्ति को जोखिम रहता है और ऐसे व्यक्ति को कभी कभी हानि भी सहन करनी पड़ती है।
iii. प्रसामाजिक व्यवहार समाज के नियमों और मानकों के अनुसार होता है।
iv. प्रसामाजिक व्यवहार करने वाले व्यक्ति या व्यक्तियों को ऐसा व्यवहार करने से कुछ न कुछ आत्मसन्तोष का अनुभव होता है।
v. प्रतिसामाजिक व्यवहार करने वाले व्यक्तियों का स्वार्थ स्पष्ट नहीं होता है।

12.4. परोपकारी व्यवहार (Altruistic Behaviour)

12.4.1 परोपकारी व्यवहार का अर्थ एवं परिभाषाएं

परोपकारी व्यवहार एक विशेष प्रकार का सहायता परक व्यवहार है। परोपकारी व्यवहार करने वाला व्यक्ति किसी स्वार्थ की आशा के बिना ही वह दूसरों को लाभ पहुंचाने वाला या दूसरों का कल्याण करने वाला व्यवहार कहलाता है। उसका उद्देश्य दूसरों का कल्याण करना और लाभ पहुंचाना रहता है। परोपकारी व्यक्ति हानि उठा करके भी दूसरों को लाभ पहुँचाने वाला व्यवहार करता है। उदाहरण के लिएः- गर्मी के दिनों में निःशुल्क प्याऊ की व्यवस्था करना, जाड़ों में निर्धन लोगों के लिए, गर्म वस्त्रों का वितरण , शीतलहर चलने पर गरीब लोगों के लिए अलाव की व्यवस्था आदि सभी परोपकारी व्यवहार हैं। इन परोपकारी व्यवहारों में परोपकारी व्यक्ति का कोई स्वार्थ नहीं होता है। लाभ पाने की कोई इच्छा नहीं होती है। यह भी कहा जा सकता है कि परोपकारी व्यवहार में व्यक्ति अपनी कुछ न कुछ हानि उठाकर दूसरों को लाभ पहुंचाता है।

आइजेंक (1972) ने परोपकारी व्यवहार को परिभाषित करते हुए लिखा हैं कि यह वह व्यवहार हैं जिसमें परोपकार करने वाले का कोई स्वार्थ नहीं होता हैं। इस प्रकार के व्यवहार में वह सभी व्यवहार सम्मिलित हैं जिनका उद्देश्य दूसरों को लाभ पहुँचाना होता है। लाभ पहुँचाने वाले व्यक्ति का अपना कोई लाभ या स्वार्थ नहीं होता है।''

रैथस (1984) के अनुसार "बिना स्वार्थ के दूसरों के कल्याण के प्रति चिन्तित होना परोपकारिता कहा जाता है" Altruism is unselfish concern for the welfare of others" . (Rathus 1984)

मायर्स (1988) के अनुसार "परोपकारिता का आशय लाभ या प्रतिफल की आशा किये बिना दूसरों की चिन्ता तथा सहायता करने, अपने स्वार्थों के प्रति सचेष्ट हुए बिना दूसरों के प्रति समर्पित होने से है"।

Altruism is concern and help for others that ask nothing in return, devotion to others without conscious regard for one's self interest " --Myers.

12.4.2 परोपकारी व्यवहार की विशेषताएं

i. परोपकारिता का आशय दूसरों के कल्याण के प्रति सचेश्ट रहने से है।
ii. यह व्यवहार स्वेच्छा से किया जाता है।
iii. यह निःस्वार्थ होता है।
iv. सहायता करने वाले को कभी कभी हानि या जोखिम उठानी पड़ती है।
v. ऐसे व्यवहार व्यक्ति या समाज के लिए कल्याणकारी होते है।
vi. ऐसे व्यवहार आत्म चेतना तथा नैतिक मान्यताओं द्वारा प्रेरित होते हैं।

12.4.3 परोपकारी व्यवहार के प्रकार

i. शुद्ध परोपकारी व्यवहार (Pure Altruistic Behavior) - इस प्रकार के परोपकारी व्यवहार में परोपकारी व्यवहार करने वाले व्यक्ति का किसी प्रकार का प्रत्यक्ष या परोक्ष , कोई भी लाभ या स्वार्थ नही होता है।
ii. अशुद्ध परोपकारी व्यवहार (Impure Altruistic Behavior)- इस प्रकार के परोपकारी व्यवहार में परोपकारी व्यवहार करने वाले व्यक्ति का किसी न किसी प्रकार से लाभ (प्रत्यक्ष या परोक्ष) होता है। जैसेः-परलोक सुधार की कामना, यश, कीर्ति पाने की लालसा आदि।
iii. पारस्परिक परोपकारी व्यवहार (ReciprocalAltruistic Behavior) - इसमें परोपकारी व्यवहार इस आशा से करता है कि बदले में दूसरा व्यक्ति भी (परोपकार व्यवहार प्राप्त करने वाला) उसके साथ भविष्य में परोपकारी व्यवहार करेगा।

12.5 प्रसामाजिक व्यवहार व परोपकारी व्यवहार में अन्तर

i. प्रसामाजिक व्यवहार को प्रतिसामाजिक व्यवहार या समाजोपयोगी व्यवहार भी कहते हैं। सहायतापरक व्यवहार प्रसामाजिक व्यवहार की एक श्रेणी है। परोपकारी व्यवहार सहायता परक व्यवहार का एक अंग है जिसमें कोई लाभ या स्वार्थ निहित नहीं होता है। फलतः परोपकारी व्यवहार भी प्रसामाजिक व्यवहार का एक अंग है।
ii. परोपकारी व्यवहार - सहायतापरक एवं प्रसामाजिक व्यवहार है, लेकिन प्रत्येक समाजोपयोगी / प्रसामाजिक/ सहायतापरक व्यवहार, परोपकारी व्यवहार नहीं होता है।

iii. प्रसामाजिक व्यवहार करने वाले व्यक्तियों का प्रायः कुछ न कुछ स्वार्थ/लाभ होता है। यह स्वार्थ या लाभ प्रत्यक्ष भी हो सकता है , परोक्ष भी हो सकता है। दूसरी ओर परोपकारी व्यवहार में लाभ एवं स्वार्थ का कोई स्थान नहीं है।

12.6 परोपकारिता एवं प्रसामाजिक व्यवहार के निर्धारक

- परिस्थितिजन्य कारक
- सामाजिक कारक
- वैयक्तिक कारक

12.6.1 परिस्थिति जन्य कारक (Situational Factors)

i. सहायता की पुकार (Cry for help) साधारण रूप से निवेदन करने पर, लोग कम ध्यान देते हैं ,रोते हुए सहायता की माग करने पर लोग सहायता के लिये तुरन्त तत्पर हो जाते हैं। जैसे किसी दुर्घटना में घायल लोगों की चीख पुकार पर सहायता के लिये लोग तुरन्त पहुँच जाते हैं। (Clark and Baird 1972,1974)

ii. दर्शक प्रभाव (Bystander's Effect) - दुर्घटना स्थल पर भीड़ होने पर कोई व्यक्ति सहायता के लिए आगे आने के लिए दूसरे की प्रतीक्षा करता है। कुछ लोगों के आगे आने पर अन्य काफी लोग सहायता कार्य में लग जाते हैं (Latane and Nida 1981)

iii. समय की कमी (Lack of time) समय कम होने या किसी कार्य में व्यस्त रहने के कारण लोग सहायता के लिए आगे नहीं आते हैं (Darley and Baston1973)

iv. हानि की सम्भावना (Probability of loss) आजकल प्रायः दुर्घटना में घायल व्यक्ति की सहायता से लोग इस भय से कतराते हैं कि वह स्वयं किसी परेशानी में न पड़ जायें। (Pilliavin Act 1984)

12.6.2 सामाजिक कारक (Social Factors)

सामाजिक उत्तरदायित्व (social responsibility) जिनमें मानवीय भावना एवं सामाजिक उत्तरदायित्व की भावना अधिक होती है वे परोपकारी एवं सामाजिक व्यवहारों में काफी रूचि लेते हैं। (Berkorditz and Daniels1963) सज्जन व्यक्ति की सहायता के लिए लोग शीघ्र तत्पर हो जाते हैं जबकि शरारती शराबी या दुष्ट की सहायता के लिए प्रयत्न नहीं करते (Bryan and Davenport 1968, Berkowitz etc 1964, Schwart 1978)

पारस्परिक (Reciprocity):-यदि कोई व्यक्ति समझता है कि दूसरा व्यक्ति पूर्व में उसकी सहायता कर चुका है या भविष्य में आवश्यकता पड़ने पर उसकी सहायता करेगा तो वह व्यक्ति उसकी सहायता के लिऐ आगे आयेगा। यदि वह समझता है कि जिसकी सहायता करना चाहता है वह भविष्य में उसके काम नहीं आयेगा तो वह सहायता करने से कतरायेगा।

सामाजिक विनिमय (Social Exchange):-जब सहायता का विचार हानि लाभ के आंकलन पर आधारित होता है तो इसे सामाजिक विनिमय सहायता कहते हैं। सुख ,शान्ति ,प्रशंसा , पुरस्कार या आर्थिक लाभ आदि की सम्भावना होने पर व्यक्ति सहायता कार्य में उत्सुकता दिखाता है। वह धन हानि या आलोचना के भय से सहायता कार्य नहीं करेगा। (Pilliavin etc 1982 , Grusec and Redler1980 , Allen 1980)

12.6.3 वैयक्तिक कारक (Individual Factor)

a. समानता (Similarity):- सहायता करने वाले एवं सहायता पाने वाले व्यक्तियों में व्यावहारिक, वैचारिक या अन्य प्रकार की समानता है तो परोपकारी व्यवहार शीघ्रता से प्रदर्शित होगा (Baron 1971) । इसी प्रकार पहनावे में समानता या राजनैतिक विचारों में समानता होने पर भी (Ahlert etc 1973) लोग एक दूसरे की सहायता आसानी से करने को आगे आ जाते हैं ।
b. प्रजाति (Race) - लोग एक दूसरे की सहायता जाति या धर्म के आधार पर करते पाए जा रहे हैं (Benson 1973)। यद्यपि ऐसा भेदभाव समाज में मिलता है , परंतु कभी कभी लोग दूसरे वर्गों एवं प्रजातियों के लोगों की सहायता करने में भी अधिक रूचि लेते हैं (Dutton 1973) । पीड़ित व्यक्ति का लिंग (Sex of victim) यदि पीड़ित व्यक्ति महिला है तथा आकर्षक भी है तो उसकी सहायता के लिए पुरूषवर्ग अधिक आगे आएंगे।
c. व्यक्तित्व (Personality) - सामाजिक बहिर्मुखी , मित्रवत, संवेदनशील एवं दायित्वपूर्ण के लोग दूसरों की सहायता में अधिक रूचि लेते हैं (Moriarty 1975)। मनोदशा (Mood) यदि व्यक्ति अच्छी या सुखद मनोदशा में है तो वह सहायतापरक व्यवहार में अधिक रूचि लेगा (Cunnigham etc 1980 Rosechan etc 1980) । चिंता या अवसाद की दशा में व्यक्ति परोपकारिता में कम रूचि लेगा (Mayer etc 1985 Rosers etc 1982)।यदि व्यक्ति यह धारणा बना लेता है कि पीड़ित व्यक्ति अपने कर्मों का फल पा रहा है तो वह उसकी सहायता में रूचि नहीं लेगा (Lerner etc 1975)। अपराध बोध (Guilt feeling) यदि आपके अन्दर यह भावना आ जाती है कि पीड़ित व्यक्ति का दुख आपके ही कारण है तब आपके मन में अपराध बोध की स्थिति उत्पन्न होगी। यह आपको पीड़ित व्यक्ति की सहायता करने के लिये प्रेरित करेगी (Katzer etc 1978)।

12.7 परोपकारिता एवं प्रसामाजिक व्यवहार के सिद्धांत - (Theory of Altruism and Prosocial Behavior)

परोपकारिता या सहायता परक व्यवहार की व्याख्या के लिये कुछ महत्वपूर्ण सिद्धांतों का प्रतिपादन किया गया है। ऐसे सिद्धन्तों से इस बात पर प्रकाश पड़ता है कि लोग दूसरों की सहायता क्यों करते

हैं?

i. सामाजिक विनिमय सिद्धांत (Social Exchange Theory) -इस सिद्धांत का प्रतिपादन थिबोट और केली ने किया है। सामाजिक व्यवहार, सामाजिक अर्थशास्त्र पर आधारित होता है। हम किसी की सहायता करके उससे सहायता, किसी को प्रेम करके उससे प्रेम पाना चाहते हैं ,हम किसी पर परोपकार करके उससे भी समय आने पर सहयोग एवं सहायता की आशा करते हैं (Foa and Foa 1975)।

मायर्स (1988) के अनुसार ‘‘ सामाजिक विनिमय सिद्धन्त का अभिग्रह है कि मानवीय अन्तःक्रियाएं आदान प्रदान का वह रूप हैं जिनमें व्यक्ति पुरस्कार (लाभ) तो अधिक प्राप्त करना चाहता है परंतु नुकसान न्यूनतम उठाना चाहता है।

Social exchange theory assumes that human interactions are transactions that aim to maximize one’s costs.’

इससे स्पष्ट है कि व्यक्ति अपने सामाजिक क्रियाकलापों में लागत न्यूनतम लगाना चाहता है। हानि न्यूनतम चाहता है, लाभ या पुरस्कार अधिक पाना चाहता है। इसे समाज का न्यूनाधिक सिद्धन्त (Minimax Principle) कहा जाता है। परोपकारिता का प्रदर्शन सदैव इसी आधार पर हो यह आवश्यक नहीं हैं। फिर भी इस मानसिकता का काफी प्रभाव पड़ता है। यदि रक्तदानकर्ता को लगता है कि रक्तदान करने से आर्थिक लाभ है, प्रशंसा प्राप्त होगी या प्रतिष्ठा बढेगी तो वे रक्तदान बड़ी उत्सुकता से करेंगे । हानि की दशा में रक्तदान पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। समाज में अनेक उदाहरण ऐसे भी मिलते हैं कि लोगों ने अपने स्वार्थ की बात सोचे बगैर समाज सेवा की है।

ii. **सामाजिक मानक सिद्धन्त (Social Norm Theory) -** प्रत्येक समाज में कुछ न कुछ मानक प्रचलित होते हैं। व्यक्तियों को इन मानकों का अनुपालन करना पड़ता है । अनुपालन न करने पर उनकी आलोचना होती हैं। दण्ड का भागी होता है। मानक व्यक्ति को उचित व्यवहार करने के लिए प्रेरित करते हैं। परोपकारिता की दृष्टि से निम्नलिखित दो प्रकार के मानक अधिक महत्वपूर्ण हैं-

- पारस्परिक मानक (Reciprocity Norms) इसका आशय यह है कि परोपकारिता करने वाले यह सोचकर सहायता परक व्यवहार करते हैं कि जिनकी सहायता वह कर चुके हैं वे भी उनकी सहायता करेगें, न कि कष्ट देंगें।

  “(Mayers 1988)“Reciprocity norm refers to an expectation that people will help , not hurt , those who have helped them “ (Myers 1988).

  गाउल्डन (1960) के अनुसार लोग उसे नुकसान नहीं पहुँचाना चाहते हैं जिनसे उन्हें नुकसान नहीं हुआ है। लोग उसकी सहायता करना चाहते हैं जिसने उसे अतीत में निराश नहीं किया है। उपकार के बदले उपकार से बड़ा कोई धर्म नहीं है यह मान्यता व्यक्ति को परोपकार करने के लिए प्रेरित करती रहती है। यदि सहायता परक व्यवहार अपेक्षाकृत अधिक लाभकारी या त्यागपूर्ण और अप्रत्याशित है तो उसका प्रभाव लोगो पर और अधिक पड़ता है (Morse et.al

1977) । इससे स्पष्ट है कि परोपकारी व्यवहार पारस्परिकता से काफी अधिक प्रोत्साहित होता है।

- सामाजिक उत्तरदायित्व का मानक (Social responsibility norm) सामाजीकरण के माध्यम से व्यक्ति में सामाजिक चेतना एवं उत्तरदायित्व की भावना विकसित होती है। उसे उन उत्तरदायित्वों का निर्वहन करना पड़ता है। यह मानक व्यक्ति को यह सिखाता है कि उनकी भी सहायता करनी चाहिए जिनके बदले में सहायता नही भी प्राप्त हो सकती है।

 मायर्स (1988) के अनुसार सामाजिक उत्तरदायित्व के मानक का आशय है कि लोग अपने आश्रितों की सहायता करेगें। उत्तरदायित्व की भावना के कारण ही कभी कभी लोग अपने दुश्मन की भी सहायता करते हैं।

 Social responsibility norm is an expectation that people will help those dependent upon them" (Myers1988)

iii. **सामाजिक जैविकी सिद्धांत (Social biology) -**सामाजिक जैविकी वह विज्ञान है जिसमे सामाजिक व्यवहारों के जैविक या अनुवांशिक आधारों का पता लगाने का प्रयास किया जाता है (Dawkins 1976, Campbell 1975 Barash 1979)। इसकी मान्यता विकासवादी परिकल्पना (Evolutationary hypothesis) पर आधारित है। समाज जैविक शास्त्रियों द्वारा इस व्यवहार को निःस्वार्थ या आत्मबलिदानी व्यवहार (Self sacrificial) के नाम से पुकारा जाता है। परोपकारिता व्यवहार संबन्धी समाज जैविक सिद्धांत के मुख्य दो आधार हैं:-

a. **सगोत्र चयन (Kin Selection)-**आवश्कयता पड़ने पर व्यक्ति पहले अपने बच्चों की सहायता करता है। परिवार या पड़ोसी की सहायता बाद में करता है। अपरिचित व्यक्ति की सहायता सबसे अन्त में की जाती है। इसे संगोत्र चयन कहते हैं। सहायतापरक व्यवहार में इसी कारण पक्षपात पाया जाता है (Barash 1979,Ruston et.al 1984, Form and Nosow 1985) ऐसा करने के पीछे कारण यह होता है, कि लोग आपस में समान जीन्स के अस्तित्व को सुरक्षित बनाये रखने में अधिक रूचि रखतें हैं। विल्सन(1978) का मत है कि सगोत्र चयन वास्तविक अर्थों में परोपकारिता नहीं है। इससे तो सभ्यता एवं समाज की विधिवत रक्षा नहीं की जा सकती है। यह सद्भाव एवं सामजस्य को सीमित कर देगा।

b. **पारस्परिकता (Reciprocity)-**अनुवांशिक समानता या आपसी स्वार्थ के कारण लोग एक दूसरे की सहायता करते हैं। अर्थात परोपकारिता से स्वार्थ सिद्धि भी होती है। सहायता करने वाला बदले में सहायता पाने की आशा रखता है (Binhan 1980) । यदि सहायता पाने वाला सहायता करने वाले के बदले में सहायता नहीं करता है तो उसकी निन्दा होती है या वह दण्डित भी किया जा सकता है।पारस्परिकता प्रभाव छोटे समूह में काफी अधिक पाया जाता है (Barash1979,Amato 1983 Korte 1980)।यह दृष्टिकोण पूर्णतः तर्कसंगत नहीं लगता हैं। ऐसे अनेक लोग हैं जिन्होंने अपना सारा जीवन दूसरों की भलाई , समाज के कल्याण एवं गरीबों की सेवा में लगा दिया हैं , बदले में कुछ भी नही चाहा।

महात्मागांधी , बुद्ध , राजाराम मोहन राय एवं मदर टरेसा आदि ऐसी ही विभूतियां हैं। इस प्रकार प्रचलित नैतिक एवं धार्मिक मांन्यताऐं समाज जैविक सिद्धांत के समक्ष चुनौती के रूप में हैं । अर्थात व्यक्ति अपनों और अपने स्वार्थ के लिये ही नही प्रेरित रहता उसमे परोपकार की भी विशेषता पायी जाती हैं (Campbell 1975 , Batson 1983)। राबर्ट ट्राइवर्स (1971) का विचार है कि यदि एक समाज के सभी सदस्यों का जीवन संकट मे हो और समाज के सदस्य संकट से मुक्ति पाने के लिऐ व्यक्तिगत प्रयास अलग अलग करे तो संकट से मुक्ति पाना कठिन हो जायेगा । दूसरी ओर यदि समाज के सभी सदस्य संकट से मुक्ति पाने के लिये पारस्परिक व्यवहार/सहयोग करे तो निश्चय ही सभी सदस्यों को संकट से मुक्ति मिल जायेगी। ट्राइवर्स ने बताया कि जब एक चिम्पेन्जी को भोजन मिलता है तो वह अपने अन्य साथी चिम्पैन्जियों को भोजन उपलब्ध कराने के लिए शोर मचा कर बुलाता है। इसी प्रकार की पारस्परिकता अन्य चिम्पैन्जियों में भी पायी जाती है। दूसरी बार जब समूह के किसी दूसरे चिम्पैन्जी को भोजन प्राप्त होता है तो वह भी शोर मचा कर अपने साथी चिम्पैन्जियों को भोजन के लिए बुलाता है। यह पारस्परिकता मानव समाज में भी पायी जाती है इसी पारस्परिकता के कारण व्यक्ति समाज में सहायतापरक और परोपकारी व्यवहार करता है।

प्रबलन या पुनर्वलन सिद्धांत (Reinforcement Theory) - यदि परोपकारिता या सहायता परक व्यवहार से व्यक्ति को आत्मसंतोष होता है, प्रशंसा प्राप्त होती है, या उसे भला आदमी समझा जाता है तो परोपकारी व्यवहार में वृद्धि होती है। वहीं यदि सहायता करके कष्ट पाता है तो उसे हानि होती है। जोखिम की संभावना बढती है तो उसके परोपकारिता/सहायतापरक व्यवहार पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। व्यक्ति ऐसे व्यवहार से बचना चाहता है।

बैन्डुरा (1973) के अनुसार:-प्रतिरूप/मॉडल के अच्छे व्यवहारों को पुरस्कृत करने पर दर्शक उसका अनुकरण करते हैं परंतु दण्ड मिलने पर अनुकरण नहीं करते हैं। इसी प्रकार लाभ की सम्भावना होने पर सहायता परक व्यवहार बढता है तथा हानि की सम्भावना होने पर इसमें कमी आती है । (Piliavin etc 1981)

हास और पेज (Hauss and Page 1972) ने सड़क पर जा रहे कुछ व्यक्तियों से एक दुकान का पता पूछा कुछ व्यक्तियों ने सही पता बता दिया। इन व्यक्तियों की प्रशंसा की गयी। दूसरे व्यक्तियों ने बताने के दौरान ही बीच में टोककर कहा कि आप क्या बता रहे हैं, मेरी समझ में नहीं आ रहा है। रहने दीजिए मै किसी और से पूछ लूंगा। पता बताने वाले ऐसे व्यक्ति के लिए यह दण्ड की अवस्था थी। हास और पेज ने पाया कि जिनकी प्रशंसा की गई थी उनमें से 90 प्रतिशत प्रयोज्यों ने सहायतापरक परोपकारी व्यवहार किया। दूसरी ओर दण्ड की दशा में 40 प्रतिशत प्रयोज्यों ने ही सहायतापरक परोपकारी व्यवहार किया।

इस प्रकार स्पष्ट हैं कि पुरस्कार एवं दण्ड के आधार पर व्यक्ति सहायतापरक और परोपकारी व्यवहार सीखते हैं साथ ही साथ पुरस्कार व दण्ड के आधार पर व्यक्ति सहायतापरक व परोपकारी व्यवहार भी

करते हैं। यद्यपि परोपकारिता में वृद्धि के लिए प्रबलन उपयोगी है परन्तु यह विचार भी पूर्णतः तर्कसंगत नहीं है क्योंकि अनेकों लोग दूसरों की सहायता निःस्वार्थ भाव से करते हैं। वस्तुतः परोपकारिता एक तरह का निःस्वार्थ आत्म बलिदानी व्यवहार है। (Myers1988)

12.8 परोपकारिता व्यवहार में वृद्धि करना (Increasing Alturism)

परोपकारिता या सहायता परक व्यवहार समाज के लिए काफी उपयोगी है। अतः इसके प्रोत्साहित किये जाने की नितान्त आवश्यकता है। इस व्यवहार की वृद्धि से मानवता की रक्षा में मदद मिलेगी। परोपकारिता की बृद्धि के लिए निम्नलिखित उपाय किये जा सकते हैं।

i. अस्पष्टता कम करना (Reducing Ambiguity) -परिस्थिति की अस्पष्टता परोपकारी व्यवहार उत्पन्न करने में बाधा डालती हैं। अतः परोपकारी व्यवहार उत्पन्न करने के लिए यह आवश्यक है कि पीड़ित व्यक्ति की परिस्थिति को बिल्कुल ही स्पष्ट रखा जाये। उपस्थित दर्शक यह ठीक ढंग से समझ सकें कि पीड़ित व्यक्ति क्यों और कैसे इस आपातकालीन स्थिति में फंस गया है। इतनी स्पष्टता प्राप्त कर लेने से पीड़ित व्यक्ति के प्रति सहायतापरक व्यवहार की उन्मुखता में वृद्धि हो जाती है। पीड़ित व्यक्ति की परिस्थिति को समझ न पाने की दशा में उपस्थित लोग एक दूसरे का मुँह देखते रहते हैं। सहायता के लिए कोई आगे नहीं आता हैं। यद्यपि कुछ लोगों के पहल करने पर अन्य लोग भी सहायता के लिए आगे आ जाते हैं। (Latane and Nida 1981)

ii. उत्तरदायित्व की भावना में वृद्धि करना (Increasing responsibility) लोगों में मानवता ,मानवीय संवेदना या उत्तरदायित्व की भावना बढ़ाकर परोपकारी व्यवहार को बढ़ाया जा सकता है। ऐसा भी पाया जाता है कि यदि पीड़ित व्यक्ति सज्जन है तो उसके प्रति दयाभाव शीघ्रता से उत्पन्न हो जाता है। (Berkowitz 1964)

iii. परोपकारिता माडलिंग (Modeling Altruism) सहायतापरक व्यवहारों की माडलिंग कराकर तथा उसके लिए कर्ता को पुरस्कृत करके परोपकारी व्यवहार में सरलता से बृद्धि की जा सकती है। कुछ लोगों को पीड़ित की सहायता करते हुए देखकर अन्य काफी लोग भी वैसा करने लगते हैं। इससे सहायतापरक व्यवहार में वृद्धि होती है (London 1970,Rosenhan 1970) । टेलीविज़न पर सहायता परक व्यवहार का प्रदर्शन करने पर दर्शकों पर इसका बड़ा अच्छा प्रभाव पड़ता है (Hearold 1979, Ruston 1979)।

iv. आत्म प्रेरणा (Self-Motivation) यदि लोगों में किसी तरह सहायतापरक व्यवहार के लिए स्वयं की सोच या प्रेरणा पैदा हो जाये तो इससे सहायतापरक व्यवहार में वृद्धि होती है (Baston 1979) सामाजिक दबाव या वाह्य प्रलोभन की अपेक्षा आत्मप्रेरणा अधिक प्रभावशाली होती है (Piliavin etc 1982 Thomas et al.1981 Coleman 1985) । इसके लिए सामाजिक प्रशंसा भी लाभकारी है।

परोपकारिता अधिगम (Learning about Altruism) परोपकारिता में बाधक तत्व की जानकारी कर उसको समाप्त करके सहायतापरक व्यवहार को बढ़ाया जा सकता है (Beaman 1978) क्योंकि बाधक तत्वों के बारे में जानकारी हो जाने पर पीड़ित व्यक्ति के प्रति संवेदनशीलता एवं सहानुभूति बढ़ जाती है।

प्रसामाजिक मूल्यों के साथ बच्चों का पालनपोषण (Raising children with prosocial values) - बच्चों में आन्तरिक नियंत्रण को ठीक ढंग से विकसित किया जाये तो उसमें सहायतापरक व्यवहार करने की क्षमता बढ़ जाती हैं। यह कार्य उन्हें एक उचित दुलार प्यार की स्थिति में रखकर पालन पोषण करने से ही सम्भव हैं। हाफमैन 1975 के अनुसार "ऐसे बच्चे जिनमें सहायतापरक व्यवहार करने की प्रवृत्ति होती है उनके माता पिता में से किसी एक में कम से कम ऐसे व्यवहार दिखाने की तत्परता अधिक दिखायी पड़ती है।

v. जिन बच्चों में सिर्फ सामाजिक नियम के प्रति अनुक्रिया करना सिखाया जाता है और जिन्हें ऐसे नियमों को तोड़ने के लिए दण्ड मिलता है, उनमें बाह्य उद्दीपनों या संकेतों से निर्देशित होने की उन्मुखता अधिक होती है। ऐसे बच्चों में प्रतिसामाजिक मूल्य तेजी से नहीं विकसित होते हैं और वे सहायतापरक व्यवहार दिखाने में हिचकते हैं।

vi. परोपकारिता की शिक्षा (Teaching Altruism) LVko (Staub 1975) ने कई ऐसे प्रयोग किये हैं कि जिनमें बच्चों को सहायतापरक व्यवहार करने के लिए सफलतापूर्वक सिखाया गया। कुछ बच्चों को अन्य बच्चों द्वारा अनुचित व्यवहार करने से रोकने के लिए प्रोत्साहित किया गया। ऐसा करते करते इनमें स्वयं परोपकारी व्यवहार करने की तीव्र उन्मुखता उत्पन्न हो गयी। इनके कुछ अन्य प्रयोग में पांचवे एवं छठे वर्ग के छात्रों को पहले और दूसरे वर्ग के छात्रों को परोपकारी व्यवहार सिखलाने का उपदेश देने को कहा गया। ऐसा कई दिनों तक करने के बाद देखा गया कि इनमें परोपकारी व्यवहार करने की उन्मुखता उन लोगों की अपेक्षा अधिक पायी गयी जिन्हें उपदेश देने का मौका नहीं दिया गया था।इससे स्पष्ट है कि परोपकारिता या सहायतापरक व्यवहार में विभिन्न प्रकार से वृद्धि भी की जा सकती है।

अभ्यास प्रश्न

1. बिना स्वार्थ दूसरों के कल्याण के प्रति चिन्तित रहना ________कहा जाता है।
2. सामाजोपयोगी व्यवहार में ________की प्रत्याशा हो सकती है।
3. न्यूनतम लागत से अधिक लाभ या पुरस्कार पाने वाले व्यवहार को सामाजिक व्यवहार का ________कहते है।
4. सभी परोपकारी व्यवहार प्रसामाजिक व्यवहार है परन्तु सभी प्रसामाजिक व्यवहार ________ नहीं हो सकते।
5. परोपकारिता के लिए ________प्रेरित करते हैं।

6. पारस्परिकता एवं सगोत्र चयन से प्रभावित होकर किया गया सहायतापरक व्यवहार ________के अन्तर्गत आता है।
7. सबसे पहले अपने परिवार के सदस्यों , उसके बाद पड़ोसियों और अन्त में अपरिचित व्यक्ति की सहायता ________सिद्धांत के अन्तर्गत आती है ।
8. परोपकारिता की माडलिगं कराकर परोपकारी भावना में ________ की जा सकती है।
9. किसी पीड़ित की सहायता के लिए एक व्यक्ति के आगे आने पर दूसरे लोगों का सहायता के लिए आगे आना ________कहा जाता है।
10. सहायता की पुकार ,सामान्य अनुरोध से ________ती है।
11. सहायतापरक व्यवहार में दर्शक प्रभाव की खोज ________ने की है।
12. परोपकारी व्यवहार की व्याख्या के लिए सामाजिक विनिमय सिद्धांत का प्रतिपादन ________ने किया।

12.9 सारांश

- प्रसामाजिक व्यवहार वह व्यवहार है जिससें व्यवहार करने वाले को स्पष्ट लाभ नहीं होता है बल्कि उन्हें कुछ जोखिम या हानि भी उठानी पड़ती है। ऐसे व्यवहार का आधार आचरण या सामाजिक व्यवहार के नैतिक मानक होते हैं।
- प्रसामाजिक व्यवहार को प्रतिसामाजिक व्यवहार या समाजोपयोगी व्यवहार भी कहते हैं। सहायतापरक व्यवहार प्रसामाजिक व्यवहार की एक श्रेणी है।
- परोपकारी व्यवहार एक सहायतापरक व्यवहार है इसमें कोई स्वार्थ या लाभ की इच्छा नहीं रहती है। ऐसे व्यवहार आत्मचेतना तथा नैतिक मान्यताओं द्वारा प्रेरित होते हैं।
- परिस्थिति जन्य निर्धारक, सामाजिक निर्धारक तथा व्यक्तिपरक आदि प्रसामाजिक व्यवहार सहायतापरक एवं परोपकारी व्यवहार के प्रमुख निर्धारक तत्व हैं।
- परोपकारी व्यवहार व्याख्या करने के लिए कई तरह के सिद्धन्तों का प्रतिपादन किया गया है। सामाजिक विनिमय सिद्धांत ,सामाजिक मानक सिद्धांत, सामाजिक जैविकीय सिद्धांत, तथा पुनर्वलन सिद्धांत प्रमुख हैं।
- व्यक्ति अपने सामाजिक क्रियाकलापों में लागत न्यूनतम लगाना चाहता है। नुकसान, न्यूनतम उठाना चाहता है जबकि लाभ या पुरस्कार अधिकतम् पाना चाहता है। इसे ही सामाजिक व्यवहार का न्यूनाधिक सिद्धन्त कहते हैं।
- सामाजिक विनिमय सिद्धांत के अनुसार परोपकारिता व्यवहार प्रायः हानि लाभ के आकलन द्वारा निर्धारित होता है।

- सामाजिक मानक सिद्धांत के अनुसार मानक व्यक्ति को उचित व्यवहार करने के लिए प्रेरित करते हैं। यह मानक पारस्परिक व्यवहार के लिए भी हो सकते हैं। और सामाजिक उत्तरदायित्व से सम्बन्धित भी हो सकते हैं।
- समाज जैविकी मान्यताएं विकासवादी परिकल्पना पर आधारित हैं। समाज जैविकीय शास्त्रियों द्वारा इस व्यवहार को निःस्वार्थ या आत्मबलिदानी व्यवहार के नाम से पुकारा जाता है। आवश्यकता पड़ने पर व्यक्ति पहले अपने बच्चों की सहायता करता है, बाद में परिवार तथा पड़ोसी की सहायता करता है अपरिचित व्यक्ति की सहायता सबसे अन्त में की जाती है।
- परोपकारी या सहायतापरक व्यवहार प्रवलन या पुरंस्कार द्वारा भी प्रभावित होता है । यदि परोपकारिता व्यवहार करने से व्यक्ति को आत्मसंतोष , प्रशंसा प्राप्त होती है या उसे भला आदमी समझा जाता है तो परोपकारिता में बृद्धि होती है। यदि वह सहायता करके कष्ट पाता है, हानि होती है, जोखिम उठाता है तो उसके सहायतापरक व्यवहार पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।
- प्रतिसामाजिक मूल्यों के साथ बच्चों का पालनपोषण, परिस्थिति स्पष्टता को कम करके,उत्तरदायित्व की भावना को बढ़ावा देकर आत्मप्रेरण,परोपकारिता माडलिंग, परोपकारिता अधिगम या परोपकारिता की शिक्षा देकर परोपकारी व्यवहार में बृद्धि की जा सकती है।

12.10 शब्दावली

1. **प्रतिसामाजिक** -प्रतिसामाजिक या समाजोपयोगी, समाज के लिए उपयोगी।
2. **प्रजाति -** वर्ग एक जाति या धर्म के लोग।
3. **अपराधबोध -** किसी व्यक्ति की भावना जिससे वह पीड़ित व्यक्ति के कष्ट का कारण स्वयं को मानता हो, अपराध बोध कही जाती है।
4. **समाज जैविकी -** जैविक या अनुवांशिक आधारों पर सामाजिक व्यवहार।
5. **सगोत्र चयन -** समान जीन्स के अस्तित्व सुरक्षित रखना।
6. **आत्म प्रेरणा -** स्वयं की सोच या प्रेरणा।
7. **अधिगम -** सीखना।

12.11 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. परोपकारिता
2. प्रतिफल
3. न्यूनाधिक सिद्धांत
4. परोपकारी व्यवहार
5. सामाजिक मानक

6. समाज जैविकी व्यवहार
7. संगोत्र
8. वृद्धि
9. दर्शन प्रभाव
10. अधिक प्रभाव
11. लाताने तथा डार्ले (1970)
12. थिवोट और केली (1959)

12.12 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. सिंह आर. एन. -2007-2008 आधुनिक सामाजिक मनोविज्ञान अग्रवाल पब्लिकेशन आगरा- 7
2. सिंह आर. एन. (2005) आधुनिक सामाजिक मनोविज्ञान विनोद पुस्तक मंन्दिर आगरा -2
3. सिंह ए.के - (2002) समाज मनोविज्ञान की रूपरेखा मोती लाल बनारसी दास दिल्ली
4. सिंह ए.के (2000) उच्चतर सामान्य मनोविज्ञान मोती लाल बनारसी दास दिल्ली
5. श्रीवास्तव डी. एन.- (दसवां संस्करण) समाजिक मनोविज्ञान साहित्य प्रकाशन आगरा
6. श्रीवास्तव डी. एन एवं अन्य .-(2000-2001) आधुनिक समाज मनोविज्ञान एच. पी . भार्गव बुक हाउस आगरा।
7. भटनागर ए.बी.एवं अन्य -डेवलपमेन्ट आफ लर्नर एण्ड टीचिंग लर्निगं प्रोसेस विनय राखेजा C/O लाल बुक डिपो मेरठ
8. रोवर्ट , ए बैरन एवं डान बैरन (नौवा संस्करण) पीयर्सन एडूकेशन (सिंगापुर) प्रा. लि. इण्डियन ब्रांच 482 एम. आइ्र पटपरगंज दिल्ली 110092 इंडिया।
9. त्रिपाठी आर.बी. एवं सिंह आर. एन. (2002) व्यक्तित्व का मनोविज्ञान
10. भार्गव ,सुमित गंगा सरन एण्ड ग्रेण्ड सन्स सी. के. 37/44 बी बॉसफाटक वाराणसी
11. मुहम्मद सुलेमान (2006) सामान्य मनोविज्ञान, मूल प्रक्रियाऐं एवं संज्ञानात्मक प्रक्रियाये। मोती लाल बनारसी दास दिल्ली
12. अग्रवाल, विमल (2010-11)मनोविज्ञान एस.बी.पी.डी. पब्लिकेशन आगरा।

12.13 निबंधात्मक प्रश्न

1. प्रसामाजिक और परोपकारिता व्यवहार का अर्थ स्पष्ट कीजिए ?
2. परोपकारिता व्यवहार के सिद्धान्तों का वर्णन कीजिए।
3. परोपकारिता से आप क्या समझते हैं ? इसके निर्धारक तत्वों का संक्षिप्त वर्णन कीजिए ?
4. संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए-
    i. परोपकारिता एवं विनिमय
    ii. परोपकारिता एवं प्रबलन

iii. परोपकारिता एवं माडलिंग
iv. दर्शक प्रभाव
v. अपराध बोध

इकाई 13 - आक्रामकता तथा हिंसा, आक्रामकता के सिद्धांत हिंसा के कारण

इकाई संरचना-

13.1 प्रस्तावना
13.2 उद्देश्य
13.3 आक्रामकता तथा हिंसा का अर्थ
13.4 आक्रामकता एवं हिंसा का स्वरूप या विशेषता
13.5 आक्रामकता के सिद्धान्त
13.5.1 मूल प्रवृति का सिद्धांत
13.5.2 कुण्ठा आक्रामकता का सिद्धांत
13.5.3 सामाजिक अधिगम का सिद्धांत
13.6 आक्रामकता एवं हिंसा के कारण /कारक
13.7 सारांश
13.8 शब्दावली
13.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
13.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
13.11 निबन्धात्मक प्रश्न

13.1 प्रस्तावना

वैज्ञानिक व तकनीकी विकास के कारण सामाजिक परिवर्तन तीव्र गति से हो रहे हैं । इस परिवर्तन व विकास के कारण सामाजिक जीवन और व्यवहार बदल रहे हैं। आदमी का जीवन बड़ा व्यस्त हो गया है। उसकी इच्छाऐं बढ रही हैं। असीमित इच्छाओं के कारण जीवन में अशान्ति भी बढ रही है। जीवन में अलगाव आक्रोश (Hostility) हिंसा (Violence) हत्या (Murder) आतंकवाद (Terrorism) और युद्ध (Battle) संम्बन्धी व्यवहारों का प्रदर्शन काफी बढता हुआ दिखाई दे रहा है। इन व्यवहारों में ‘आक्रामकता’ दिखाई देती है। आक्रामकता एवं हिंसा का व्यवहार मनुष्य तथा पशुओं दोनों में पाया जाता है।

आक्रामकता का व्यवहार वह व्यवहार है जिसमें एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति या व्यक्तियों को चोट पहुँचाना,पीड़ा देना या दण्ड देना चाहता है। सभी व्यक्तियों में आक्रामकता कुछ न कुछ मात्रा में पायी जाती है। आक्रामकता की अभिव्यक्ति में जब हथियारों का उपयोग किया जाता है तो आक्रामक व्यवहार हिंसा और विध्वंस का रूप धारण कर लेता है। आक्रामकता का यह रूप मानव जाति के लिए बहुत बड़ी चुनौती है। विश्व का कोई भी देश इससे अछूता नहीं है। आज आक्रामकता एवं हिंसा सार्वभौमिक समस्या

बन गयी है। इसके अध्ययन में समाज मनोवैज्ञानिकों ने विशेष अभिरूचि दिखायी है ताकि इन अध्ययनों से इन विध्वंसक व्यवहारों को नियंत्रित करने हेतु उपयोगी उपाय किये जा सकें।

13.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप-

1. आक्रामकता का अर्थ जान सकेंगे।
2. आक्रामकता एवं हिंसा को समझ सकेंगे।
3. आक्रामकता की प्रकृति से अवगत हो सकेंगे।
4. आक्रामकता के सिद्धान्त से परिचित हो सकेंगे।
5. हिंसा के कारणों को जान सकें।
6. आक्रामकता नियंत्रण की जानकारी प्राप्त कर सकें।

13.3 आक्रामकता एवं हिंसा का अर्थ एवं स्वरूप

आक्रामकता-

मिशेल (1981) के अनुसार ''किसी को क्षति पहुँचाने के लिए प्रेरित व्यवहार को आक्रामकता कहते हैं।'' (उससे नुकसान हो सकता है या नहीं भी हो सकता है। (Aggression is behavior motivated by the intent to hurt (which may or maynot inflict harm)- Michel ,1981)

हिलगार्ड (1987) इत्यादि के अनुसार, "आक्रामकता वह व्यवहार है जिसका उद्देश्य किसी व्यक्ति को शारीरिक या मौखिक रूप से चोट पहुँचाना या सम्पत्ति को नष्ट करना होता है"।
Aggression is the behavior that is intended to injure another person (Physically or verbally) or to destroy property" Hillgard etc.

मार्यस (1988) के अनुसार , "आक्रामकता ऐसा शारीरिक या मौखिक व्यवहार है जो किसी को चोट पहुँचाने के उद्देश्य से किया जाता है"।Aggression is defined as thephysical or verbal behavior that is intended to hurt same oneMayer's

उपर्युक्त परिभाषाओं से स्पष्ट है कि आक्रामकता एक ऐसा व्यवहार है जो जानबूझ कर दूसरों को या उसकी सम्पत्ति को हानि पहुँचाने के उद्देश्य से किया जाता हैं। अतः बिना उद्देश्य की परख किये किसी व्यवहार को आक्रामक नहीं कहा जा सकता हैं। एक दन्त चिकित्सक द्वारा सड़े दाँत को निकालना आक्रामक व्यवहार नहीं कहा जा सकता है। क्योंकि उसका उद्देश्य नुकसान पहुचाना नहीं हैं दूसरी तरफ एक हत्यारे द्वारा मंत्री पर गोली चलाने पर मंत्री के बच जाने पर भी यह आक्रामक व्यवहार कहलायेगा , क्योंकि हत्यारे के उक्त व्यवहार का उद्देश्य क्षति पहुँचाना था।आक्रामक व्यवहार प्रकट भी हो सकता है या अप्रकट भी हो सकता है। मंत्री पर हत्या की दृष्टि से गोली चलाना यह प्रकट आक्रामक व्यवहार है। एक राजनैतिक नेता अपने

विरोधी नेता के प्रति तटस्थता का भाव रखते हुए भी इस ढंग से प्रचार कर सकता है जिससे वह अपने विरोधी नेता को हरा कर चुनाव जीत सके। यहाँ उद्देश्य छिपा हुआ है। अतः इसे साधानात्मक आक्रामकता (Instrumental aggression) कहा जाता है । चूँकि कि आक्रामकता से पीड़ित व्यक्ति बचाव का भी प्रयास करता है (Baron and byrne 1987), इसका अर्थ यह हुआ कि यदि पीड़ित उस आक्रामक व्यवहार से बचने की कोशिश नही करता है तो उसे आक्रामक व्यवहार नहीं कहा जायेगा। यह एक अवांछित व्यवहार है। समाज इसे अनुचित मानता है। आक्रामकता का प्रदर्शन शारीरिक रूप में जैसे- मार पीट लूटपाट एवं अन्य प्रकार की हिंसा या मौखिक रूप से भी होता है जैसे बातों के माध्यम से किसी को कष्ट पहुँचाना। आक्रामक व्यवहार हमेशा जीवित प्राणी के ही प्रति प्रदर्षित होता है। यदि एक व्यक्ति घर की चीजों को फेंक कर अपने क्रोध को प्रदर्षित कर रहा है तो इसका व्यवहार तब तक आक्रामक नहीं कहलायेगा जब तक कि किसी जीवित प्राणी को हानि या चोट न पहुँचे।

हिंसा-

आक्रामक व्यवहार और हिंसा संबंधी व्यवहार परस्पर एक दूसरे से संबन्धित है। हिंसा को परिभाषित करते हुए श्रीवास्तव ने लिखा है कि, हिंसा में व्यक्ति शारीरिक बल या पाश्विक बल का प्रयोग करता है जिससे किसी व्यक्ति को चोट या सम्पत्ति का नुकसान हो।

हिंसा के इस अर्थ के आधार पर कहा जा सकता है कि हिंसा एक प्रकार की प्रचण्ड आक्रामकता है। हर प्रकार का आक्रामक व्यवहार हिंसात्मक नही होता है। केवल प्रचण्ड हमला या आक्रामकता को ही हिंसात्मक व्यवहार के अतर्गत रखा जाता है ।व्यक्ति में आक्रामक व्यवहार पहले उत्पन्न होता हैं जब आक्रामक व्यवहार प्रचण्ड आक्रामकता के रूप में बदलता हैं तब व्यक्ति पाश्विक बल के साथ आक्रमण करता है। इस प्रकार का प्रचण्ड आक्रमणकारी व्यवहार हिंसा कहलाता है।

समाज में आजकल हिंसात्मक व्यवहार बढ़ रहा है इसी से अनेक देशों में आतंकवादी हमले हो रहे हैं। भारत में 2002 में संसद पर भी आतंकवादी हमला हो चुका है । इसके अतिरिक्त अन्य आतंकवादी हमलों की मार भी झेलनी पड़ी है। अमेरिका के विश्व व्यापार केन्द्र और सुरक्षा बिल्डिगं पेंटागन पर हुऐ आतंकवादी हिंसात्मक हमले विश्व प्रसिद्ध हैं।

13.4 आक्रामकता एवं हिंसा का स्वरूप एवं विशेषताएं

i. **हानिकारक व्यवहार (Harmful Behaviour) -** आक्रामकता हानिकारक व्यवहार है। इसका उद्देश्य किसी को नुकसान पहुँचाना होता है। क्षति शारीरिक रूप में या मौखिक भी हो सकती है जैसे गाली देना या अपमानित करना। इसमें सम्पत्ति को भी क्षति पहुँचायी जा सकती है।

ii. **सार्वभौमिक गोचर (Universal Phenomena) -** हिंसा तथा आक्रामकता आज हर देश में समस्या बन चुकी है। किसी न किसी मात्रा में हर समाज में आक्रामकता तथा हिंसा का ताण्डव देखने को मिल रहा है।

iii. **सक्रियता एवं निष्क्रियता (Active or Inactive) -** आक्रामकता का प्रदर्शन सक्रिय या निष्क्रिय रूप में भी हो सकता है। किसी को सीधे कष्ट पहुँचाना सक्रिय आक्रामकता है। जब कि किसी के मार्ग में बाधा पैदा करना निष्क्रिय आक्रामकता है ।

iv. **उद्देश्यपूर्ण व्यवहार (Intentional behavior) -** आक्रामकता उद्देश्यपूर्ण होती है। व्यक्ति ऐसा व्यवहार जानबूझ कर करता है ताकि दूसरा व्यक्ति पीड़ित हो या उसको नुकसान पहुँचे।

v. **पीड़ित व्यक्ति द्वारा बचाव (Defence by victim) -** चूंकि कि आक्रामकता तथा हिंसा से लोगों को नुकसान पहुँचता हैं, वे पीड़ा अनुभव करते हैं। अतः ऐसे व्यवहारों से बचाव का प्रयास करते हैं। जैसे हिंसा का जवाब हिंसा से देना या हिंसात्मक परिस्थिति से हट ना।

vi. **वैयक्तिक भिन्नताएं (Individual Differences) -** आक्रामकता की प्रवृत्ति सभी में पाई जाती है। यह सभी में समान नहीं होती है । किसी में अधिक किसी में कम पायी जाती है।

vii. **आक्रामकता के प्रकार (Types of Aggression) -** विद्वेषी आक्रामकता या प्रकट आक्रामकताः इस प्रकार की आक्रामकता क्रोध से उत्पन्न होती है। इसके अन्तर्गत क्रोध के प्रभाव में आकर किसी प्राणी या व्यक्ति को प्रत्यक्ष रूप से मारना पीटना या अन्य प्रकार का नुकसान पहुँचाना आता है।

साधनात्मक आक्रामकता (**Instrumental Aggression**) या परोक्ष आक्रामकता (**Implicit Aggression**) छिप छिप कर किसी को हानि पहुँचाने को साधनात्मक आक्रामकता कहते हैं। यह एक तरह का शीत युद्ध है। दो देशों के बीच युद्ध साधनात्मक आक्रामकता है।

13.5 आक्रामकता के सिद्धांत

आक्रामक व्यवहार की व्याख्या अनेक सिद्धांतों के आधार पर की गई है। आक्रामक व्यवहार के तीन आधार है:-

i. जैविक आधार
ii. मनोवैज्ञानिक आधार
iii. वातावरण जनित आधार

मनोवैज्ञानिक आधार या वातावरण जनित आधार पर आक्रामकता सिद्धांत का वर्णन निम्न प्रकार प्रस्तुत है:-

13.5.1 मूल प्रवृत्ति का सिद्धांत (Instinct Theory)

कुछ मनोवैज्ञानिक तथा विचारक आक्रामक व्यवहार को जन्मजात मानते हैं। ऐसे विद्वानों का मत है कि प्राणियों में लड़ाई ,संघर्ष ,मार पीट या हत्या आदि करने की जन्मजात मूलप्रवृत्ति पाई जाती है। मायर्स (1988) के अनुसार मूलप्रवृत्यात्मक व्यवहार जन्मजात अनार्जित होता है तथा किसी प्रजाति के सभी

सदस्यों में प्रदर्शित होता है।'' (Instinctive behavior is innate unlearned behavior pattern exhibited by all member of species –(Myers 1988))

आक्रामक व्यवहार को जन्मजात मानने वालों में फ्रायड तथा लारेन्ज का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है -

i. फ्रायड का मनोविश्लेषणात्मक सिद्धांत (Freud's Psychanalytic Theory)
फ्रायड ने अपने सिद्धांत में जीवन व मृत्यु दो मूल प्रवृत्तियों की कल्पना की है। 'जीवन प्रवृत्ति ' रचनात्मक तथा उपयोगी कार्यों का संचालन करती है। मृत्यु ,प्रवृत्ति आक्रामकता , हिंसा एवं विध्वंसात्मक कार्यों का संचालन करती है। मृत्यु प्रवृत्ति ' दूसरों को ही आक्रामकता या हिंसा का कार्य करने के लिए प्रेरित नही करती बल्कि व्यक्ति विशेष को अपने ही प्रति विध्वंसक कार्य करने के लिए प्रेरित करती है। व्यक्ति द्वारा आत्महत्या का प्रयास इसी मूल प्रवृत्ति का परिणाम है। विध्वंसक कार्यो पर जीवन मूलप्रवृत्ति द्वारा नियंत्रण का भी प्रयास किया जाता है।

ii. लॉरेन्ज का सिद्धांत (**Lorenz's Theory**) इसे आचारशास्त्रीय सिद्धांत भी कहा जाता हैं।
लारेन्ज भी आक्रामकता को जन्मजात व्यवहार मानते हैं। प्राणी आक्रामक व्यवहारों का प्रयोग अपने अस्तित्व की रक्षा के लिए करते हैं। बलशाली पशु कमजोर पशुओं को मार कर भगा देते हैं। पशुओं की आक्रामकता के आधार पर मानव आक्रामकता को भी समझने का प्रयास किया है । इनका मत है कि यदि यह खर्च नहीं होती हैं तो इसकी मात्रा बढ़ती जाती है। यह प्रक्रिया तब तक जारी रहती है जब तक उसका प्रदर्शन या विस्फोट नहीं हो जाता है। या जब तक उसे निर्मुक्त (Release) मद्ध करने के लिए कोई उचित कारण या परिस्थिति नहीं मिल जाती है। इस प्रकार मूल प्रवृत्ति सिद्धांत के समर्थक आक्रामकता को प्राणी या व्यक्ति की जन्मजात विशेषता मानते हैं। इसका परिवेशीय या वातावरणीय अनुभवों से सम्बन्ध नहीं है।

मूल प्रवृत्ति सिद्धांत की आलोचना

आधुनिक शोधकर्ताओं के अनुसार आक्रामकता को जन्मजात मानना अवैज्ञानिक है। यदि यह जन्मजात होती तो सभी प्राणी में पायी जाती। फिलिपीन्स की टासडे (Tasaday) जनजाति पूर्णतः शान्त होती है जबकि दक्षिण अफ्रिका की यानोमैमो (Yanomamo) जनजाति बहुत आक्रामक होती है (Nance 1975 Eibl –Eibesfeldt 1979)। और भी ऐसे अनेक उदाहरण हैं जो आक्रामकता को वातावरणीय प्रभाव से प्रभावित मानते हैं (Hornstein1976)

यदि आक्रामकता जन्मजात होती तो इसमें परिवर्तन या परिमार्जन सम्भव नहीं होता जबकि अनुकूल परिस्थितियां पैदा करके आक्रामकता में परिमार्जन किया जा सकता है (Dunlop1919 Watson 1919)। मूल प्रवृत्तियों की संख्या स्वयं इसके समर्थक भी निश्चित नहीं कर पाये हैं। (Barash 1979) कूओ (Kuo 1930) ने चूहे और बिल्ली के बच्चां को एक साथ पाल कर, यह देखा कि बिल्ली के बच्चे बड़े होने पर चूहों के बच्चों को कम मारते हैं। इससे भी आक्रामकता के जन्मजात होने का खण्डन होता है। बिल्ली

चूहों की जन्मजात दुश्मन होती है कूओं ने इसे असत्य सिद्ध कर दिया। पुरस्कार या दण्ड द्वारा आक्रामकता को दमित किया जा सकता है, अर्थात इस पर अधिगम आदि का प्रभाव पड़ता है। इससे भी इसके जन्मजात होने का खण्डन होता है। (Bandura 1973)|

13.5.2 कुण्ठा-आक्रामकता सिद्धांत (Frustration Aggression Theory)

डोलार्ड आदि के अनुसार आक्रामकता सदैव किसी कुण्ठा का परिणाम होती है और कुण्ठा सदैव आक्रामकता को जन्म देती है।

Aggression is always a consequence of frustration and "Frustration always leads to some form of aggression.

यहां पर कुण्ठा का तात्पर्य लक्ष्योन्मुख व्यवहार में बाधा या रूकावट पैदा करने से है। व्यक्ति तथा लक्ष्य के बीच बाधा उत्पन्न होने से व्यक्ति में निराशा उत्पन्न होती है। यही कुण्ठा की दशा है। कुण्ठा से ग्रस्त व्यक्ति आक्रामक व्यवहार करता है। लक्ष्य जितना ही प्रबल होगा बाधा उत्पन्न होने पर कुण्ठा की तीव्रता उतनी ही प्रबल होगी। कुण्ठा की पुनरावृत्ति होने पर आक्रामकता अन्तर्नोद मे वृद्धि होने लगती है। स्पष्ट है कि इस सिद्धांत में मूलपवृत्ति सिद्धांत के विपरीत , आक्रामकता की उत्पत्ति तथा उसमें वृद्धि के लिए कुण्ठा पैदा करने वाली दशाओं को उत्तरदायी माना गया है।

इस सिद्धांत की यह भी परिकल्पना है कि आक्रामकता का सीधा प्रभाव कुण्ठा स्रोत पर पड़ता है। स्रोत के उपस्थित न होने पर आक्रामकता का विस्थापन हो जाता है। जैसे:- कोई अधिकारी अपने निचले स्तर के कर्मचारी को भला बुरा कहता है परंतु पूरा गुस्सा नहीं उतार पाता है अतः वह घर आकर अपनी पत्नी पर झल्लाता है, पत्नी अपना गुस्सा बच्चों पर उतारती है। बच्चा क्रोध में अपने कुत्ते को मारता है ,तब तक डाकिया आता है, क्रोधित कुत्ता उसे ही काट लेता है। इससे स्पष्ट है कि यदि कुण्ठा के कारण या स्रोत पर आक्रामकता का प्रदर्शन करना संभव नहीं हो पाता है तो व्यक्ति अपना गुस्सा किसी अन्य व्यक्ति या वस्तु पर उतार सकता है।

कुण्ठा आक्रामकता सिद्धांत का संशोधन (**Revision of Frustration Aggression Theory**) इसमें संशोधित रूप के अनुसार कुण्ठा की दशा में कभी कभी आक्रामकता बढती है, कभी कभी ऐसा नहीं भी होता है। यदि कुण्ठा के बारे में व्यक्ति की धारणा है कि दूसरे पक्ष ने जानबूझ कर ऐसा नहीं किया तो आक्रामकता में वृद्धि नहीं होती है। कुण्ठा आक्रामकता सिद्धांत में कुण्ठा और आक्रामकता के संबन्ध को आवश्यकता से अधिक महत्वपूर्ण माना गया है। जैसे अमुक व्यक्ति ने जैसा व्यवहार किया वैसा न किया होता, तो आक्रामकता बढ जाती , क्योंकि यह सोच लेता है कि अमुक व्यक्ति ने इस बात पर ध्यान नहीं दिया। इसी प्रकार आक्रामकता से संबन्धित वस्तु, संकेत या व्यक्ति की उपस्थिति में आक्रामकता बढ जाती है। जैसे किसी क्रोधित व्यक्ति के सामने कोई औजार (हथियार) पड़ जाये तो उसका गुस्सा और भी बढ़ जाता है। अतः कुण्ठा आक्रामकता सिद्धांत का परिमार्जित रूप अपेक्षाकृत अधिक उचित है।

कुण्ठा आक्रामकता सिद्धांत की आलोचना (**Criticism of Frustration Aggression Theory**) कुण्ठा आक्रामकता परिकल्पना काफी प्रासंगिक लगती हैं फिर भी इसमें कुछ दोष पाये जाते हैं।

a. यह आवश्यक नहीं है कि कुण्ठा की दशा में सदैव आक्रामकता का प्रदर्शन ही होगा (Baron 1977 Zillman 1979) , कभी कभी ऐसा नहीं भी होता है।
b. कुण्ठा आक्रामकता का एक प्रमुख कारण है , परन्तु एक मात्र कारण नहीं है (Bass 1961)
c. हर कुण्ठा आक्रामकता उत्पन्न नहीं करती है , परंतु आक्रामकता से संबन्धित वस्तु ,संकेत या व्यक्ति मौके पर उपस्थित है तो आक्रामकता बढ जाती है (Berkowitz 1968,1981)
d. कुण्ठा आक्रामकता सिद्धांत अपने मूल रूप की अपेक्षा परिमार्जित रूप में अधिक प्रासंगिक पाया गया है। (Myers1988)

13.5.3 सामाजिक अधिगम सिद्धांत (Social Learning Theory)

अनेक आधुनिक विचारकों का मत है कि आक्रामक व्यवहार सामाजिक अधिगम एवं अनुभवों का परिणाम है। ऐसे विद्वानों में वैण्डुरा एवं वाल्टर्स आदि का नाम प्रमुख है। इनके अनुसार बच्चे या वयस्क दूसरों के द्वारा किये जाने वाले आक्रामक व्यवहार को देखकर वैसा ही करना सीखते हैं। यदि वे देखते हैं कि आक्रामक व्यवहार करने वाला पुरस्कार पा रहा है या प्रशंसित हो रहा है तो आक्रामक व्यवहार का अनुकरण सुगमता से कर लिया जाता है। दण्ड की दशा में प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। पशुओं पर किये गये प्रयोगों से ज्ञात हुआ है कि उन्हें प्रशिक्षित करके अधिक से अधिक आक्रामक बनाया जा सकता हैं। किन्तु निराशा की तीव्रता बढ जाने से उनमें सुस्त व दब्बू हो जाने की सम्भावना बढती है। बच्चे भी यदि समझते हैं कि आक्रामक व्यवहार द्वारा लक्ष्यों को प्राप्त किया जा सकता हैं तो वे आक्रामकता का प्रदर्शन अधिक करने लगते हैं इसे प्रेक्षणात्मक अधिगम कहते हैं। मॉडल की आक्रामकता को देखने से बच्चों का संकोच कम होगया । आक्रामकता की प्रवृत्ति बढ़ गई। बच्चों में आक्रामक व्यवहार विकसित करने में परिवारिक स्रोत एवं सामाजिक परिवेश प्रमुख भूमिका निभाते हैं। परिवार में आक्रामकता प्रशंसित होने पर बच्चों में आक्रामकता आती है। बच्चों को दण्डित करने पर भी आक्रामकता बढ़ती है। ये आगे चल कर आक्रामकता द्वारा दूसरों को नियंत्रित तथा अनुशासित करना चाहते हैं तथा कहा भी जाता है कि आक्रामकता , आक्रामकता को ही जन्म देती है। समाज में किशोरों के गैंग के आक्रामक व्यवहार को देखते देखते उनसे कम उम्र वाले बच्चों में भी आक्रामकता बढ़ जाती है। सामाजिक परिवेश में जन संचार के माध्यम भी आते हैं। धारावाहिकों मे मारधाड़ तथा हिंसक घटनाएं बच्चों में आक्रामकता बढ़ाने में विशेष भूमिका निभा रही हैं। इन माध्यमों द्वारा आक्रामकता प्रेक्षण का बच्चों को प्रायः अवसर मिल रहा है ।

संक्षेप में सामाजिक अधिगम सिद्धांत आक्रामक व्यवहार को सीखा हुआ या अर्जित व्यवहार मानता है यदि कोई बालक या व्यक्ति किसी मॉडल व्यक्ति को आक्रामक व्यवहार करके पुरस्कार, प्रशंसा या लक्ष्य प्राप्त करते हुऐ देखता है तो वह भी आक्रामकताप्रदर्शित करके अपना लक्ष्य प्राप्त करना चाहेगा ।

सामाजिक अधिगम सिद्धांत की आलोचना:-

a. इसमें सामाजिक अधिगम को ही आक्रामकता के लिए उत्तरदायी माना गया है। जैविक कारकों की अनदेखी की गयी है , जबकि अनेक अध्ययनों से जैविक कारकों से भी आक्रामकता के संबन्धों की

पुष्टि होती है। जैसे मस्तिष्क के कुछ भागों को उद्दीप्त करने पर व्यक्ति में क्रोध बढ़ जाता है (Mayer 1976) । इसी प्रकार रक्त में शर्करा का स्तर कम होने पर भी आक्रामक व्यवहार बढ़ जाता है।

b. आक्रामकता का प्रेक्षण करने से सभी प्रयोज्य बच्चे आक्रामकता का प्रदर्शन करेंगे , यह आवश्यक नहीं हैं। कुछ बच्चे ऐसा नहीं करते हैं।
c. यह तर्क कि 'आक्रामकता , आक्रामकता को जन्म देती है पूर्णतः सत्य नही है। ऐसा देखा गया है कि दण्ड अधिक कठोर देने पर व्यक्ति दब्बू हो जाता है। (Ginsberg and Allen 1942)
d. आक्रामक व्यवहार सीखने के कारण की अपेक्षा , आक्रामकता सीखने की प्रक्रिया की व्याख्या अधिक अच्छे ढंग से होती है।

13.6 आक्रामकता एवं हिंसा के कारण या कारक

आक्रामकता सिद्धांतों के विवेचन से स्पष्ट है कि आक्रामकता अनेक कारकों से प्रभावित होती है। आक्रामकता संबन्धी व्यवहार का घटित होना इसके निर्धारकों को जटिल अन्तः क्रियात्मक प्रभावों पर निर्भर करता है।

i. **विकर्षणात्मक घटनाऐं (Aversive Events)** - पीड़ा, तापमान या कोलाहल स्वयं एक ऐसी घटनाएं है जो आक्रामकता एवं हिंसा को भड़काने में योगदान करतीं हैं।पीड़ा बढने के साथ साथ हिंसक व्यवहार भी बढ़ जाता हैं (Azrim, 1967) चूहों को विद्युत आघात देने से वे हिंसक व्यवहार करने लगते हैं। वह अपनी प्रजाति सहित अन्य प्रजाति के चूहों एवं गेंद पर आक्रमण करते पाये गये। इस पीड़ा से यदि पलायन करने का अवसर मिले तो वे भाग भी सकते हैं। पीड़ा मनुष्य में भी आक्रामकता उकसाने का कार्य करती है। यह पीड़ा मानसिक हो या शारीरिक इससे आक्रामकता की संभावना बढती है।

ii. **तापमान एवं कोलाहल** -तापमान एवं कोलाहल आक्रामकता के प्रमुख कारण हैं। उच्च तापमान , तीव्र कोलाहल , वायु प्रदूषण एवं धूम्रपान की स्थिति में आक्रामकता बढ़ जाती है। तीव्र गर्मी में व्यक्ति के आक्रामकता के लक्षण और भी बढ़ जाते हैं (Griffitt 1970, Griffitt and Veitch 1971, Bell 1980)। गर्मी के दिनों में शहरों में दंगोंए हत्याओं एव लूटपाट की घटनाओं में काफी वृद्धि हो जाती है (Carlsmith and Anderson 1979, Cotton 1981, Fray 1985) । सामान्यतः उच्च तापमान तथा कोलाहल की दशा में चिड़चिड़ापन तथा आक्रामकता बढ़ जाती है। किसी किसी प्रयोग में सहयोगी प्रयोज्य यह मन बना लेते हैं कि जल्दी जल्दी कार्य समाप्त करके गर्मी से छुटकारा पा लेना है , तो वह आक्रामक व्यवहार में नहीं उलझते हैं ।(Baron 1977)

iii. **आक्रमण** - आक्रमण से प्रतिशोधी आक्रमण उत्पन्न होता है। यही कारण है कि जब एक देश दूसरे पर आक्रमण करता है तो दूसरा भी उस पर बदले में आक्रमण करता है।

iv. **उदोलन -** उत्तेजन स्तर व्यक्ति में आक्रामकता उत्पन्न करता है। अध्ययनों से पता चला है कि उत्तेजना के विभिन्न स्रोत जिनका आक्रामकता से समान्यतः कोई संबंध नहीं होता है, विशेष परिस्थितियों में आक्रामकता उत्पन्न करते हैं।

स्केटर एवं सिंगर (1962) ने अपने अध्ययन में पाया कि एक ही तरह की ड्रग कई समूहों को देने पर सबमें समान उदोलन का प्रभाव नहीं पाया गया। आक्रामक लोगों के साथ रखे गये समूह में ड्रग लेने के बाद आक्रामकता अधिक पायी गई। जो लोग मनमौजी व्यक्तियों के साथ रखे गये वे ड्रग लेने के बाद मस्त दिखायी पड़े। जब उन्हें बता दिया कि ड्रग लेने के बाद उनमें संवेगात्मक उदोलन हो सकता है तो उनमें आक्रामकता या मस्ती के भाव नाम मात्र ही दिखाई पड़े। ऐसी स्थिति में प्रयोज्यों ने उदोलन को ड्रग का परिणाम मान लिया। इससे स्पष्ट हुआ कि शारीरिक, भावनात्मक या संवेगात्मक उदोलन से आक्रामकता पैदा हो सकती है, परन्तु ऐसी दशा में यह भी महत्वपूर्ण है कि व्यक्ति उदोलन के लिए किस कारक को उत्तरदायी मानता है । (ग्रीन इत्यादि 1972) यदि कोई व्यक्ति उदोलन उत्पन्न करने वाले स्रोत को गलत रूप में उत्तरदायी मान बैठता है तो उसमें आक्रामकता और भी बढ़ जाती है (Reisenzein 1983, Zillman and Bryant 1974 , Bryant and Zillman 1979, Zillman et.al.1972) जैसे यदि पहले से ही क्रोधित व्यक्ति को यह पता लग जाये कि समस्या का कारण अमुक व्यक्ति है , तो उसका क्रोध और भी बढ़ जाता है। भले ही वह वास्तव में क्रोध के उदोलन के लिए उत्तरदायी न हो। अनेक अध्ययनों से निष्कर्ष प्राप्त हुआ है कि अश्लील या लैंगिक गतिविधियों या उनसे संबन्धित सामग्री का अवलोकन करने पर उदोलन में वृद्धि हो जाती है, इससे महिलाओं के प्रति आक्रामकता बढ़ जाती है।

इन अध्ययनों से प्रायः यही निष्कर्ष प्राप्त हुआ है कि पुरूष के सामने लैंगिक उदोलन के उत्पन्न करने वाली सामग्रियाँ जैसे पोस्टर, पॉम्फलेट, पत्रिकाऐं फिल्में आदि प्रदर्षित करने से महिलाओं के प्रति यौन आक्रामकता बढ़ जाती है।

v. **टेलीविजन अवलोकन-** आजकल फिल्मों एवं अधिकांश धारावाहिकों में मारपीट झगड़े , लूट मार, हत्या एवं बलात्कार की घटनाएं प्रायः दिखाई जाती हैं। आक्रामक एवं हिंसक दृश्यों को देखने से विभिन्न प्रकार के आक्रामक व्यवहारों में तेजी से वृद्धि हो रही है। बच्चे जिस तरह के हिंसक दृश्यों को देखते हैं वे उसी प्रकार की आक्रामकता का प्रदर्शन भी करते हैं। बन्डूरा एव वाल्टर्स (1963) के अनुसार, आक्रामक एवं हिंसक फिल्में देखने पर बच्चों में सामान्य परिस्थिति की तुलना में आक्रामकता काफी अधिक बढ गई है। इसी प्रकार फिलिप्स (1983) का निष्कर्ष यह है कि हैवीवेट चैम्पियन की प्रतियोगिता देखने के पश्चात अमेरिका में (1973-1978) में दिन प्रतिदिन की हत्याओं की संख्या में वृद्धि हो गई। इससे स्पष्ट है कि आक्रामक एवं हिंसक घटनाओं के निरीक्षण से दर्शको में मारपीट, लूटपाट एवं हत्या आदि की प्रवृत्ति को बढावा मिलता है। आक्रामक एवं हिंसक घटनाओं के अवलोकन से दर्शकों में संकोच की भावना समाप्त हो जाती है। समाज द्वारा आक्रामकता के नकारात्मक मूल्यांकन का भय समाप्त हो जाता है । इस मनोवैज्ञानिक दशा को फेस्टिंगर इत्यादि (1952) ने अवैयक्तिकता का नाम दिया

है। इससे वह हिंसक कार्य में अधिक सक्रिय हो जाता है। समूहों में मारपीट , तोड़फोड़ या प्रदर्शन करने वालों में यह भावना काफी प्रबल हो जाती है । इस प्रकार आक्रामक एवं हिंसक व्यवहारों का अवलोकन करने से दर्शकों में भी ऐसी भावना पैदा हो जाती है।

vi. **कुण्ठा-** लक्ष्य से वंचित हो जाने पर अथवा लक्ष्य प्राप्ति में व्यवधान उत्पन्न होने पर व्यक्ति कुण्ठा या निराशा का अनुभव करने लगता है। कुण्ठा आक्रामकता को जन्म देती है। फलतः वह आक्रामकता जैसे मारपीट, झगड़ा, सामान नष्ट करना आदि का प्रदर्शन करने लगता है। वह कुण्ठा उत्पन्न करने वाले व्यक्ति पर सीधे आक्रमण कर सकता है। इसमें असफल होने पर वह आक्रामकता का विस्थापन भी कर सकता है।

vii. **मादक पदार्थ-** मादक पदार्थ सेवन से आक्रामकता एवं हिंसा बढ़ाने में सहायता मिलती है। उदाहरण के लिऐ शराब पी लेने से आक्रामकता में वृद्धि हो जाती है। इस प्रकार थोड़ी मात्रा में गांजा लेने पर भी आक्रामकता में वृद्धि होती है, परन्तु यदि गांजे की मात्रा बढ़ा दी जाये तो आदमी शान्त हो जाता है। (Taylor and Leonord1983, Taylor etc 1976, Bailey etc 1983)

viii. **जैविक कारक -** कुछ जैविक या अनुवांशिक विशेषताऐं आक्रामकता में सहायता करती हैं (Megargee1966) । आक्रामकता पर व्यक्तित्व संबन्धी कुछ कारकों का प्रभाव पाया गया है। कुछ विद्वानों का निष्कर्ष है कि कम बुद्धि परंतु लम्बे व तगड़े लोगों में आक्रामकता अधिक पायी जाती है। ऐसे भी निष्कर्ष हैं कि मस्तिष्क संरचना असामान्य होने पर आक्रामकता का प्रदर्शन अधिक होता है। (Delgado1969)

अभ्यास प्रश्न

1. किसी को हानि पहुँचाने के उद्देश्य से किया गया व्यवहार ___________कहा जाता है ।
2. यदि आक्रामक उद्देश्य छिपा हुआ हो तो उसे_______________कहते हैं ।
3. फ्रायड के अनुसार आक्रामकता का कारण _______________है ।
4. लारेन्ज के अनुसार प्राणी आक्रामक व्यवहार _______________करता है।
5. आक्रामकता सदैव कुण्ठा का परिणाम होती है यह _______________का कथन है।
6. आक्रामकता के सामाजिक अधिगम सिद्धांत का श्रेय _______________को दिया जाता है।
7. पीड़ा में वृद्धि से आक्रामकता में _______________होती है ।
8. तापमान एवं ध्वनि प्रदूषण _______________में वृद्धि करते हैं।
9. दूरदर्शन पर ____________का अवलोकन बच्चों मे आक्रामकता बढ़ा रहा है।
10. समाज द्वारा आक्रामक व्यवहारों का नकारात्मक मूल्यांकन कोई संकोच/भय न होना कहलाती है______________।

13.7 सारांश

आक्रामक व्यवहार उस व्यवहार को कहा जाता है जो कि सिर्फ हानि या क्षति ही नहीं पहुचा सकता है बल्कि हानि या क्षति पहुँचाने का उद्देश्य भी रखता है। मूलप्रवृत्ति सिद्धांत के समर्थक आक्रामकता को प्राणी या व्यक्ति की जन्मजात विशेषता मानते हैं। इसका परिवेशीय या वातावरणीय अनुभवों से संबंध नहीं हैं। डोलार्ड के अनुसार' आक्रामकता सदैव किसी कुण्ठा का परिणाम होती है। इसमें कुण्ठा या आक्रामकता के संबन्ध पर अधिक जोर दिया गया है। सामाजिक अधिगम सिद्धांत आक्रामक व्यवहार को सीखा हुआ या अर्जित व्यवहार मानता है। पीड़ा तापमान, एवं कोलाहल, आक्रमण आदि विकर्षणात्मक घटनाऐं आक्रामकता एवं हिंसा भड़काने में योगदान करती हैं। शारीरिक भावनात्मक या संवेगात्मक उदोलन से आक्रामकता पैदा होती है। अश्लील या लैंगिक गतिविधियों या उनसे संबधित सामग्रियों का अवलोकन करने पर उदोलन में वृद्धि होती है। आक्रामक एवं हिंसक फिल्में देखने से बच्चों में सामान्य परिस्थिति की तुलना में आक्रामकता काफी बढ़ जाती है। अवैयक्तिकता की भावना आ जाने पर उस पर संकोच का प्रभाव घट जाता है एवं प्रतिबन्धों के प्रभाव से मुक्त हो जाने पर अधिक हिंसक व्यवहार करता है। मादक पदार्थ एवं कुछ जैविक या अनुवांशिक विशेषताऐं जैसे व्यक्तित्व , लंबे तगड़े आकार एवं मस्तिष्कीय संरचना का असामान्य होना आदि आक्रामकता वृद्धि में सहायता करती है। प्रचंड आक्रामकता हिंसा कहलाती है।

13.8 शब्दावली

1. **क्षति** - हानि , नुकसान
2. **सार्वभौमिक** - सर्वव्यापक , पूरे विश्व में
3. **साधनात्मक** - अव्यक्त , छिपा हुआ
4. **कुण्ठा** - निराशा
5. **प्रेक्षणात्मक अधिगम** - देखकर सीखना
6. **विकर्षणात्मक** - कष्टपूर्ण, अलगाव संबधी
7. **उदोलन** - उत्तेजना
8. **अवैयक्तिकता** - अमानवीय व्यवहार करने में व्यक्ति के संकोच की भावना का समाप्त होना।

13.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. आक्रामकता
2. साधनात्मक आक्रामकता
3. मृत्यु मूलप्रवृत्ति
4. रक्षार्थ
5. डोलार्ड

6. वैण्डुरा
7. वृद्धि
8. आक्रामकता
9. आक्रामकता मॉडलों
10. अवैयक्तिकता की प्रवृत्ति

13.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. सिंह आर. एन. - आधुनिक सामाजिक मनोविज्ञान 2007-2008, अग्रवाल पब्लिकेशन आगरा-
2. 2. सिंह आर. एन. (2005) आधुनिक सामाजिक मनोविज्ञान, विनोद पुस्तक मंन्दिर आगरा - 2
3. सिंह ए.के - 2002 समाज मनोविज्ञान की रूपरेखा मोती लाल बनारसी दास दिल्ली
4. सिंह ए.के. (2000) उच्चतर सामान्य मनोविज्ञान मोती लाल बनारसी दास दिल्ली
5. श्रीवास्तव, डी. एन.सामाजिक मनोविज्ञान दसवां संस्करण, साहित्य प्रकाशन आगरा
6. श्रीवास्तव, डी. एन एवं अन्य,(2000-2001) आधुनिक समाज मनोविज्ञान, एच.पी .भार्गव बुक हाउस आगरा।
7. भटनागर ए.बी.एवं अन्य, डेवलपमेन्ट आफ लर्नस एण्ड टीचिंग लर्निगं प्रोसेस ,विनय राखेजा C/O लाल बुक डिपो मेरठ
8. रोवर्ट , ए बैरन एवं डान बैरन (नौवा संस्करण) पीयर्सन एडूकेशन , (सिंगापुर) प्रा. लि. इण्डियन ब्रांच 482 एम. आइ दूई पटपरगंज दिल्ली 110092 इंडिया।
9. त्रिपाठी आर.बी. एवं सिंह आर. एन. (2002) व्यक्तित्व का मनोविज्ञान ,सुमित भार्गव , गंगा सरन एण्ड ग्रेण्ड सन्स सी. के. 37/44 बी बॉसफाटक वाराणसी
10. मुहम्मद सूलेमान (2006) सामान्य मनोविज्ञान, मूल प्रक्रियाऐं एवं संज्ञानात्मक प्रक्रियाएं ।
11. मोतीलाल बनारसी दास दिल्ली
12. अग्रवाल विमल (2010-11) मनोविज्ञान एस.बी.पी.डी. पब्लिकेशन आगरा।

13.11 निबंधात्मक प्रश्न

1. आक्रामकता को स्पष्ट कीजिए एवं उसके प्रकारों का वर्णन कीजिए।
2. क्या आक्रामकता जन्मजात है? आक्रामकता के मूलप्रवृत्ति सिद्धान्त के परिपेक्ष्य में स्थिति को स्पष्ट कीजिऐं।
3. आक्रामकता कुण्ठा का परिणाम है। इस कथन की वैद्यता की जाँच कुण्ठा आक्रामकता के सिद्धांत के संदर्भ में कीजिए।
4. आक्रामकता के सामाजिक अधिगम सिद्धांत की विवेचना कीजिए।
5. आक्रामकता एवं हिंसा के निर्धारिकों का संक्षेप में वर्णन कीजिए

6. संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए-
   i. उदोलन
   ii. हिंसा एवं टेलीविजन
   iii. विकषर्णात्मक घटनाएं

इकाई 14 - तनावः कारण एवं प्रभाव , खराब स्वास्थ्य के कारण , व्यक्ति चरित्रण तथा स्वास्थ्य,स्वस्थ जीवन शैली को प्रोत्साहित करना

इकाई संरचना-

14.1 प्रस्तावना
14.2 उद्देश्य
14.3 तनाव- अर्थ एवं विशेषताएं/ स्वरूप
    14.3.1 कारण या स्रोत
    14.3.2 प्रभाव
14.4 खराब स्वास्थ्य के कारण
    14.4.1 स्वास्थ्य का आशय
    14.4.2 खराब स्वास्थ्य का कारण /कारक
14.5 व्यक्तिगत चरित्रण तथा स्वास्थ्य
    14.5.1 व्यक्तित्व की परिभाषा एवं विशेषता
    14.5.2 व्यक्तिगत विशेषताऐं तथा स्वास्थ्य
14.6 स्वास्थ्य जीवनशैली को प्रोत्साहित करना
    14.6.1 एडलर का वैयक्तिक मनोविज्ञान का सिद्धांत
    14.6.2 जीवनशैली अर्थ प्रकार एवं निर्माण
    14.6.3 स्वस्थ जीवन शैली का निर्माण एवं प्रोत्साहन
14.7 सारांश
14.8 शब्दावली
14.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
14.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
14.11 निबंधात्मक प्रश्न

14.1 प्रस्तावना

आज व्यक्ति की भौतिक सुखों में अभिरूचि बढ़ रही है। इससे समाज में नई समस्याओं का उत्पन्न होना स्वाभाविक है। ये समस्याएं व्यक्ति के व्यवहार को जटिलता की ओर ले जा रही हैं।

अपने लक्ष्य तक पहुँचने में व्यक्ति को अनेक बाधाओं का सामना करना पड़ता है। इससे यह तनावग्रस्त हो जाता है। अपने इस प्रयास में यदि वह अपने लक्ष्य को पाने में असमर्थ रहता है तो तनाव और भी बढ़ जाता है। परिणाम स्वरूप आज व्यक्ति शारीरिक रोगों के साथ साथ मानसिक रोगों से अधिक पीड़ित हो रहा है। व्यक्ति के जीवन में प्रभावपूर्ण सामायोजन के लिए शारीरिक स्वास्थ्य के साथ -साथ मानसिक स्वास्थ्य की विशेष आवश्यकता होती है। अतः स्वास्थ्य एक ऐसा आयाम है जिस पर आज मनोवैज्ञानिकों का ध्यान गम्भीरता के साथ केन्द्रित हुआ है। लोगों में स्वास्थ्य के प्रति सतर्कता में काफी वृद्धि हुई है। विदेशों में स्वास्थ्य मनोविज्ञान एक अत्यधिक लोकप्रिय विधा के रूप में स्थापित हो चुका है। इसका कारण यह है कि स्वास्थ्य के प्रत्येक पक्ष पर मनोवैज्ञानिक कारकों का प्रभाव पड़ता है। स्वास्थ्य के संबंध में एक कहावत है कि निवारण से रोकथाम अधिक अच्छी होती है। अतः स्वास्थ्य अनुरक्षण के लिए सभी लोगों को जागरूक रहने की विशेष आवश्यकता है।

14.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप इस योग्य हो सकेंगे किः

1. तनाव के कारण एवं प्रभाव को जान सकें ।
2. खराब स्वास्थ्य कारणों से अवगत हो सकें तथा उससे बचने के उपाय कर सकें।
3. व्यक्तिगत चरित्रण तथा स्वास्थ्य के विषय में समझ विकसित कर सकें।
4. स्वस्थ जीवन शैली को जान सकें तथा स्वास्थ्य अनुरक्षण में स्वस्थ जीवन शैली को अपना सकें।
5. लोगों में स्वस्थ रहने के लिए जागरूकता उत्पन्न कर सकें।

14.3 तनाव (Stress) अर्थ एवं विशेषताएं /स्वरूप-

तनाव या प्रतिबल आधुनिक समाज की एक बड़ी समस्या है। लगभग 75 प्रतिशत रोगों का कारण यही तनाव होता है। कुछ मनोवैज्ञानिकों ने तनाव को उद्दीपक (Stimulus) कारकों के रूप में समझाने की कोशिश की है। कोई भी घटना या परिस्थिति जो व्यक्ति को असाधारण अनुक्रिया करने के लिए बाध्य करता है, तनाव कहलाता है। घटनायें जैसे भूकम्प , आगजनी , नौकरी छूटना , व्यवसाय का खत्म हो जाना , प्रियजनों की मृत्यु आदि कुछ प्रमुख घटनाएं हैं जो व्यक्ति में तनाव उत्पन्न करती हैं। ऐसे भौतिक सामाजिक एवं पर्यावरणीय कारकों को , जो तनाव उत्पन्न करते हैं , आसेधक (Stressor) कहा जाता है।

कुछ मनोवैज्ञनिकों ने तनाव को अनुक्रिया के रूप में परिभाषित करने की कोशिश की है। जब व्यक्ति, इस विशेष तरह की मनोवैज्ञानिक अनुक्रियाएं जैसे चिंता, क्रोध, आक्रामकता आदि एवं दैहिक अनुक्रियाएं जैसे पेट की गड़बड़ी , नींद न आना, रक्तचाप में वृद्धि आदि दिखलाता है, तो हम कहते हैं कि व्यक्ति में तनाव उत्पन्न हो गया है।

“तनाव से तात्पर्य शरीर द्वारा आवश्यकता अनुसार किए गए अविशिष्ट अनुक्रिया से होता है”।

Hans Selye: - The Stress of life 1979 p 40

इस परिभाषा में तनाव को एक अविशिष्ट अनुक्रिया कहा गया है, जिससे सेली का तात्पर्य यह था कि ऐसी अनुक्रियाएं किसी खास तरह के आसेधक या तनाव उत्पन्न करने वाले उद्दीपक से संबंधित नहीं होती हैं। बल्कि एक ही तरह की अनुक्रियाएं तनाव उत्पन्न करने वाले कोई भी उद्दीपक द्वारा उत्पन्न की जा सकती हैं।

मनोवैज्ञानिकों का तीसरा समूह वह है जिसने उपर्युक्त दोनों ही दृष्टिकोणों के अनुसार तनाव को न सिर्फ उद्दीपक न ही सिर्फ अनुक्रिया बल्कि इन दोनों के सम्बंध के आधार पर परिभाषित करने की कोशिश की है। ऐसे मनोवैज्ञानिकों का मत है कि कुछ परिस्थिति या घटनाएं निश्चित रूप से ऐसी होती हैं जो सभी व्यक्तियों के लिऐ तनावपूर्ण होती हैं। कई ऐसी भी घटनाएं या परिस्थितियां होती हैं जो कुछ व्यक्तियों में ही तनाव उत्पन्न कर सकती हैं। अतः तनाव के उद्दीपक के रूप में सार्थक ढंग से परिभाषित नहीं किया जा सकता हैं। उसी तरह से तनावपूर्ण घटनाओं के प्रति की जाने वाली अनुक्रियाओं यहा तक कि दैहिक अनुक्रियाओं को भी मनोवैज्ञानिक कारकों द्वारा आसानी से प्रभावित किया जा सकता हैं। अतः मात्र अनुक्रिया के रूप में भी तनाव को ठीक ढंग से समझा नहीं जा सकता।

संबंधात्मक उपागम के अनुसार तनाव व्यक्ति तथा वातावरण , जिससे व्यक्ति को खतरा महसूस होता है तथा जो उनके साधनों को चुनौती देता है , के बीच एक खास संबन्ध को प्रतिबिम्बित करता है। इस उपागम के प्रमुख समर्थक लेजारस एवं फोल्कमैन (1984) एवं टेलर (1991) रहे हैं।

“हम लोग तनाव को एक आन्तरिक अवस्था के रूप में परिभाषित करते हैं जो शरीर के दैहिक मागों (बीमारी की अवस्था, व्यायाम ,अत्यधिक तापक्रम आदि) या वैसे पर्यावरणी एवं सामाजिक परिस्थितियां, जिसे सचमुच में हानिकारक , अनियन्त्रण योग्य तथा निपटने के मौजूद साधनों को चुनौती देने वाले के रूप में मूल्यांकित किया जाता है, से उत्पन्न होती हैं”। Morgan, king , Weisz & schopler Introduction to Psychology 1986,p321

बैरोन (Baron 1992) ने भी तनाव को कुछ इसी अर्थ में परिभाषित किया है- “तनाव एक ऐसी बहुआयामी प्रक्रिया है जो हम लोगों में वैसी घटनाओं के प्रति अनुक्रिया के रूप में उत्पन्न होती है, जो हमारे दैहिक एवं मनोवैज्ञानिक कार्यों को विघटित करता है , या विघटित करने की धमकी देता है”। Baron Psychology 1992 p 443

उपरोक्त दोनों परिभाषाओं का विश्लेषण करने पर तनाव के स्वरूप के बारे में निम्नलिखित विशेषताऐं प्रकाश में आयेंगी।

i. तनाव एक बहुआयामी प्रक्रिया है, जो आसेधकों के मूल्यांकन के बाद उसके प्रति की गयी एक तरह की अनुक्रिया है।

ii. सामान्यतः यह समझा जाता है कि तनाव जीवन के नकारात्मक घटनाओं या दुर्भाग्यपूर्ण घटनाओं से होता है परन्तु तनाव स्वीकारात्मक घटनाओं से भी होता है जैसे उच्च कुल में शादी होना, अच्छे पद पर पदोन्नत होना, बहुत बड़ा पुरस्कार पाना आदि।

iii. मशहूर कैनेडियन शरीरशास्त्री हंस सेली ने तनाव को दो श्रेणियों में बांटा है-स्वीकारात्मक तथा नकारात्मक तनाव, स्वीकारात्मक तनाव को यूस्ट्रेस (Eustress) तथा नकारात्मक तनाव को डिस्ट्रेस (Distress) कहा जाता है।

iv. तनाव में जो घटनाएं , परिस्थितियां अदि होती हैं (जिनसे तनाव उत्पन्न होता है) वे व्यक्ति के नियंत्रण के बाहर होती हैं। परिस्थिति के नियंत्रण में आने पर तनाव कम हो जाता है।

v. तनाव में मनोवैज्ञानिक तथा दैहिक दोनों प्रकार की अनुक्रियाएं होती हैं। तनाव थोड़े समय के बाद समाप्त हो सकता है या लम्बे समय तक चल सकता है। यह बहुत कुछ तनाव उत्पन्न होने वाली घटनाओं या परिस्थितियों के स्वरूप पर निर्भर होता है।

vi. अतः यह कहा जा सकता है कि तनाव , परिस्थिति या घटना का मूल्यांकन करने के बाद उसके प्रति की गयी एक विशेष अनूक्रिया होती है जिसमें व्यक्ति अपने मानसिक एवं दैहिक कार्यो को विघटित होते पाता है।

14.3.1 तनाव के कारण या स्रोत

मनोवैज्ञानिकों ने अध्ययन के आधार पर तनाव के कई कारकों की सूची भी तैयार की गई हैं। प्रमुख कारकों को निम्नवत प्रस्तुत किया जा रहा है-

i. **तनावपूर्ण जीवन की घटनाएं-**मानव जीवन में सुखद एवं दुखद दोनों प्रकार की घटनाऐं होती है। व्यक्ति को इन दोनों घटनाओं के साथ पुनर्समायोजन करना पड़ता है। ऐसी घटनाओं के प्रति जब व्यक्ति ठीक ढंग से समायोजन नहीं कर पाता है तो वे तनाव उत्पन्न करती हैं। व्यक्ति में दैहिक एवं सांवेगिक विकृतियां उत्पन्न कर देती हैं। कोई भी जीवन घटना तनावपूर्ण होगी या नहीं यह बहुत कुछ व्यक्ति के व्यक्तिगत इतिहास एवं वर्तमान जीवन परिस्थिति पर निर्भर करता है। ऐसा देखा गया है कि कोई घटना एक व्यक्ति में अधिक तनाव उत्पन्न करती है , परंतु वही घटना दूसरे व्यक्ति में तनाव उत्पन्न नहीं करती।

ii. **प्रेरकों का संघर्ष -** जब अभिप्रेरकों के बीच संघर्ष होता है तो इससे व्यक्ति में तनाव उत्पन्न होता है। जिस अभिप्रेरक की तुष्टि नहीं होती है तो इससे उत्पन्न कुंठा तनाव का कारण बन जाती है।
उदाहरण-जैसे एक छात्र कक्षा में उत्तम अंक पाने में असफल रहता है परंतु खेल में उसका प्रदर्शन सबसे अच्छा रहता है। शिक्षा के क्षेत्र में असफलता उसमें तनाव उत्पन्न करती है। व्यक्ति के जीवन में कई ऐसे मानसिक संघर्ष होते हैं जो तनाव उत्पन्न करते हैं। इनमें सहयोग बनाम प्रतियोगिता, स्वतंत्रता बनाम निर्भरता, घनिष्टता बनाम पृथकता तथा आवेग भी अभिव्यक्ति बनाम नैतिक मानक प्रमुख हैं। यौन एवं आक्रामकता के सामाजिक मानक व्यक्ति की इच्छा से टकराते हैं। इससे भी तनाव उत्पन्न होते हैं। यदि नैतिक मानकों की अवहेलना की जाती है तो

दोष भाव के कारण तनाव उत्पन्न होता है। अतः विरोधी अभिप्रेरकों के बीच समझौते का प्रयास अपने आप में तनाव की उत्पत्ति करता है।

iii. **दिन प्रतिदिन की उलझन-** मानव जीवन में प्रतिदिन छोटी बड़ी, महत्वपूर्ण घटनाएं तना पैदा करती हैं। इस तथ्य की पुष्टि, लेजारस तथा उनके सहयोगी (Lazarus et al 1985) एवं कैनर तथा उनके सहयोगी (Kanner et al 1981) द्वारा किये गये अध्ययनों से होती है। यह उलझन निम्न प्रकार की हो सकती हैं –

a. पर्यावरणीय उलझन- इसमें शोरगुल , आवाज , अपराध , पास पड़ोस से होने वाली बकझक आदि रखे गये हैं।
b. घेरेलू उलझनें-इसमें भोजन बनाना , बर्तन धोना , घर की सफाई कपड़ा या अन्य समान को खरीदना आदि से संबद्ध कारकों को रखा गया है।
c. आन्तरिक भाव से सम्बद्ध उलझन-इसमें अकेले होने का भाव, किसी से मन मुटाव व झगड़ा हो जाने का भाव आदि कारकों को रखा गया हैं।
d. समयाभाव से उत्पन्न उलझन-इसमें बहुत सारी चीजों को एक दिये गये समय के भीतर पूरा कर लेने तथा एक ही साथ बहुत सारे उत्तरदायित्वों को निभाने आदि कारकों को रखा गया है।
e. आर्थिक उत्तरदायित्वों से उत्पन्न उलझन-इसमें धन बचाने तथा कमाने से सम्बंधित कारकों तथा उनकी आर्थिक जवाबदेही स्वीकार करना आदि सम्मिलित होता है, जिनका भार सामाजिक एवं कानूनी रूप से सचमुच में उन पर नहीं पड़ना चाहिए था।
f. कार्य उलझन-कार्य से असंतुष्टि , पदोन्नति के अवसर का न होना तथा किसी समय कार्य से हटाए जाने की संभावना आदि को रखा गया है।

iv. **कार्य से उत्पन्न तनाव-**व्यक्ति जो कार्य करता है ,उससे संबंधी कुछ कारक हैं जो उसमें तनाव उत्पन्न करते हैं। जैसे किसी कर्मचारी को कम समय में बहुत काम करने को कहा जाता है तो तनाव उत्पन्न होता है। यदि कार्य स्थल का वातावरण , जैसे रोशनी ,हवा ,शोरगुल , नियंत्रण आदि का ठीक प्रबंध नहीं हैं तो इससे भी उसमें कार्य असंतुष्टि होती है जिससे तनाव उत्पन्न होता हैं। भूमिका संघर्ष की स्थिति में किसी कार्यपालक या प्रबंधक से कर्मचारियों कि विभिन्न समूहों द्वारा भिन्न भिन्न प्रत्याशा विकसित होती हैं , जिसे पूरा करना व्यवस्थापक के लिए संम्भव नहीं हो पाता जिसके परिणाम स्वरूप उसमें तनाव उत्पन्न होता है।

v. **पर्यावरणी स्रोत -**भूकम्प, आगजनी ,तीब्र आँधी , तूफान आदि कुछ ऐसे ही कारक हैं जो व्यक्ति में तनाव पैदा करते हैं। (Kasl 1990) के अनुसार इन घटनाओं की प्रबलता खत्म होने के बाद अनुभूति के द्वारा काफी तनाव उत्पन्न होता है। मानव द्वारा निर्मित पर्यावरणीय कारक जैसे शोर गुल , प्रदूषण , अणु परीक्षण (nuclear test) से उत्पन्न स्थिति कुछ ऐसे कारकों के उदाहरण हैं , जिनसे व्यक्ति को तनाव उत्पन्न होता है। (Cohen et al 1986 & Baurn et al 1983)

14.3.2 प्रभाव

इसे तनाव की अनुक्रिया या प्रतिक्रिया भी कहते हैं। यह दो प्रकार की होती हैं

- मनोवैज्ञानिक प्रभाव /प्रतिक्रियाएं
- दैहिक प्रभाव/प्रतिकियाएं

मनोवैज्ञानिक प्रतिक्रियाएं/प्रभाव- तनाव में व्यक्ति की मानसिक कार्यों में एक तरह का विघटन हो जाता है

i. संज्ञानात्मक विघटन:- तनाव में व्यक्ति के संज्ञानात्मक कार्य में एक तरह की असामान्यता आ जाती हैं। एकाग्रता की क्षमता कम हो जाती है। जिन व्यक्तियों में सतर्क एवं चौकन्ना रहने की प्रवृत्ति पहले से रहती है वे तनाव की स्थिति में और अधिक सतर्क और चौकन्ना हो जाते हैं। याद्दाश्त कम हो जाती है। आक्रमकता बढ़ जाती है।

ii. सांवेगिक अनुक्रियाऐं- तनाव की स्थिति में व्यक्ति में निम्नलिखित सांवेगिक क्रियाएं उत्पन्न हो जाती हैं-

   a. चिंता:- सामान्य चिंता में व्यक्ति तनाव उत्पन्न करने वाली परिस्थितियों के साथ समायोजन करने का प्रयास करता है। इस प्रकार की चिन्ता ;स्नायुविकृति चिन्ताद्ध में व्यक्ति इतना डर जाता है कि उसमें ऐसी परिस्थितियों का सामना करने की क्षमता लगभग समाप्त हो जाती है। वह अपने आपको बेसहारा महसूस करता है। फ्रायड के अनुसार , चिंता का कारण अचेतन का संघर्ष होता है।
   b. क्रोध एवं आक्रामकता:-यह दूसरी सांवेदिक अवस्था है। अध्ययनों से पता चला है कि तनाव उत्पन्न करने वाला उद्दीपक या परिस्थिति के प्रति प्राणी में पहले क्रोध उत्पन्न होता है और ऐसे उद्दीपक प्राणी के सामने अधिक समय तक बने रहें तो उनके प्रति आक्रामकतापूर्ण व्यवहार भी करने लगता है। यदि लक्ष्य दिखाई नहीं देते हैं तो आक्रामकता किसी अन्य वस्तु या व्यक्ति की ओर विस्थापित हो जाती है।
   c. भाव शून्यता तथा विषाद:-सामान्यतः यह देखा गया है कि अगर तनावपूर्ण परिस्थिति व्यक्ति के सामने बनी होती है और व्यक्ति उससे निपटने में सफल नहीं होता है तो वह उसके प्रति भावशून्यता या उदासीनता विकसित कर लेता है जो बाद में व्यक्ति में विषादी प्रवृत्ति उत्पन्न कर देता है।

दैहिक प्रतिक्रियाएं/प्रभाव- तनाव की स्थिति उत्पन्न होने पर प्रायः व्यक्ति में पेट की गड़बड़ी ,हृदय गति का असामान्य होना ,श्वसन गति में परिवर्तन आदि होते हैं। इन क्रियाओं को दो भागों में बाँटा जा सकता है।

i. आपात कालीन अनुक्रियाएं- ऐसी अनुक्रियाओं के माध्यम से शरीर में लीवर अत्यधिक मात्रा में चीनी का उत्सर्जन करता है ताकि शरीर की मांसपेशियों को अधिक शक्ति मिल सके। शरीर में

कुछ ऐसे हारमोन्स निकलते हैं जो चर्बी तथा प्रोटीन को चीनी में बदल देते हैं ,जिससे शारीरिक कार्य के लिए पर्याप्त उर्जा मिलने लगती हैं। लार तथा श्लेष्मा की मात्रा में काफी कमी आ जाती हैं ,ताकि फेफड़े को अधिक वायु मिलने में कोई रूकावट न हो। शरीर का प्लीहा अधिक मात्रा में रक्त लाल कर्णिकाओं का उत्सर्जन करते हैं ताकि अधिक से अधिक आक्सीजन शरीर के अंगों को मिल सके।

उक्त सभी तरह के आपातकालीन क्रियाओं का उद्देश्य मात्र एक ही होता है, तनाव उत्पन्न करने वाली परिस्थितियों के साथ ठीक ढंग से निपटना तथा उसके साथ उपयुक्त समायोजन करना। ये सभी दैहिक अनुक्रियाऐं स्वायत्त तंत्रिका तंत्र ,अन्तस्त्रावी ग्रन्थि तथा पियूष ग्रन्थि की मदद से नियमित एवं नियंत्रित होती हैं। यह दैहिक क्रियाएं जटिल होने के साथ - साथ जन्मजात होती हैं। कैनन (Canon 1920) ने इन क्रियाओं को भिड़ो या भागो अनुक्रिया कहा है। सेली (Selye 1979) ने इसे चेतावनी प्रतिक्रिया कहा है। क्योंकि ऐसी अनुक्रियाएं व्यक्ति को परिस्थिति से भिड़ने या भाग जाने के लिऐ प्रेरित करती हैं।

ii. सामान्य अनुकूल संरक्षण- (General Adaptation Syndrome GAS)सेली (1979) द्वारा यह प्रतिपादित किया गया कि यदि आसेधक (Stress) या तनाव उत्पन्न करने वाले उद्दीपकों से लगातार लम्बे अरसे तक घिरा रहना पड़े उसमें अनुकूलन की स्थिति आ जाती हैं ये क्रियाएं तीन अवस्थाओं में होती हैं:-

a. चेतावनी प्रक्रिया की अवस्था- जब व्यक्ति आसेधक (Stressor) से घिर जाता है और उससे प्रभावित हो जाता हैं तो उस प्रारम्भिक अवस्था में जो शारीरिक परिवर्तन होता है उसे चेतावनी प्रतिक्रिया अवस्था कहते हैं। चेतावनी अवस्था के अन्तर्गत, आघात अवस्था , में शारीरिक तापक्रम तथा रक्त चाप गिर जाता है। हृदय गति कम हो जाती हैं तथा मांसपेशियां सुस्त हो जाती हैं। इसके तुरंत बाद प्रतिघात अवस्था उत्पन्न होती है जिसमें शरीर अपने रक्षा प्रक्रमों को बढा देता है और सभी तरह की आपात कालीन अनुक्रियाएं जैसे हृदय गति , रक्तचाप एवं श्वसन आदि में तीव्रता आ जाती है। परिणाम स्वरूप आसेधक से निपटने के लिए प्रतिरोध क्षमता बढ़ने लगती है।
b. प्रतिरोध की अवस्था- जब शरीर आसेधक की निरंतर मौजूदगी से उत्पन्न प्रभाव को अवरूद्ध करता है तब प्रतिरोध की अवस्था उत्पन्न होती है। इस अवस्था में शरीर में कुछ हारमोन्स निकलते हैं जिनसे प्रतिरोधक क्षमता में वृद्धि हो जाती है। इन हारमोंन्स की सहायता से शरीर अपनी मुख्य प्रकिया को मजबूत कर आसेधक प्रभाव से अपने आपको बचाता हैं।
c. समापन की अवस्था-इस अवस्था में मौलिक आसेधक तथा नये आसेधक दोनों की ही प्रतिअनुक्रिया करने की क्षमता काफी कम हो जाती है , प्राणी शिथिल पड़ जाता है। वह निष्क्रिय सा हो जाता है तथा बीमार पड़ जाता है। यह भी देखा गया है कि आसेधक उत्पन्न हारमोन का स्तर अधिक समय तक बना रहने से व्यक्ति में आंत का घाव , दमा, उच्च रक्त

चाप , कैंसर के होने की संभावना एवं मधुमेह आदि रोग उत्पन्न हो जाते हैं और व्यक्ति की मृत्यु की संभावना काफी बढ़ जाती है।

14.4 खराब स्वास्थ्य के कारण

स्वास्थ्य का आशय- विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुसार ''स्वास्थ्य का आशय ,शारीरिक, मानसिक एवं सामाजिक दृष्टि से पूर्णतः स्वस्थ होने से है न कि केवल शारीरिक बीमारियों की अनुपस्थिति से''। आजकल स्वास्थ्य के अन्तर्गत आध्यात्मिक स्वास्थ्य को भी सम्मलित किया जा चुका है। स्वास्थ्य का यह नवीन क्षेत्र है। इस प्रकार स्वास्थ्य के निम्नलिखित आयाम हैं।

a. शारीरिक स्वास्थ्य-शारीरिक दृष्टि से स्वस्थ व्यक्ति सतर्क क्रियाशील, उर्जायुक्त ,ओजस्वी प्रतीत होता है। जैसे चमकदार बाल, चिकनी त्वचा , चमकीली आँखें , मजबूत जबड़े , स्वस्थ दांत, चौरस उदर , सामान्य वजन , सीधा शरीर ,विकसित मांसपेशियां , पर्याप्त स्नायुक , नियंत्रण , भूख का समय से लगना , सामान्य पाचन , एवं गहरी निद्रा का आना अच्छे स्वास्थ्य के लक्षण हैं।

b. **मानसिक स्वास्थ्य-** शारीरिक रूप से स्वस्थ होने के साथ साथ व्यक्ति को मानसिक रूप से भी स्वस्थ रहना चाहिए ताकि वह जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में समायोजन कर सके। जहोदा (1950) के अनुसार उत्तम मानसिक स्वास्थ्य के 5 मापदण्ड हैं:-मानसिक बिमारी की अनुपस्थिति , व्यवहार में सामान्यता , वातावरण के साथ समायोजन , संगठित व्यक्तित्व एवं वास्तविकता का सही प्रत्यक्षीकरण। सारसन एवं सारसन (2002) के अनुसार मानसिक रूप से स्वस्थ व्यक्ति का चिंतन तर्कपूर्ण होता हैं , चुनौतियों का समुचित सामना करता है और संवेगात्मक स्थिरता पाई जाती है।

c. **सामाजिक स्वास्थ्य-** इसका आशय है व्यक्ति का अपने परिवार या परिवेश के लोगों के साथ समायोजन एवं सामंजस्य। परिवार एवं परिवेश से सामंजस्य जितना अधिक होगा सामाजिक स्वास्थ्य उतना ही अधिक अच्छा होगा। उत्तम सामाजिक स्वास्थ्य के लिए मानसिक स्वास्थ्य काफी अच्छा होना आवश्यक हैं।

d. **आध्यात्मिक स्वास्थ्य-** दूसरों की सहायता करना किसी को कष्ट न पहुँचाना , मान्यताओं को मानना आदि आध्यात्मिक दृष्टि से स्वस्थ व्यक्ति के कुछ लक्षण हैं। धार्मिक कट्टरता तथा पारस्परिक असहिष्णुता आध्यात्मिक स्वास्थ्य के लक्षण नहीं हैं।

अतः यह कहा जा सकता है कि वही व्यक्ति स्वस्थ कहलाने के योग्य है जो शारीरिक मानसिक , सामाजिक एवं आध्यात्मिक रूप से स्वस्थ हो। ऐसे किसी एक या एक से अधिक क्षेत्रों में अस्वस्थ व्यक्ति को अस्वस्थ्य ही कहा जायेगा।

14.4.2 खराब स्वास्थ्य का कारण या कारक

i. **शारीरिक दशा जोखिम कारक के रूप में (मोटापा)**- मोटापे का निर्धारण व्यक्ति की आयु एवं वजन में अनुपात के आधार पर किया जाता है। यदि शरीर का वजन मानक से 25 प्रतिशत अधिक हो तो इसे मोटापा की समस्या कहा जायेगा। इससे स्वास्थ्य संबंधी अनेक समस्याएं उत्पन्न होती हैं। चिकित्सा विज्ञान में इसे एक जोखिम माना जाता है। जोखिम कारक ,शरीर संबन्धी वह दशा या व्यवहार का प्रकार है जो व्यक्ति में विभिन्न प्रकार के रोगों की संभावना को बढ़ाता है (Fernald and Fornalt 1999) । मोटापा के कारण हृदय रोग ,मधुमेह , फेफड़े की समस्या ,शल्य चिकित्सा में समस्यायें, बुढ़ापे में दुर्घटना एवं हड्डी का टूटना एवं अन्य प्रकार की समस्याएं बढ़ती हैं।

ii. **व्यवहार जोखिम कारक के रूप में-** आज की भाग- दौड़ , औद्योगीकीकरण आदि हृदय संबन्धी रोगों को बहुत अधिक बढ़ावा दे रहे हैं। सर्वेक्षणों एवं शोधों से स्पष्ट होता है कि हृदय रोग के लिए कार्य संबन्धी कारण विशेष रूप से उत्तरदायी हैं। स्वास्थ्य मनोवैज्ञानिक इसी प्रकार की समस्याओं का अध्ययन कर रोगों की रोक थाम एवं उपचार का प्रयास करते हैं।

उदाहरण

टाइप ए- व्यवहार:-इस व्यवहार के अन्तर्गत प्रबल आकाक्षाएं पायी जाती हैं व्यक्ति तीव्र गति सेकार्य करना चाहता है। व्यक्ति की आगे बढ़ने की उत्कंट इच्छा होती है, कार्य में जल्दी रहती है। उसमें अत्यधिक सर्तकता पायी जाती है। इससे स्वास्थ्य संबन्धी जोखिम की संभावना बढ़ती है।

टाइप बी- व्यवहार वाले व्यक्तियों में आकांक्षा स्तर कम होता है। वे कार्य दबाव कम अनुभव करते हैं अधिक भाग दौड़ पसंद नहीं करते हैं। कार्य सहज भाव से करते हैं। एक समय में एक ही काम करते हैं। वे आसपास के पर्यावरण में रूचि लेते हैं।

टाइप सी- ऐसे लोगों में टाइप बी की विशेषता के साथ साथ असुरक्षा की भावना या चिंता भी काफी अधिक पायी जाती है। टाइप बी की तुलना में टाइप ए वाले व्यक्तियों में हृदय गति रूकने की समस्या लगभग दो गुना और हृदय संबंधी अन्य समस्यायें लगभग पाँच गुना अधिक पायी जाती हैं।

iii. **संबन्धित अन्य बीमारियां-** हृदय रोग में रक्तचाप,भोजन की आदतें , हृदय रोग की दृष्टि से परिवार का इतिहास आदि अन्य कारकों की भी भूमिका होती हैं। सतत तनाव से रक्त चाप उच्च हो सकता है। इसी प्रकार खराब शारीरिक स्वास्थ्य भी मानसिक स्वास्थ्य को प्रभावित करता है जैसे एक विकलांग बच्चे या व्यक्ति में हीनता की भावना विकसित हो सकती है।

iv. **कुपोषणीय कारक-** गरीबी के कारण और उपयुक्त शिक्षा के अभाव में भारत सहित अन्य अविकसित एवं विकासशील देशों में लोग कुपोषण के कारण अस्वस्थ हो रहे हैं। अधिकांश स्त्रियों व बच्चों में प्रोटीन न्यूनता की समस्या अधिक है। रक्तक्षीणता या खून की कमी हो रही है। विटामिन ए के कारण आँखों की बीमारी बहुत अधिक हो रही है। आयोडीन की कमी से ष्शारीरिक एवं मानसिक विकास बाधित हो रहा है। अतः कुपोषण खराब स्वास्थ्य का एक

प्रमुख्य कारण बन चुका है। पोषक तत्वों की कमी या अधिकता दोनों ही स्वास्थ्य के लिये अहितकर हैं।

v. **फास्ट फूड का प्रचलन-** मुख्यतः शहरी संस्कृति के लोग फास्ट फूड अधिक खाते हैं। पिज्जा, चाउमीन , बर्गर, कोल्डड्रिंक्स आदि लम्बे समय तक लेने से लोग प्रत्यक्ष या परोक्ष बीमारियों से ग्रस्त हो रहे हैं। अध्ययनों से प्रमाणित हो चुका है कि कोल्ड ड्रिंक्स स्वास्थ्य के लिए बहुत हानिकारक है। यह स्वास्थ्य पर ऋणात्मक प्रभाव डालते हैं।

vi. **स्वास्थ्य अनुरक्षण का अभ्यास न होना-**स्त्रियाँ एवं बच्चे स्वास्थ्य के प्रति अपेक्षाकृत कम जागरूक होते हैं। उन्हें स्वास्थ्य संबन्धी समस्याएं रोगों व उपचारों आदि का ज्ञान बहुत कम होता है। अध्ययनों में पाया गया हैं कि यदि स्त्रियां एवं बच्चे रोग से ग्रस्त होना शुरू होते हैं तो वे शुरूआत में दवा इसलिए नहीं लेते कि वह अक्सर सोचते हैं कि बीमारी दो चार दिन में स्वतः ठीक हो जायेगी। इस प्रकार की शिथिलता शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य के प्रतिकूल होती है।

vii. **मादक पदार्थों का सेवन-** अधिक मदपान करना , गांजा , भाँग ,तम्बाकू ,सिगरेट का अधिक सेवन स्वास्थ्य पर ऋणात्मक प्रभाव डालते हैं। अधिक मदपान से गुर्दा प्रभावित हो सकता हैं , लीवर खराब हो सकता है। धूम्रपान से फेफड़े पर कुप्रभाव पड़ता है। तम्बाकू सेवन से कैंसर होने की संभावना बनी रहती हैं।

viii. **अनियमित जीवन शैली-** यदि किसी व्यक्ति की जीवनचर्या व्यस्त एवं अनियमित होती हैं तो इससे स्वास्थ्य पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है। किसी व्यक्ति के खाने ,पीने ,सोने ,जागने आदि का एक निर्धारित समय नहीं है, तो उसका जीवन अनियमित माना जायेगा। सुबह शाम टहलना , व्यायाम करना स्वास्थ्य के लिए हितकर होता है। इनके न करने पर स्वास्थ्य संबन्धी विषमता आ सकती है। नकारात्मक विचारों का होना, व्यसन आदि स्वास्थ्य के लिए अहितकर हैं। एडलर ने सामाजिक अभिरूचि को मनोवैज्ञानिक स्वास्थ्य का वैरोमीटर कहा है। सामाजिक, पर्यावरणी एवं सर्जनात्मक अभिरूचि के अभाव में मानसिक स्वास्थ्य खराब हो जाता है। यदि इनकी स्थिति नकारात्मक है तो स्वास्थ्य पर बुरा असर पड़ सकता है।

14.5 व्यक्तिगत चरित्रण तथा स्वास्थ्य

14.5.1 व्यक्तित्व की परिभाषा एवं विशेषता- आलपोर्ट ने सर्वप्रथम व्यक्तित्व की परिभाषा दी "व्यक्तित्व वह है जो व्यक्ति वास्तव में है"। बाद में उनकी लोक प्रिय परिभाषा निम्नवत प्रस्तुत की गई-" व्यक्तित्व व्यक्ति के अंदर उन मनोदैहिक व्यवस्थाओं का गत्यात्मक संगठन है, जो उसके परिवेश के साथ उसके अनोखे समायोजन का निर्धारण करता है"।

विशेषताएं-

i. गत्यात्मक संगठन से तात्पर्य है कि व्यक्तित्व सतत रूप से विकासशील तथा परिवर्तनशील है।

ii. संगठन या व्यवस्था से तात्पर्य है कि व्यक्तित्व के कई घटक हैं।

iii. मनोदैहिक व्यक्त करता है कि व्यक्तित्व मानसिक तथा स्नायविक पक्ष है। मानसिक तथा शारीरिक दोनों का संगठन है।

iv. निर्धारण पद व्यक्त करता है कि सक्रिय रूप से व्यक्ति के व्यवहार को निर्धारित कैसे करते हैं

आलपोर्ट के अनुसार चरित्र का तात्पर्य व्यवहार की संहिता से है, जिससे व्यक्ति की प्रशंसा होती है। व्यक्ति के चरित्र से वह अच्छा या बुरा समझा जाता है। चरित्र नैतिक संबंधी एक संप्रत्यय है।''हम पसंद करेंगे चरित्र को मूल्यांकित व्यक्तित्व के रूप में परिभाषित करना तथा व्यक्तित्व को चरित्र के रूप में अवमूल्यांकित करना है। 1961 p 32

आलपोर्ट के सामान्य शीलगुण व व्यक्तिगत शीलगुण में अंतर:-

सामान्य शीलगुण समाज के अधिकतर व्यक्तियों में पाया जाता है जबकि व्यक्तिगत प्रवृत्ति समाज के कुछ व्यक्ति विशेष में ही पायी जाती है।

सामान्य शीलगुण के आधार पर कई व्यक्तियों का तुलनात्मक अध्ययन किया जाता है, जबकि व्यक्तिगत प्रवृत्ति के आधार पर एक ही व्यक्ति के भिन्न भिन्न शीलगुणों का आपस में तुलनात्मक अध्ययन किया जाता है। आलपोर्ट ने सामान्य शीलगुण की अपेक्षा व्यक्तिगत प्रवृत्ति को अधिक महत्व दिया है।

i. कार्डिनल प्रवृत्ति-यह व्यक्तित्व का इतना प्रबल गुण होता है कि उसे छिपाया नहीं जा सकता है और व्यक्ति के प्रत्येक व्यवहार की व्याख्या इस तरह के कार्डिनल प्रवृत्ति के रूप में आसानी से की जा सकती है। सभी व्यक्तियों में काडिर्नल प्रवृत्ति नहीं होती हैं परन्तु जिसमें होती है वह व्यक्ति पूर्णरूपेण उस प्रवृत्ति या गुण सं े चर्चित होता है।

   उदाहरण- महात्मा गाँधी के व्यक्तित्व की कार्डिनल प्रवृत्ति ष्शान्ति व अहिंसाष् में अटूट विश्वास था और इस गुण से पूरे संसार में वे चर्चित हैं। अतः ष्शान्ति व अहिंसाष् में विश्वास महात्मा गाँधी के कार्डिनल प्रवृत्ति का एक उदाहरण हैं।

ii. केन्द्रीय प्रवृत्ति-केन्द्रीय प्रवृत्ति सभी व्यक्तियों में पायी जाती है। प्रत्येक व्यक्ति में 5 से 10 ऐसी प्रवृत्तियाँ या गुण पाये जाते है जिसके भीतर उसका व्यक्तित्व अधिक सक्रिय रहता है। इनको केन्द्रीय प्रवृत्ति या गुण कहा जाता है। सामाजिकता, आत्मविश्वास,उदासी आदि कुछ केन्द्रीय प्रवृत्तियों के उदाहरण हैं।

iii. गौण प्रवृत्ति- व्यक्तित्व के लिए कम महत्वपूर्ण , कम संगत , कम अर्थपूर्ण तथा कम स्पष्ट प्रवृत्तियों या गुणों को गौण प्रवृत्ति कहते हैं। जैसे खाने की आदत , हेयर स्टाइल , पहनावा आदि। इनके आधार पर व्यक्तित्व को समझना निरर्थक होता है।

कैटल ने शीलगुणों को कई ढंग से विभाजित कर अध्ययन किया है। प्रमुख विभाजन निम्न प्रकार है:-

i. **सतही शीलगुण-** इस तरह का शीलगुण व्यक्तित्व के ऊपरी सतह या परिधि पर हो ेता है। इसकी अभिव्यक्ति इतनी स्पष्ट होती हैं कि इस शील गुण के विषय में कोई दूसरा मत हो ही नहीं

सकता। जैसे प्रसन्नता , परोपकारिता , सत्यनिष्ठा ये शीलगुण व्यक्ति के दिन प्रतिदिन की अन्तःक्रियाओं में स्पष्ट रूप से होते हैं।

ii. **स्रोत या मूल शीलगुण-** कैटेल के अनुसार मूल शीलगुण व्यक्तित्व की अधिक महत्वपूर्ण संरचना है। इनकी संख्या सतही शीलगुण से कम होती है। कैटेल के अनुसार मूल शील गुण व्यक्तित्व की भीतरी संरचना है जिसके बारे में हमें तब ज्ञान होता है जब हम इसे और संबन्धित सतही शीलगुण को एक साथ मिलाने की कोशिश करते हैं। जैसे सामुदायिकता, निःस्वाथर्ता तथा हास्य ऐसे सतही शीलगुण हैं। जिनके एक साथ मिलने से एक नया मूल शीलगुण बनता है , जिसे मित्रता कहते हैं।

कोस्टा एवं मैकेक्रे (1994), होगन (1983) आदि शोधकर्ताओं के बीच निम्नलिखित 5 विमाओं पर सहमति हुई है जो द्विध्रुवीय हैं।

- **बहिर्मुखता-**व्यक्तित्व की यह एक ऐसी विमा है जिसमें एक परिस्थिति में व्यक्ति सामाजिक, मजाकिया, स्नेहपूर्ण, बातूनी, आदि का शीलगुण दिखाता है तो दूसरी तरफ संयमी, गंभीर, रूखापन, शान्त, सचेत रहने का शीलगुण दिखाता है। इस तरह इस बहिमुर्खता को एक द्विध्रुवीय विमा माना गया है।
- **सहमति जन्यता-**इस विमा के अनुसार व्यक्ति एक परिस्थिति में सहयोगी दूसरे पर विश्वास करने वाला, उदार, सीधा, सादा उत्तम प्रकृति आदि से संबन्धी व्यवहार करता है। दूसरी परिस्थिति में वह असहयोगी, शंकालु , चिड़चिड़ा ,जिद्दी, बेरहम आदि बनकर भी व्यवहार करता है।
- **कर्तव्य निष्ठता-** इस विमा में एक परिस्थिति में व्यक्ति आत्म अनुशासित , उत्तरदायी , सावधान एवं काफी सोच विचार कर व्यवहार करने से संबद्ध शीलगुण दिखाता है तो दूसरी परिस्थिति में वही व्यक्ति बिना सोचे समझे, असावधानी पूर्वक कमजोर या आधे मन से भी व्यवहार करने से संबद्ध शीलगुण दिखाता है।
- **स्नायुविकृति-**इस विमा में व्यक्ति एक ओर कभी कभी तो सांवेगिक रूप से काफी शांत , संतुलित , रोगभ्रमी विचारों से अपने आपको मुक्त पाता है तो दूसरी ओर वह कभी कभी अपने आपको सांवेगिक रूप से काफी उत्तेजित, असंतुलित तथा रोगभ्रमी विचारों से धिरा हुआ पाता है।
- **अनुभूतियों का खुलापन या संस्कृति-** इस विमा में कभी कभी व्यक्ति एक तरह काफी संवेदनशील , काल्पनिक, बौद्धिक, भद्र आदि व्यवहार से संबद्ध शीलगुण दिखाता है तो दूसरी ओर वह काफी असंवेदनशील ,रूखा ,संकीर्ण ,असभ्य एवं अशिष्ट व्यवहारों से संबद्ध शीलगुण भी दिखाता है।

उपरोक्त पाँच शीलगुणों को नारमन (1963) ने ''दि विग फाइव'' की संज्ञा दिया है जो आलपोर्ट कैटल आदि द्वारा किए गये शोधों पर आधारित है।

14.5.2 व्यक्तिगत विशेषता एवं स्वास्थ्य

स्वास्थ्य से तात्पर्य शारीरिक स्वास्थ्य , मानसिक स्वास्थ्य , सामाजिक स्वास्थ्य एवं आध्यात्मिक स्वास्थ्य से है।

जैविक कारक

i. **शारीरिक संरचना तथा शारीरिक स्वास्थ्य-** शारीरिक संरचना का अर्थ कद, रंग , गठन आदि से है। जिस व्यक्ति की संरचना सुडौल होती है उसका शारीरिक स्वास्थ्य भी अच्छा होता है। शारीरिक रचना से संबन्धित शीलगुण वंशानुगत होते हैं। शारीरिक रचना तथा स्वास्थ्य से बच्चों के मानसिक गुणों का निर्धारण होता है। प्रायः यह देखा गया है कि जिन बच्चों या व्यक्तियों का शारीरिक स्वास्थ्य तथा संरचना आकर्षक एवं सुन्दर होती है ऐसे लोगों के प्रति माता पिता, पास पड़ोस के लोग , शिक्षक, मित्र, एवं अन्य लोगों का व्यवहार काफी अनुकूल होता है। फलस्वरूप ऐसें बच्चों में अच्छे सामाजिक शीलगुणों जैसे श्रेष्ठता - भाव , आत्मविश्वास , उत्तरदायित्व सामाजिकता तथा समय निष्ठा आदि का तेजी से विकास होता है। इसके विपरीत अस्वस्थ होने पर लोग उसकी उपेक्षा करते हैं। फलतः व्यक्तियों में हीनता संवेगात्मक अस्थिरता , संकोचशीलता के भाव उत्पन्न होते हैं।

ii. **अन्तःस्रावी ग्रन्थियां-**इन ग्रथियों से हारमोन्स निकलते हैं जो सीधे रक्त में मिलकर शरीर के विभिन्न भागों को प्रभावित करते हैं इन ग्रन्थियों का विवरण निम्नवत हैं:-

a. **पियूष ग्रन्थि-** इस ग्रन्थि के अग्रवर्ती भाग से निकलने वाला हारमोन्स सोमैटोट्रोपीन कहलाता है। बचपन में इस हारमोन्स के अधिक निकलने पर शरीर की लम्बाई बढती हैं, कमी होने पर आदमी बौना हो जाता है। ट्रोफिक हारमोन्स अन्य ग्रन्थि जैसे एड्रिनल ग्रन्थि ,कण्ठ ग्रन्थि तथा यौन ग्रन्थि के कार्यों पर नियंत्रण रखता है।

b. **एड्रिनल ग्रन्थि-** यह ग्रन्थि गुर्दे के ऊपर होती है। इसके बाहरी भाग एड्रिनल वल्कुट से निकलने वाले हारमोन्स ष्कार्टिनष् से कार्बाहाइड्रेट, नमक एवं, चयापचय का नियंत्रण होता है। इस ग्रन्थि के ठीक से कार्य न करने पर शरीर में निष्क्रियता, थकान ,अनिद्रा आती है। कार्टिन की बहुत कमी की स्थिति में बेहोशी की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। केटकोल हारमोन्स की कमी से व्यक्ति में भय, क्रोध जैसी आपात स्थिति उत्पन्न हो जाती है। उपयुक्त मात्रा में खून से मिलने पर सक्रियता बढ जाती है , पाचन क्रिया स्थगित हो जाती है, खून में चीनी की मात्रा बढ़ जाती है। सांवेगिक रूप से सजग होकर व्यक्ति परिस्थिति का सामना करता है।

c. **कण्ठ ग्रन्थि-** कंठ के पास स्थित इस ग्रन्थि से निकलने वाले थायराक्सीन की कमी से शरीर में चयापचय प्रतिक्रियाओं पर प्रभाव पड़ता है, शरीर का विकास बाधित हो जाता है। व्यक्ति बौना हो सकता है, माइएक्सडेमा की स्थिति उत्पन्न हो सकती है। चयापचय की गति मंद पड़ने पर व्यक्ति के हृदय की गति ,श्वसनगति, रक्तचाप ,शरीर का ताप क्रम सामान्य अवस्था से कम हो जाता है। थायराक्सिन की अधिक मात्रा होने पर व्यक्ति

अधिक जोशीला तथा सक्रिय नजर आता है। रक्तचाप बढ़ जाता है। शरीर का वजन धीरे धीरे कम नजर आता है। स्वभाव चिड़चिड़ा हो जाता है तथा वह काफी चिंतित नजर आता है।

d. **उपकण्ठ ग्रन्थि-** उपकण्ठ ग्रन्थि से निकलने वाला पैराथार्मोन खून में कैल्शियम तथा फास्फेट का नियंत्रण करता है। कैल्सियम स्तर से तंत्रिका ऊतक में होने वाली उत्तेजनशीलता का नियंत्रण होता है। खून में पैराथार्मोन की कमी होने के फलस्वरूप कैल्शियम की मात्रा में कमी हो जाती है। इससे व्यक्ति में शिथिलता बढ़ जाती है और उसके तंत्रिका ऊतक संतोषजनक रूप से कार्य नहीं कर पाते हैं।

e. पैक्रियाज़- यह ग्रन्थि आमाशय के नीचे स्थित होती है। इस ग्रन्थि से निकलने वाले हारमोन्स इन्सुलिन से रक्त में चीनी की मात्रा नियंत्रित होती है। यदि इन्सुलिन की मात्रा कम निकलती है तो रक्त में चीनी की मात्रा का स्तर अधिक हो जाता है और पेशाब के सहारे चीनी की बढी हुई मात्रा बाहर आने लगती है जिसे हम मधुमेह रोग कहते हैं। इन्सुलिन के बढ़ने पर कभी कभी चीनी का स्तर जरूरत से कम हो जाता है ऐसी अवस्था में व्यक्ति चिंतित नजर आता है। व्यक्ति कभी कभी बेहोशी की दशा में चला जाता है।

f. **यौन ग्रन्थि-**महिलाओं की यौन ग्रंथि डिम्ब ग्रंथि तथा पुरूषों की डिम्ब ग्रंथि को अंडग्रंथि कहा जाता है। पुरूष की अण्ड ग्रन्थि से एण्ड्रोजन तथा महिलाओं की डिम्ब ग्रंथि से निकलने वाले एस्ट्रोजन से यौन गुणों को ठीक ढंग से कार्य करने में मदद मिलती है।

इस प्रकार अन्तःस्रावी ग्रन्थियों का प्रभाव व्यक्तित्व के शारीरिक शीलगुणों के विकास पर काफी पड़ता है। यद्यपि ये ग्रन्थियां स्वतत्रं रूप से कार्य करती हैं फिर भी आपस में इन ग्रंथियों की अन्तःक्रिया होती है जिसका परिणाम यह होता है कि यदि किसी एक ग्रन्थि का कार्य कुछ मन्द पड़ जाता है तो उस कार्य को अंशतः दूसरी ग्रन्थि द्वारा पूरा किया जाता है।

iii. **स्नायु मण्डल-**मनोवैज्ञानिकों का सामान्य विचार यह है कि जिन व्यक्तियों का स्नायुमण्डल अधिक विकसित तथा जटिल होता है , उसकी बुद्धि अधिक होती है ,उसमें समायोजन की क्षमता भी अधिक होती है।ऐसे व्यक्तियों में उत्तरदायित्व ,समय निष्ठा , सांवेगिक स्थिरता , आत्मविश्वास ,अहम शक्ति आदि का विकास तेजी से होता है। स्नायु मण्डल कम विकसित होने पर व्यक्ति कम बुद्धि का होता है तथा उसकी अभियोजन क्षमता भी काफी कम होती हैं। फलस्वरूप लोग उसे घृणा एवं उपेक्षा की दृष्टि से देखते हैं । जिसका परिणाम यह होता है कि ऐसे व्यक्तियों में असामाजिक शीलगुण तथा चारित्रिक विकृति विकसित हो जाती है।

पर्यावरणीय कारक

i. **सामाजिक स्वास्थ्य -** सामाजिक समूह , सामाजिक संस्थानों , परिवार ,पास पड़ोस आदि का प्रभाव व्यक्तित्व के विकास पर काफी पड़ता है। मनोवैज्ञानिकों के प्रयोग से स्पष्ट हो गया है कि अधिक दुलार प्यार देने वाले माता पिता के बच्चों में बड़ा होकर असुरक्षा की भावना, घबराहट का शीलगुण तथा समायोजन से संबन्धित समस्याएं अधिक होती हैं। सख्ती से पेश आने वाले माता पिता के बच्चों में अधीनस्थता का गुण अधिक विकसित हो जाता है। माता पिता से उचित मात्रा में प्यार न मिलने पर बच्चे लज्जालु तथा सांवेगिक रूप से अस्थिर हो जाते हैं। परिवारिक स्नेह एवं अनुराग में पलने वाले बच्चों में श्रेष्ठता का भाव आत्मविश्वास तथा विश्वसनीयता का गुण विकसित होता है। झगड़ालू परिवार के बच्चों में हीनता का भाव अन्तर्मुखता सांवेगिक अस्थिरता आदि का शीलगुण अधिक विकसित हाते पाया जाता हैं। व्यक्तित्व के विकास पर जन्मक्रम का भी प्रभाव देखा गया है। प्रथम जन्मक्रम के बच्चे एकान्तप्रिय एवं अन्तर्मुखी होते हैं। सबसे अधिक अंतिम जन्मक्रम वाले बच्चों में हीनता का भाव अधिक होता है, आत्मनिर्भरता तथा आत्मविश्वास की कमी देखी गई है। इकलौते बच्चों में दूसरे पर निर्भरता तथा आत्मकेद्रिता आदि शीलगुण विकसित होते हैं। एडलर के अनुसार मध्य जन्मक्रम वाले बच्चों में आत्मविश्वास तथा अहमशक्ति अधिक होती हैं। इसी प्रकार स्कूल के शिक्षकों के पास पड़ोस में निवास करने वाले सभ्य पढ़े लिखे व्यक्तियों तथा अन्य महत्वपूर्ण व्यक्तियों द्वारा प्रशंसा तथा अनुमोदन का भी प्रभाव बच्चों के व्यक्तित्व पर पड़ता है। यदि पास पड़ोस में चोर डकैत , अपराधी व्यक्ति अधिक होते हैं तो बच्चे भी उन व्यवहारों का अनुकरण करने लगते हैं। दूसरी तरफ जिन व्यक्तियों को सामाजिक स्वीकृति प्राप्ति नहीं होती ,उनमें अन्तर्मुखता आत्महीनता , सामाजिक अभियोजन की कमी आदि शीलगुण विकसित हो जाते हैं।

ii. **सांस्कृतिक स्वास्थ्य-** मानवशास्त्री महिला मींड के अध्ययन के अनुसार ऐरापेश जनजाति के स्त्री तथा पुरूष दोनों में ही नारित्व के शीलगुण की प्रशंसा की जाती है। फलस्वरूप ऐरापेश जाति के व्यक्तियों में आत्मविश्वास सहयोग की भावना शान्तिप्रियता आदि शीलगुण होते हैं। मुण्डुगुमोर और जनजाति की संस्कृति में पुरूषत्व संबंधी गुणों पर अधिक जोर दिया जाता है। स्त्री या पुरूष दोनों को ही आक्रामणशीलता तथा विद्रोही निश्चित रूप से बनना अच्छा समझा जाता है। फलतः इनका कार्डियल शीलगुण आक्रमणशीलता तथा झगड़ालूपन होता है। ''शाम्बुली'' की संस्कृति में पुरूष वही काम करते हैं जो हमारे समाज में नारियां करती हैं और नारियां वही काम करती हैं जो हमारे समाज मे पुरूष करते हैं। फलतः पुरूषों मे विनम्रता , लज्जालुपन , सहयोगिता आदि अधिक होता है तथा नारियों में पुरूषत्व का गुण जैसे आक्रामकता , प्रभुत्व आदि गुण पाये जाते हैं। प्रयोगात्मक तथा मानवशास्त्रीय सबूतों के आधार पर यह निश्चित रूप से स्पष्ट हो जाता है कि व्यक्तित्व के शीलगुणों के विकास पर संस्कृति के रीति रिवाजों , प्रथाओं का काफी प्रभाव पड़ता है।

iii. **आध्यात्मिक स्वास्थ्य -** आध्यात्मिक स्वास्थ्य को पारिभाषित करना अपेक्षाकृत कठिन है। प्रत्येक सामाज में कुछ धार्मिक एवं नैतिक मान्यताएं होती हैं। स्वस्थ व्यक्ति ऐसी मान्यताओं को

स्वीकार करता है तथा तदनुसार व्यवहार भी करता है। दूसरों की सहायता करना , किसी को कष्ट न पहुँचाना , परमार्थ करना , मान्यताओं को मानना आदि आध्यात्मिक दृष्टि से स्वस्थ व्यक्ति के कुछ लक्षण हैं।

iv. **आर्थिक स्वास्थ्य -** स्टेंगनर (Stanger 1935) के अनुसार गरीब परिवार के छात्रों में हीनता का भाव , सांवेगिक अस्थिरता , शर्मीलापन तथा सामजिक अगुवाई की कमी आदि औसत परिवार के छात्रों की अपेक्षा अधिक देखी गई है , परंतु कभी कभी ऐसा नहीं दिखाई देता है। स्व. लाल बहादुर शास्त्री, भारत के भूतपूर्व प्रधानमंत्री इसके ज्वलन्त उदाहरण हैं। इन दोनों ही प्रकार के कारकों का संयुक्त प्रभाव व्यक्तित्व पर पड़ता है।

14.6 स्वस्थ जीवन शैली को प्रोत्साहित करना

14.6.1 एडलर का वैयक्तिक मनोविज्ञान का सिद्धांत

एडलर का वैयक्तिक मनोविज्ञान का सिद्धांत प्रत्येक व्यक्ति के अनोखेपन पर बल डालता है। जैविक अभिप्रेरण तथा लक्ष्य की सर्वव्यापकता को स्वीकार नहीं किया गया है। एडलर का मत है कि प्रत्येक व्यक्ति सामाजिक प्राणी होता है, वह जैविक प्राणी नहीं है। अतः व्यक्तित्व का निर्धारण वैयक्तिक, सामाजिक वातावरण तथा उनके अन्तःक्रियाओं द्वारा होता है।

जैविक आवश्यकताओं द्वारा व्यक्तित्व का निर्घारण नहीं होता है। सभी मनोवैज्ञानिक घटनाएं व्यक्ति के भीतर आत्मसंगत ढंग से स्वीकृत होती हैं। व्यक्ति का आत्मनिष्ठ विचार या मत से उसके व्यवहार तथा व्यक्तित्व का निर्धारण होता है। कल्पित लक्ष्य हमारे वर्तमान व्यवहार को निर्देशित करते हैं। एडलर का मत हैं कि व्यक्ति का मुख्य लक्ष्य एक कल्पित लक्ष्य होता हैं जिसकी सत्यता की जाँच नहीं की जा सकती है। उनका व्यवहार इसी कल्पित लक्ष्य द्वारा निर्देशित होता हैं। जैसे - कुछ लोगों का मानना है कि यदि वे पृथ्वी पर ईमानदारी से जीवन व्यतीत करेगें तो स्वर्ग मिलेगा। यहाँ स्वर्ग एक कल्पित लक्ष्य है जिसकी जाँच संभव नहीं है। एडलर ने स्पष्ट किया कि अंगहीनता से अधिक महत्वपूर्ण अंगहीनता से उत्पन्न हीन भावना है , क्योंकि इसी हीनभावना से प्रेरित होकर वह उसकी क्षतिपूर्ति के लिए प्रयास करता है एवं अन्य क्षेत्रों में श्रेष्ठता प्राप्त कर लेता है। जैसे भारत में सूरदास ने नेत्र हीन होकर भी एक महान कवि बनकर दिखाया। एडलर ने व्यक्तित्व विकास पर बच्चों के जन्मक्रम के पड़ने वाले प्रभावों का भी वर्णन किया है। सफलता व पूर्णता की कोशिश से एडलर का तात्पर्य पूर्णता की प्राप्ति की ओर बढ़ने की मौलिक प्रेरणा से होता है। इसे एडलर ने जीवन का एक ऐसा मौलिक अभिप्रेरण या तथ्य माना है जिसके अभाव में जीवन के अस्तित्व कें बारे में सोचा ही नहीं जा सकता। सामाजिक अभिरूचि भी प्रत्येक व्यक्ति में अन्तःशक्ति के रूप मे विदित होती है। इसे एडलर ने जन्मजात प्रक्रिया कहा है। इसका विकास बाद में एक सामाजिक वातावरण में माता पिता के साथ अन्तःक्रियाओं द्वारा तथा पति पत्नी के बीच की अन्तःक्रियाओं को देख कर होता है। जिन व्यक्तियों की सामाजिक अभिरूचि जितनी ही विस्तृत परिपक्व विकसित होती हैं, उसका मनोवैज्ञानिक या मानसिक स्वास्थ्य उतना ही अच्छा होता हैं।यही कारण है कि एडलर ने सामाजिक अभिरूचि को मनोवैज्ञानिक स्वास्थ्य का वैरोमीटर कहा है।

एडलर द्वारा प्रतिपादित व्यक्तित्व सिद्धांत का एक सबसे महत्वपूर्ण भाग जीवन शैली है। जीवन शैली से तात्पर्य शील गुणों व्यवहारों , आदतों के एक ऐसे पैटर्न से है जिसे एक साथ मिला देने पर एक ऐसे पैटर्न का पता चलता है जिसका उपयोग करके व्यक्ति अपने जीवन लक्ष्य पर पहुँचने की कोशिश करता है। एडलर की पूर्व कल्पना है कि व्यक्ति की जीवन शैली व्यक्ति के सर्जनात्मक शक्ति द्वारा विकसित होती है। प्रत्येक व्यक्ति में , जीवन शैली के निर्माण एवं विकसित करने की पूर्ण स्वतंत्रता होती है ।

14.6.2 जीवन शैली-अर्थ प्रकार एवं निर्माण

एडलर द्वारा प्रतिपादित व्यक्तित्व सिद्धांत का एक सबसे महत्वपूर्ण भाग जीवन जीवन शैली से तात्पर्य शीलगुणों व्यवहारों , आदतों के एक ऐसे अपूर्व पैटर्न से होता है जिसे एक साथ मिला देने पर , एक ऐसे पैटर्न का पता चलता है जिसका उपयोग करके व्यक्ति अपने जीवन लक्ष्य पर पहुँचने की कोशिश करता है। जीवन शैली में सिर्फ व्यक्ति का जीवन लक्ष्य ही नहीं बल्कि उसके आत्म संप्रत्यय, दूसरों के प्रति भाव तथा पर्यावरण के अन्य वस्तुओं के प्रति मनोवृत्ति आदि भी सम्मलित होते हैं। व्यक्ति की जीवन शैली पर्यावरण अनुवांशिकता , सफलता के लक्ष्य , सामाजिक अभिसन्धि तथा सर्जनात्मक शक्ति आदि का प्रतिफल होता है। एडलर ने जीवनशैली को एक प्रमुख नियंत्रक बल माना है। अतः यह फ्रायड द्वारा सम्पादित संम्प्रत्यय अहं के तुल्य संप्रत्यय हैं, इसमें अहं तथा पराहं जैसे कारक सम्मिलित नहीं होते हैं।

एडलर के अनुसार जीवन शैली के प्रकार:-

i. **अधिकार दिखाने वाले-** ऐसे व्यक्ति दूसरां पर अधिकार दिखाने वाले तथा आक्रामक व्यवहार करने वाले होते हैं। ऐसे लोग अपने जीवन का लक्ष्य प्राप्त करने के लिए असामाजिक तरीके से पेश आने में हिचकिचाते नहीं हैं। उनमें सामाजिक अभिरूचि की कमी पायी जाती है। अतः इनकी सक्रियता में असामाजिकता की दुर्गन्ध आती है।

ii. **प्राप्त करने वाले अधिकार-** ऐसे लोग दूसरों से अधिक प्राप्त करना चाहते है। इनमें दूसरों पर निर्भरता अधिक होती है। इनमें सामाजिक अभिरूचि की कमी होती है। परिस्थिति तनावपूर्ण होने पर ऐसे व्यक्ति स्नायु रोगी हो जाते हैं।

iii. **दूर हट जाने वाले प्रकार-** ऐसे लोगों में सामान्य वातावरण तथा परिस्थिति का सामना न करके हट जाने की प्रवृत्ति तीव्र होती है । ऐसे लोग जीवन की समस्याओं को ठीक ढंग से समाधान नहीं कर पाते हैं और उनके संभावित असफलता का अनुमान करके पहले ही उससे दूर हट जाते हैं। ऐसे लोगों में भी सामाजिक अभिरूचि की कमी पायी जाती है।

iv. **सामाजिक रूप से उपयोगी प्रकार-** ऐसे लोग समाजोपयोगी व्यवहार अधिक करते है इनमें सामाजिक अभिरूचि अधिक पायी जाती है। ऐसे लोग सामाजिक समस्या के समाधान में आम लोगों की सहायता को अति आवश्यक मानते हैं।

v. **तुच्छ प्रकार-** इनमें आंगिक हीनता की भावना होती है। अंगिक हीनता की क्षतिपूर्ति करने में असमर्थ रहते हैं। ऐसी परिस्थितियों से पलायन करना चाहते हैं। इसी में संतुष्ट रहते हैं।

vi. **अतिस्नेह प्रकार-** अतिस्नेही प्रकार के व्यक्ति अधिक स्वार्थी एवं आत्मकेंद्रित होते हैं। सामाजिक अभिरूचि की कमी पायी जाती है ।

vii. **तिरिस्कृत शैली**-ऐसे व्यक्ति को चेतन रूप से अपने आपको बर्बाद करने में आनन्द मिलता है।

जीवन शैली का निर्माण- जीवन शैली का निर्माण चार या पाँच साल की आयु तक हो जाता है जीवन शैली के निर्माण के बाद उसमें परिवर्तन साधारणतया संभव नहीं होता है। बाद में इसका विस्तारण एवं वर्धन ही होता है।

14.6.3 स्वस्थ जीवन को प्रोत्साहित करना

एडलर के व्यक्तित्व सिद्धांत से स्पष्ट हैं कि जीवन शैली धनात्मक भी हो सकती है , ऋणात्मक भी हो सकती है। अर्थात स्वस्थ जीवन शैली , स्वास्थ्य पर्यावरण स्वस्थ अनुवांशिकता , धनात्मक सफलता के अनुरूप लक्ष्य स्वस्थ सामाजिक अभिरूचि एवं सर्जनात्मक शक्ति का प्रतिफल होती हैं। इस प्रकार एडलर के द्वारा निर्धारित प्रकारों में से जीवन शैली जो समाजोपयोगी हो वही स्वस्थ्य जीवन शैली कही जा सकती हैं। अन्य जीवन शैली दोषपूर्ण जीवन शैली के अन्तर्गत कही जा सकती हैं ।

स्वस्थ जीवन शैली निर्माण- स्वस्थ जीवनशैली प्रारम्भिक जीवन में निर्मित होती है इसके बाद जीवनशैली के अनुसार अनुभव एकत्र किये जाते है तथा उपयोग में लाये जाते हैं। अभिवृत्ति , भाव , संप्रत्यक्षण आदि प्रारंभिक जीवन में निश्चित हो जाते है। इसके बाद जीवन शैली में परिवर्तन नहीं होता है। व्यक्ति अपने जीवनशैली को व्यक्त करने का नया रूप अर्जित कर सकता है। व्यक्ति जो भी करता है उसका निर्धारण जीवनशैली द्वारा होता है इसके द्वारा इस तथ्य का भी निर्धारण होता हैं कि व्यक्ति पर्यावरण के किस पहलू पर ध्यान देगा तथा किसकी उपेक्षा करेगा। यदि वह धनात्मक पहलू पर ध्यान देता है तो उसकी जीवनशैली स्वस्थ जीवनशैली होती है।

स्पष्ट है कि स्वस्थ जीवनशैली वाल्य काल से ही प्रोत्साहित की जा सकती हैं , इसके बाद की आयु में जीवनशैली में मात्र विस्तरण एवं विवर्धन ही हो सकता है। अतः स्वस्थ जीवनशैली उत्पन्न करने हेतु बाल्यावस्था में ही बालकों को स्वस्थ पर्यावरण प्रदान करना आवश्यक हैं। अतः यह माँ बाप , परिवार तथा निकटस्थ सामाजिक परिवेश के पूर्णव्यवहार बालक को स्वस्थ जीवन शैली प्रदान करने में सहायक होते हैं ।

स्वस्थ जीवन शैली के प्रमुख कारक-

i. **कल्पित लक्ष्य-** एडलर के अनुसार व्यक्ति के जीवन का मुख्य लक्ष्य कल्पित लक्ष्य होता है, जिसकी सत्यता की जांच नहीं की जा सकती है। जैसे कुछ लोग ऐसा सोचते हैं कि यदि हम पृथ्वी पर इमानदारी से जीवन व्यतीत करेगें तो उन्हें स्वर्ग मिलेगा। इससे स्पष्ट है कि इन लोगो का लक्ष्य स्वर्ग प्राप्ति है , इसी विश्वास पर वे ईमानदारी से काम करते हैं। इमानदारी स्वस्थ जीवनशैली का एक अंग है।

ii. **हीनता भाव एवं क्षतिपूर्ति-** एडलर (1907) के अनुसार जिन व्यक्तियों में आंगिक हीनता जैसे दृष्टि दोष , सुनने का दोष, बोलने का दोष होता है वे अन्य क्षेत्रों में श्रेष्ठता स्थापित करके इस कमी की क्षतिपूर्ति करने की कोशिश करते हैं। अपनी हीनता भाव दूर करके धनात्मक व्यक्तित्व विकास का प्रयास की शुरूआत बाल्यावस्था से ही होता हैं। बच्चा अपने को वयस्क की तुलना

में छोटा समझता है। इसे बच्चा अपनी निःसहायता , निर्भयता के वातावरण के कारण विकसित करता है। इस तरह की हीनता का भाव बच्चों को श्रेष्ठता की ओर उन्मुख होने की प्रेरणा जगाता हैं। बच्चे इस हीनता के भाव को दूर करने के लिऐ अथक परिश्रम एवं अभ्यास करते हैं, और कुछ श्रेष्ठ उपलब्धि प्राप्त करके हीनता की भावना से उत्पन्न क्षति की प्रतिपूर्ति करते हैं।डेमस्थनीज , जो बचपन में हकलाता था बाद में विश्व का एक महान वक्ता बना। इसी प्रकार रूज़वेल्ट जो बचपन में दुर्बल था , अभ्यास से वह हट्टा कट्टा हो गया।

iii. **जन्मक्रम -** व्यक्तित्व के सामाजिक निर्धारको में जन्मक्रम का प्रभाव महत्वपूर्ण हैं। एडलर के प्रेक्षण में प्रथम संताने प्रायः अपराधी , पियक्कड़ तथा विकृत पायी गयी हैं। द्वितीय संतानें महत्वाकांक्षी पायी गयी हैं। कनिष्ठतम तथा एकल संतानें बिगड़ी हुई पायी गयी हैं। अतः द्वितीय क्रम के बच्चे की जीवनशैली स्वस्थ जीवनशैली मानी जाती है।

iv. **सफलता में पूर्णता का प्रयास-** सफलता या पूर्णता की कोशिश से एडलर का तात्पर्य, पूर्णता की ओर बढने की मौलिक प्रेरणा है इसे एडलर ने जीवन का एक ऐसा मौलिक अभिप्रेरण या तथ्य माना है , जिसके अभाव में जीवन का अस्तित्व खतरे में पड़ जाता है। यह एक जन्मजात प्रक्रिया होती है। फिर भी इसका विकास पर्यावरणीय कारकों द्वारा भी होता है।यह अकेला अभिप्रेरक है जो अन्य कई प्रणोदों को निर्धारित करता है। स्नायुरोगियों द्वारा वैयक्तिक श्रेष्ठता का ऋणात्मक मार्ग अपनाया जाता है जबकि मानसिक रूप से स्वस्थ व्यक्ति सामाजिक अभिरूचि का मार्ग अपना कर श्रेष्ठता पर पहुंचने की कोशिश करते हैं। सफलता या पूर्णता की कोशिश में व्यक्ति को लक्ष्य तक पहुचने में काफी संघर्ष करना पड़ता हैं। इससे तनाव स्तर घटने के बजाय बढ़ जाता हैं। एडलर की व्याख्या के अनुसार यह प्रक्रिया समाज तथा व्यक्ति के परस्पर सामंजस्य से पूर्ण होती है।

v. **सामाजिक अभिरूचि-** एडलर के अनुसार मूलत- मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। वह व्यक्तिगत लक्ष्य के साथ साथ सामाजिक लक्ष्य प्राप्त करना चाहता है। सामाजिक अभिरूचि एक ऐसी प्रवृत्ति है जिससे दोनों लक्ष्य प्राप्त करने हेतु व्यक्ति दूसरे व्यक्तियों के साथ सहयोग करता है। सामाजिक अभिरूचि की मात्रा सभी व्यक्तियों में कुछ न कुछ पायी जाती है। वह अपराधी भी हो सकता है मनोविकृत या मानसिक रूप से स्वस्थ भी हो सकता है। यह एक अंतःशक्ति हैं। एडलर ने इसे एक जन्मजात प्रकिया कहा है। बाद में इसका विकास सामाजिक वातावरण जैसे माता पिता के साथ अन्तःक्रियाओं द्वारा तथा पति पत्नी के बीच की अन्तःक्रियाओं को देखकर होता है। जिन व्यक्तियों की सामाजिक अभिरूचि जितनी ही विस्तृत, परिपक्व एवं विकसित होती है, उसका मनोवैज्ञानिक स्वास्थ्य उतना ही अच्छा होता है। यही कारण है कि एडलर ने सामाजिक अभिरूचि को मनोवैज्ञानिक स्वास्थ्य का वैरोमीटर कहा है। सामान्य या मानसिक रूप से स्वस्थ व्यक्ति वास्तविक ढंग से दूसरे के साथ सहयोग करने के लिये चिंतित रहता है, और उनकी श्रेष्ठता का लक्ष्य सामाजिक होता है , जिसमें अन्य लोगों की भलाई की उन्मुखता होती है।

कुसमायोजित व्यक्तियों में सामाजिक अभिरूचि की कमी पायी जाती है। ऐसे व्यक्तियों की जिन्दगी का अर्थ लगभग सम्पूर्ण व्यक्तिगत होता है।

vi. **सृजनात्मक शक्ति-** एडलर की एक पूर्वकल्पना है कि व्यक्ति की जीवन शैली उसके सर्जनात्मक शक्ति द्वारा विकसित होती है । प्रत्येक व्यक्ति में अपने व्यक्तित्व को खास ढंग से विकसित करने की स्वतंत्रता होती है। प्रत्येक व्यक्ति अपने व्यवहार के लिए स्वयं उत्तरदायी है। इसी सर्जनात्मक शक्ति के द्वारा उसके जीवन का लक्ष्य निर्धारित होता है। इसी से यह भी तय होता है कि व्यक्ति अपने लक्ष्य तक पहुचने के लिए कौन कौन सी विधियां अपनाएगा तथा व्यक्ति के सामाजिक अभिरूचि का भी विकास होता है। सर्जनात्मक शक्ति द्वारा व्यक्ति का प्रत्यक्षण ,स्मृति, कल्पना , स्वप्न , दिवास्वप्न आदि का भी निर्धारण होता है। इससे स्पष्ट होता है कि सर्जनात्मक शक्ति प्रत्येक व्यक्ति को एक स्वतंत्र एवं सम्पूर्ण व्यक्ति बनाने की दिशा में उत्तम योगदान करता है। इस प्रकार स्वस्थ जीवनशैली निर्वहन करने वाले व्यक्तियों में सामाजिकता अधिक पायी जाती है। ये लोग समाजोपयोगी व्यवहार अधिक करते हैं। इनमें सामाजिक अभिरूचि अधिक पायी जाती हैं। ऐसे व्यक्ति अधिक सक्रीय होते हैं उनकी सामाजिक क्रियाओं में जिन्दादिली अधिक पायी जाती है। ऐसे लोग दोस्ती पेशा तथा स्नेह को प्रमुख सामाजिक समंस्या के रूप में देखते हैं। ऐसे लोग सामाजिक समस्या के समाधान के लिए आगे बढ कर लोगों की सहायता करना आवश्यक समझते हैं। इनके दृष्टिकोण सदैव धनात्मक तथा सर्जनात्मक होते हैं।

14.7 सारांश

- तनाव ,परिस्थिति या घटना का मूल्यांकन करने के बाद उसके प्रति की गई एक विशेष अनुक्रिया होती है , जिसमें व्यक्ति अपने मानसिक एवं दैहिक कार्यां को विघटित होते पाया है।
- स्वास्थ्य से तात्पर्य शारीरिक स्वास्थ्य, मानसिक स्वास्थ्य , सामाजिक स्वास्थ्य एवं आध्यात्मिक स्वास्थ्य।
- व्यक्तित्व व्यक्ति के अंदर उन मनोदैहिक व्यवस्थाओं का गत्यात्मक संगठन है जो उसके परिवेश के साथ उसके अनोखे समायोजन का निर्धारण करता है।
- शरीर में रासायनिक परिवर्तन के कारण हम कभी सक्रिय ,कभी निष्क्रिय, तथा कभी विषादी हो जाते हैं।
- सक्रियता या निष्क्रियता या विषाद का कारण अन्तःस्त्रावी ग्रन्थियों से निकलने वाले हारमोन्स हो सकते हैं।
- पियूष ग्रन्थि, शरीर की लम्बाई , एड्रीनल ग्रंथि ,कण्ठ ग्रन्थि तथा यौन ग्रन्थि के कार्यो पर नियंत्रण करती है।
- पैनक्रियाज ग्रन्थि से निकलने वाले इन्सुलिन से रक्त मे चीनी की मात्रा का नियंत्रण होता है।

- विकसित स्नायुमण्डल वुद्धि विकास की सूचक है।
- सख्ती से पेश आने पर माता पिता के बच्चों में अधीनस्थता का गुण अधिक विकसित हो जाता हैं।
- सामाजिक अभिरूचि में मनोवैज्ञानिक या मानसिक स्वास्थ्य अच्छा होता है। यही कारण है कि एडलर ने सामाजिक अभिरूचि को मानसिक स्वास्थ्य का बैरोमीटर कहा है।

अभ्यास प्रश्न

1. स्वास्थ्य सम्बंधी समस्याओं के समाधन में मनोवैज्ञानिक सिद्धांतों का प्रयोग करने वाला विज्ञान ____________कहा जाता है।
2. मनोरोग विज्ञान में_____________का अध्ययन किया जाता हैं।
3. घेंघा रोग ________________की कमी से होता है।
4. दृष्टि को ठीक करने के लिए ______________आवश्यक है।
5. रक्त क्षीणता की दशा में ________________की कमी पड़ जाती है।
6. सामाजिक अभिरूचि को , मानसिक स्वास्थ्य का वैरोमीटर ____________ने कहा।
7. व्यक्ति का मुख्य लक्ष्य एक ________लक्ष्य होता है, जिसकी सत्यता की जाँच ________की जा सकती है ।
8. सतत तनाव से ______________उच्च हो सकता हैं।
9. मोटापा बीमारी _____________ है।
10. व्यक्तित्व वह है जो व्यक्ति वास्तव में है यह ___________का कथन है।

14.9 शब्दावली

1. **अनुरक्षण** - रोकथाम , रखरखाव
2. **दैहिक** - शारीरिक
3. **विघटन** - क्षरण , खराब
4. **भावशून्यता** - उदासीनता
5. **आसेधक** - तनाव के कारक
6. **स्वायत्त** - स्वशासित

14.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. स्वास्थ्य मनोविज्ञान
2. मानसिक विकृतियों
3. आयोडीन

4. विटामिन ए
5. हीमोग्लोबिन
6. एडलर
7. कल्पित , नहीं
8. रक्त चाप
9. नहीं
10. आलपोर्ट

14.11 संन्दर्भ ग्रंथ सूची

1. सिंह आर. एन.,(2005-2008)आधुनिक सामाजिक मनोविज्ञान , अग्रवाल पब्लिकेशन आगरा-
2. सिंह आर. एन.,(2005) आधुनिक सामाजिक मनोविज्ञान विनोद पुस्तक मंन्दिर आगरा -2
3. सिंह ए.के., (2002) समाज मनोविज्ञान की रूपरेखा मोती लाल बनारसी दास दिल्ली
4. श्रीवास्तव डी. एन एवं अन्य, (2000-2001) आधुनिक समाज मनोविज्ञान एच . पी . भार्गव बुक हाउस आगरा।
5. भटनागर ए.बी.एवं अन्य -डेवलपमेन्ट आफ लर्नस एण्ड टीचिंग लर्निगं प्रोसेस विनय राखेजा C/O लाल बुक डिपाट मेरठ।
6. रोबर्ट , ए बैरन एवं डान बैरन (नौवा संस्करण) पीयर्सन एडूकेशन (सिंगापुर) प्रा. लि. इण्डियन ब्रांच 482 एम. आइ्र दूई दृपटपरगंज दिल्ली 110092 इंडिया।
7. त्रिपाठी आर.बी. एवं सिंह आर. एन. (2002) व्यक्तित्व का मनोविज्ञान सुमित भार्गव , गंगा सरन एण्ड ग्रेण्ड सन्स सी. के. 37/44 बी बॉसफाटक वाराणसी।
8. मुहम्मद सुलेमान(2006)सामान्य मनोविज्ञान , मूल प्रक्रियाऐं एवं संज्ञानात्मक प्रक्रियाएं मोतीलाल बनारसी दास दिल्ली।

14.12 निबंधात्मक प्रश्न

1. सामाजिक तनाव किसे कहते हैं? मनोवैज्ञानिक तनाव के प्रभाव का वर्णन करें।
2. सामाजिक तनाव के प्रमुख कारणों एवं प्रभावों पर प्रकाश डालें।
3. खराब स्वास्थ्य के कारणों का वर्णन करें।
4. शारीरिक रचना एवं पियूष ग्रन्थि, थायरायड ग्रन्थि के प्रभावों का वर्णन करें।
5. स्वस्थ जीवन शैली की व्याख्या करें ।

इकाई 15 - सामाजिक मनोविज्ञान एवं न्याय तंत्र

इकाई संरचना-

15.1 प्रस्तावना
15.2 उद्देश्य
15.3 परीक्षण प्रारम्भ होने से पूर्व की कानूनी प्रविधि से संबंधित सामाजिक मनोविज्ञान
15.3.1 परीक्षण प्रारम्भ होने से पूर्व की मुख्य प्रक्रियाएं
15.3.2 पुलिस कार्यवाही का विस्तृत प्रभाव
15.3.3 निरपराध के द्वारा की गई गलत स्वीकारोक्ति
15.3.4 सूचना तंत्रों का पब्लिक प्रभाव
15.4 प्रत्यक्षदर्शी साक्ष्य
15.4.1 साक्ष्यों के गलत होने के कारण
15.4.2 प्रत्यक्षदर्शी के साक्ष्य में सच्चाई की वृद्धि
15.5 एक न्यायिक परीक्षण में सम्मिलित होने वाले मुख्य पक्ष
15.6 सारांश
15.7 शब्दावली
15.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
15.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
15.10 निबंधात्मक प्रश्न

15.1 प्रस्तावना

मानव प्रवृत्ति में अनेक प्रकार की विभिन्नताएं होती हैं। प्रवृत्ति के अनुसार उनके व्यवहार भी अलग होते हैं। सामाजिक, आर्थिक, व्यावसायिक या मनोवैज्ञानिक कारण से कोई अपराधी भी हो सकता है। अपराधी को दण्ड देने में न्यायालय की निष्पक्षता महत्वपूर्ण होती है। अपराधी को सजा तो मिलनी चाहिए परन्तु ऐसा न हो कि कोई निरपराधी व्यक्ति को दण्ड मिल जाये। अपराध से जुड़ी इच्छाओं अपराधिक उत्प्रेरण, अपराध से संबंधित मिले प्रमाणों की यथार्थता की जाँच आदि का अध्ययन, न्यायकर्ता की निष्पक्षता के लिए आवश्यक होती है। वकीलों, जूरियो न्यायाधीशों तथा गवाहों के मानसिक लक्षणों का भी अध्ययन आवश्यक होता है। वर्णित समस्त विषय मनोविज्ञान के अध्ययन की विषय-वस्तु है।

मनोविज्ञानिकों ने अनेक परीक्षणों द्वारा पता लगाया है कि अधिकांश अपराधी असंतुलित मनःस्थिति या किन्हीं अन्य मनोवैज्ञानिक कारणों से अपराध करते हैं। अपराध के इन कारणों का निदान करके अपराधी को सुधारा जा सकता है। मनोवैज्ञानिकों की इसी अवधारणा के कारण आज दण्ड का लक्ष्य अपराधी को दण्डित करना नहीं बल्कि उसका सुधार करना है।

इस प्रकार अपराध एवं सुधारात्मक दण्ड की प्रक्रिया में जहां कानून एवं न्याय की अहम् भूमिका है वहीं पर इस क्षेत्र में सामाजिक मनोविज्ञान की उपयोगिता भी बहुत अधिक है।

15.2 उद्देश्य

1. इस इकाई को पढ़ने के पश्चात आप न्यायिक क्षेत्र में सामाजिक मनोविज्ञान की उपयोगिता को समझ सकेंगे।
2. अभियुक्त के आपराधिक इतिहास एवं इसके अपराधी होने के पीछे पाये जाने वाले मनोवैज्ञानिक कारणों का पता लगाकर अपराधी में सुधार लाने का प्रयास कर सकेंगे।
3. अपराध से संबंधित मनोवैज्ञानिक प्रमाणों की याथार्थता की जाँच का अध्ययन कर न्यायालय की निष्पक्षता बनाए रखने में मदद कर सकेंगे। किसी निरपराधी व्यक्ति को दण्डित होने से बचा सकेंगे।
4. वकीलों, जूरियो, न्यायाधीशों तथा गवाहों के मानसिक लक्षणों का अध्ययन कर निष्पक्ष न्याय को दिशा प्रदान करने में मदद कर सकेंगे।

15.3 परीक्षण प्रारम्भ होने से पूर्व की कानूनी प्रविधि से संबंधित सामाजिक मनोविज्ञान

यद्यपि अपराधी कानूनी प्रक्रिया से संबंधित पुलिस,वकील, प्रतिवादी, न्यायाधीश आदि सभी वही करने का प्रयास करते है जिसे वे सही समझते है, परंतु प्रत्यक्षण, संज्ञानात्मक तथ्य, भावनाएं व्यवहार एवं व्यक्तियों के निर्णय अन्य कारकों से प्रभावित होकर सच्चाई एवं न्याय को प्रभावित करते हैं। फलतः कानूनी सामाजिक मनोविज्ञान की आवश्यकता होती है जो विधिक प्रक्रिया पर वैज्ञानिक कारकों के प्रभाव का पता लगाने में सहायता करते हैं। यही प्रभावी कारक न्यायालय में उसी प्रकार कार्य करते हैं जैसे मनोवैज्ञानिक प्रयोगशालाऐं। इसका परिणाम यह होता है कि न्यायिक निर्णय कुछ सीमा तक अशुद्ध हो जाते हैं।

15.3.1 परीक्षण प्रारम्भ होने से पूर्व की मुख्य प्रक्रियाएं

किसी भी अपराधिक घटना में प्रभावित व्यक्ति प्रत्यक्षदर्शी, संभावित अपराधी (अभियुक्त) अथवा घटना स्थल की परिस्थिति मुख्य साक्ष्य होते हैं। उक्त व्यक्तियों से घटना से संबंधित प्रश्न करने पर जो उत्तर मिलता है एवं घटना स्थल की परिस्थितियों को मिलाकर घटना कहानी का निर्माण कर संभावित

अपराधिक कानून जिसका उलंघन हुआ है का उल्लेख करते हुए रिपोर्ट न्यायालय में प्रस्तुत करने तक की कार्यवाही ट्रायल के पूर्व की कार्यवाही होती है। प्रकरण को न्यायालय में जाने से पूर्व घटना की जाँच पुलिस द्वारा की जाती है तथा घटना की पूरी सूचना, सूचना तंत्रों द्वारा भी एकत्रित की जाती है। अतः स्पष्ट है कि ट्रायल से पूर्व गवाहों, संभावित अभियुक्त एवं प्रभावित व्यक्तियों से पुलिस द्वारा किये गये प्रश्नों के प्रभावों एवं मामले से संबंधित सूचना तंत्रों द्वारा प्रचारित सूचना ही ट्रायल की दिशा तय करते हैं। पुलिस द्वारा गवाहों से लिये गये प्रभावी साक्षात्कार इस बात पर निर्भर करते हैं कि पुलिस द्वारा सूचना प्राप्त करने हेतु किस तरह का रास्ता अपनाया गया है। गवाहों का बयान पुलिस के किसी दबाव में नहीं लिया गया है।

15.3.2 पुलिस कार्यवाही का विस्तृत प्रभाव

अनेक कानूनविदों का मानना है कि सामान्यतः लोग स्वयं की अभिरूचि से प्रेरित होकर न्यायिक निर्णयों को मानते हैं। (Misconception 1997) सामाजिक मनोवैज्ञानिक शोधों के अनुसार संभवतः अधिकांश लोक कानून एवं किसी विधिक प्रक्रिया से प्राप्त परिणाम को तभी तक मानते हैं जब तक उन्हें यह विश्वास रहता है कि कानून एवं प्रक्रिया साफ सुथरी है। न्यायिक निर्णय भेदभाव पूर्ण नहीं है (Miller & Ratner 1996, Tyler et al 1997) प्रत्येक व्यक्ति का विश्वास विधिक प्रक्रिया पर उसके व्यक्तिगत अनुभव पर आधारित होता है। इस प्रकार का व्यक्तिगत अनुभव पुलिस से ही प्रारम्भ होता है। साक्ष्यों के इन्टरव्यू के प्रायः दो उद्देश्य होते हैं। पहला उद्देश्य तो यह होता है कि संभावित अपराधी (अभियुक्त) किसी भी प्रकार अपना अपराध स्वीकार कर लें। दूसरा उद्देश्य यह होता है कि सच्चाई जानने के लिए अन्य साक्ष्यों को एकत्रित कर एक दूसरे से सह संबंधित करना होता है। दूसरे तरीके से लक्ष्य प्राप्त करने हेतु मित्रवत एवं सहकारी व्यवहार से साक्ष्यों के बयान लेना उचित होता है। इसके विपरीत गुस्से से डरा धमका कर लिये गये बयान से न्यायिक प्रक्रिया प्रदूषित होती है।

इसी प्रकार अभियुक्त, साक्षी या प्रभावित व्यक्ति यदि मानसिक रूप से अस्वस्थ है, अति उत्साही है तो बीमारी के प्रभाव में गलत बयान दे सकता है। (पियर्स 1995) प्रश्न करने का चाहे जो भी स्टाइल हो परंतु स्थान का भी साक्ष्यों पर प्रभाव पड़ता है। जैसे पुलिस यदि पुलिस स्टेशन पर बुलाकर प्रश्न करती है तो पुलिस स्टेशन का भय उसे हो सकता है। अतः इसी दृष्टिकोण से यह उचित है कि वह साक्ष्य/अभियुक्त के घर या उसके कार्यस्थल पर ही प्रश्न कर उसका बयान ले। साक्षात्कार के समय अभियुक्त से कोई बहस नहीं की जा सकती। वह कोई अवरोध भी नहीं उत्पन्न कर सकता। संभावित अपराधी के ऊपर समाज के प्रभाव का भी दबाव रहता है। उक्त सभी परिस्थितियों में निम्नलिखित तीन कारक साक्ष्य/संभावित अभियुक्त को उत्तर देने के लिए कार्य करते हैं।

i. ठीक उत्तर के प्रति अनिश्चितता बनी रहती है।
ii. प्रश्न पूछने वाले अधिकारी के प्रति कुछ अंशों तक विश्वास
iii. एक मूक प्रत्याशी ही वह उत्तर जानता है।

इन कारणों से साक्षी, अभियुक्त यह नहीं कह पाता कि मैं नहीं जानता हूँ। 'मुझे याद नहीं है'। ''मैं निश्चित रूप से नहीं कह सकता। अधिकतर लोग कम से कम प्रस्तावित रूप से कोई उत्तर दे देते हैं।

15.3.3 निरपराध के द्वारा की गयी गलत स्वीकारोक्ति

सजा की धमकी से की गयी स्वीकारोक्ति को न्यायाधीश द्वारा अमान्य किया जा सकता है परंतु साक्षी/अभियुक्तों को सहयोग देने एवं दण्ड की प्रक्रिया को साधारण बता कर प्राप्त की गई स्वीकारोक्ति जज द्वारा ग्राहय हो सकती है। साक्ष्य/अभियुक्तों के समक्ष अंगुलियों के फर्जी निशान, पालीग्राफ मशीन के फर्जी परिणाम, प्रत्यक्ष साक्षी की गलत पहचान कराकर एवं गलत सूचना देकर पुलिस एक निरपराध व्यक्ति से स्वीकारोक्ति प्राप्त कर सकती है। धोखाधड़ी से प्राप्त स्वीकृति की शक्ति की जाँच करने के लिए जाँचकर्ता पुलिस द्वारा एक प्रयोग आयोजित किया गया। इस प्रयोग में सभी पुरूष छात्र थे, जो प्रयोगशाला में एक रासायनिक प्रयोग कर रहे थे, जिसमें प्रतिक्रिया का समय निर्धारित था। प्रयोग के दौरान दुर्घटना घट गई और प्रत्येक छात्र को इस समस्या के लिए दोषी मानते हुए उन्हें अभियुक्त मान लिया गया। इस प्रकरण में पुलिस द्वारा निरपराध स्कूल से फर्जी स्वीकारोक्ति प्राप्त करने का प्रयास किया गया (Kassin & McNall 1991)

एक शोधकर्ता अपने एक दूसरे महिला शोधकर्ता के साथ प्रयोगशाला में कार्य कर रहा था। प्रयोग में महिला शोधकर्ता द्वारा अक्षरों की एक सूची से अक्षर बोलना था। इसे पुरूष शोधकर्ता द्वारा इन अक्षरों को कम्प्यूटर के की बोर्ड पर टाइप करना था। इसमें एक विशेष निर्देश यह था कि किसी भी तरह आल्ट की नही दबनी चाहिए। अन्यथा पूरा प्रोग्राम एवं डाटा समाप्त हो जायेगा। प्रयोग के दौरान एकाएक कम्प्यूटर कार्य करना बन्द कर दिया। प्रोग्राम आंकड़े समाप्त हो गये। इसमें शोधकर्ता द्वारा निम्न कथन किए जा सकते हैं-

i. वह गलत स्वीकारोक्ति कर ले।
ii. वह कह सकता है कि दूसरे शोधकर्ता ने 'आल्ट की' को दबाया है जिसे मैंने दबाते हुए देखा है।
iii. शोधकर्ता दूसरे शोधकर्ता से बातचीत कर स्मरण कराना चाहता है कि किस भूल से आल्ट की दब गयी है।

उपरोक्त प्रकरणों के आधार पर कैसिन (1997) ने यह निष्कर्ष दिया कि वर्तमान में आपराधिक न्याय पद्धति ऐसे निरपराध व्यक्ति, जो अभियुक्त की श्रेणी में आते हैं को पर्याप्त सुरक्षा नहीं प्रदान करती एवं तोड़-मरोड़ गलत तरीके से प्राप्त स्वीकारोक्ति पर विश्वास नहीं करती है।

15.3.4 सूचनातंत्रों का पब्लिक पर प्रभाव

i. **अपराध प्रत्यक्षण पर पब्लिक में सूचना तंत्रों का प्रभाव-** प्रत्येक दिन अखबारों, टेलीविजन, रेडियो आदि पर अपराध एवं अपराधियों से संबंधित सूचनाएं बढ़ा-चढ़ा कर दिखायी जाती है। इसका कारण यह है कि जनता ऐसी आपराधिक सूचनाएं देखना, सुनना अधिक पसंद

करती है। अच्छे परोपकारी कार्यों पर उनका ध्यान कम जाता है। इससे पब्लिक में यह संदेश जाता है कि आपराधिक घटनाएं बढ़ रही है। कानून एवं व्यवस्था चरमरा गयी है। शासन की अक्षमता बताकर उसे और चुस्त दुरूस्त करने का संदेश जाता है। अपराध का डर अपराध का शिकार होने पर आधारित नहीं है, बल्कि यह एक संज्ञानात्मक कारक है। (Winkel 1998) हम जब भी अपराध की बढ़ती दर एवं इसके खतरे पर सोचते हैं तो हमारा ध्यान मीडिया द्वारा उपलब्ध करायी गयी सूचनाओं पर जाता है। आजकल बलात्कार, अपहरण, कत्ल, डकैती आदि आपराधिक घटनाएं बहुत ही सामान्य हो गई है। ऐसी स्थिति पहले कभी नहीं थी। मीडिया द्वारा प्रदर्शित सघन आपराधिक समाचार द्वारा हमें अपराध के विषय में जानकारी होती है। क्योंकि धनात्मक सूचनाओं की अपेक्षा ऋणात्मक घटनाएं व्यक्ति पर अधिक संज्ञानात्मक छाप छोड़ती है। (Skowronski & carlston 1989) उदाहरण के लिए यदि हमें सूचना मिलती है कि अमुक व्यक्ति अच्छा कार्य कर रहा है। वह अपने परिवार के लिए समर्पित है तो इस पर लोगों का कम ध्यान जाता है। यदि उसी व्यक्ति के विषय में यह सूचना मिले कि वह बहुत बड़ा अपराधी हो गया है। उस पर एक संगठित अपराधिक समूह से संबंध रखने का दोषारोपण हुआ है। उसका एक विदेशी नृत्यांगना से नाजायज शारीरिक संबंध है। इस प्रकार की नकारात्मक सूचना का जनता में अधिक प्रभाव पड़ता है। इस प्रकार की घटनाएं लोगों को अधिक दिन तक याद रहती हैं। बुरी खबर प्रायः अच्छी खबर की तुलना में अधिक रूचिकर होती है। अच्छी खबरें जैसे अपराधों में कमी स्वस्थ आर्थिक व्यवस्था, लम्बी जीवन अवधि, बजट की अधिकता, नागरिक उपद्रव की कमी इन धनात्मक समाचारों से बुरे समाचारों की इच्छा पूर्ण नहीं होती है। (Pooley 1997) सम्भवतः हमें संतुष्ट करने के लिए नकारात्मक घटनाओं को नाटकीय ढंग से प्रस्तुत करने की आवश्यकता होती है। इस प्रकार की हमारी इच्छा विभिन्न प्रकार के सूचना तंत्रों के द्वारा कहानी सहित प्रस्तुत करने पर पूर्ण हो जाती है जैसे कि टीवी में बाहरी आकाश से खतरा प्राकृतिक आपदा एवं एक डूबता हुआ जहाज आदि जैसे प्रसारण हमारी उत्सुकता और बढ़ा देते हैं।

ii. **आरोपी अपराधियों (अभियुक्त) के प्रत्यक्षण पर, पब्लिक में सूचना तंत्रों की रिपोटिंग का प्रभाव-** किसी संभावित अपराधी के गिरफ्तार होने की जैसे ही खबर मिलती है, वैसे ही मानव मस्तिष्क में एक चित्र उभर कर आ जाता है कि अपराधी हथकड़ियों में बंधा हुआ, पुलिस अधिकारियों से घिरा हुआ जा रहा है और मीडिया कर्मी उस अपराधी एवं अपराध से संबंधित घटनाओं की रिपोर्टिंग करते रहते हैं उनकी रिपोर्टिंग बहुत रोचक ढंग से होती है। बीच-बीच में मीडिया कर्मी, पब्लिक, पुलिस आफिसर एवं अपराधी से लिए गये साक्षात्कार को दिखाते रहते हैं। ऐसी घटनाओं पर मीडिया कर्मी अपनी प्रतिक्रिया भी देने से नहीं चूकते हैं। चूँकि ऐसी वीडियो रिकार्डिंग प्रायः सभी आपराधिक मामलों में की जाती है और इनका व्यापक रूप से टी. वी. पर प्रसारण भी होता है। अतः ऐसी घटनाओं का चित्र मानव मस्तिष्क में आसानी से आ जाता है तथा आगे भी स्मरण रहता है। यद्यपि इस स्टेज तक अपराधी का अपराध सिद्ध नहीं हुआ रहता

है। अतः अपराध सिद्ध होने से पूर्व वह मात्र प्रत्याशित अपराधी है। ट्रायल पूर्ण हो जाने के बाद न्यायिक प्रक्रिया के द्वारा यदि उसका अपराध सिद्ध हो जात है तो वह अपराधी है। अपराध सिद्ध न होने की दशा ने उसे अपराधी नहीं माना जा सकता है। पब्लिक केवल मीडिया के प्रसारण देखकर प्रथम दृष्टया आरोपी को अपराधी मान लेती है। पब्लिक को ऐसे कोई साक्ष्य उपलब्ध नहीं कराये जा सकते जिससे उसके निरपराध होने का प्रमाण मिलता हो। इसके अतिरिक्त मीडिया की स्वीकारोक्ति पर पब्लिक के विश्वास करने की प्रवृत्ति होती है। (Gilbert, Tafarodi & Malone 1993) अपराध हमेशा भयानक होता है। अतः लोग मामले का शीघ्र निस्तारण कर आरोपी के अपराध को सुनिश्चित कराना चाहते हैं अथवा असली अपराधी का पता लगाने में शीघ्रता चाहते हैं। अतः पब्लिक में गिरफ्तार व्यक्ति का प्रत्यक्षण एक अपराधी के रूप में होता है। मुख्य विचारणीय बिंदु यह है कि किसी अपराधी के आरोपी होने या न होने से संबंधित साक्ष्य पुलिस की जाँच के उपरान्त न्यायालय में प्रस्तुत किये जाते हैं। साक्ष्य संबंधी न्यायालय की इस प्रक्रिया के बहुत पहले पब्लिक संभावित अपराधी को अपराधी मान लेती है। परीक्षण के पूर्व के प्रचार एवं इससे उत्पन्न पब्लिक अवधारणा से अभियोजन पक्ष को सहायता तथा बचाव पक्ष को हानि होती है। इनका प्रभाव न्यायिक निर्णय को भी प्रभावित कर सकता है।

अतः किसी अपराधिक घटना के विषय में विस्तृत रूप से सुनने एवं टी.बी. या अखबारों में देखने व पढ़ने से यह नहीं समझना चाहिए कि अपराधिक मामला सुलझ गया है या आरोपी का अपराध सिद्ध हो गया है। अपराध सिद्ध या निरपराधी सुनिश्चित करने से पहले एक आरोपण, एक परीक्षण प्रतिवादी के पक्ष में अथवा विपक्ष में साक्ष्य प्रस्तुतीकरण कानूनी विषय का सूक्ष्म निरीक्षण एवं न्यायिक सदस्यों में सहमति उत्पन्न करना आवश्यक होता है। अतः स्मरण रहे कि एक आरोपी के मात्र गिरफ्तार हो जाने वे स्वतः अपराधी नहीं हो जाता है। न्यायिक परीक्षण से पूर्व वह मात्र आरोपी/प्रत्याशित अभियुक्त (accused) होता है। यह अवश्य है कि मीडिया के प्रचार-प्रसार से न्यायिक प्रक्रिया में कुछ सीमा तक सहायता मिल सकती है। इस आधार पर पब्लिक को सरकार का ध्यान आकृष्ट करने में भी मदद मिलती है।

15.4 प्रत्यक्षदर्शी साक्ष्य

साक्ष्य ऐसे व्यक्ति जिन्होंने घटना को स्वयं अपनी आँखों से देखा है या कानों से सुना है या मामले से संबंधित कुछ विश्वसनीय प्रेक्षण किया है को न्यायालय द्वारा न्यायिक प्रक्रिया के अन्तर्गत शपथ लेकर बयान देने हेतु बुलाया जा सकता है। इन्हें साक्षी कहा जाता है।

प्रत्यक्षदर्शी साक्ष्य (Eye witness) -उपरोक्त साक्षियों में से ऐसे व्यक्ति जिन्होंने घटना को प्रत्यक्ष अपनी आँखों से देखा है वे प्रत्यक्षदर्शी साक्ष्य के अन्तर्गत आते हैं। अपराधिक मामलों में इनकी भूमिका बहुत महत्वपूर्ण होती है। अच्छे प्रत्यक्षदर्शी साक्ष्य की विशेषताएं-

सभी साक्ष्य अभियोजन अथवा बचाव पक्ष या विपक्ष में हो सकते हैं। प्रत्यक्षदर्शी साक्ष्य के शपथ लेकर दिये गये बयान न्यायधीशों द्वारा दिये जाने वाले निर्णय की दिशा में मुख्य भूमिका निभाते हैं। (Wolf &Bugaj 1990) विशेष रूप से ऐसे साक्ष्य स्वयं में दृढ़ एवं आस्वस्त दिखाई देते हैं। वे नर्वस नहीं होते हैं

और अपनी स्वेच्छा से अनेक तथ्यों को बताने में हिचकिचाते नहीं हैं। (Bell & Loftus 1998) इससे स्पष्ट है कि ऐसे व्यक्ति जो साक्ष्य के रूप में गवाही देने के लिए शपथ लेते हैं उनका सही होना अत्यधिक महत्वपूर्ण है।

15.4.1 साक्ष्यों के गलत होने के कारण

i. भावनात्मक अवरोध-वास्तव में साक्ष्यों द्वारा प्रायः गलतियां की जाती है। इसका मुख्य कारण तीव्र भावनात्मक हस्तक्षेप होता है। यह भावनात्मक हस्तक्षेप उस समय और समस्या बन जाता है जब साक्ष्य ही अपराधिक घटना का शिकार हुआ हो।
   एक घटना में बलात्कार की शिकार महिला द्वारा बलात्कारी के रूप में एक व्यक्ति की गलत पहचान की गयी। वह व्यक्ति बलात्कार में सम्मिलित नहीं था। भुक्त भोगी महिला की पहचान पर न्यायालय द्वारा उसे दण्डित करने के फलस्वरूप वह तब तक जेल में रहा जब तक वास्तविक बलात्कारी ने अपना अपराध कबूल नहीं कर लिया। वास्तविक बलात्कारी के अपराध स्वीकार कर लेने के बाद ही निरपराध व्यक्ति को जेल से छोड़ा जा सका। (Loftus 1992a) इस प्रकार की गलत पहचान की घटना प्रायः होती रहती है। इससे स्पष्ट है कि निरपराधी व्यक्ति को गलत ढंग से अपराधी बनाने में गलत प्रत्यक्षदर्शी गवाह की अकेले ही अहं भूमिका होती है। (Wells 1993 Wells, Luus & Windschitl 1994)

ii. विलंबित न्यायिक प्रक्रिया-न्यायिक प्रक्रिया पूर्ण होने में काफी समय लगता है। न्यायालय में साक्ष्यों की जाँच के समय तक इतना अधिक समय बीत जाता है कि गवाह बहुत सारी बातें भूल जाता है। जैसे पुलिस द्वारा किए गये प्रश्न, समाचार कहानियां, एवं दूसरे व्यक्तियों के दिए गये बयान से संबंधित सूचनाएं उसे याद नहीं रहती हैं। जब कि घटना के घटित होने के समय उसे स्मरण रहता है। वास्तव में गवाह को क्या याद है तथा बाद में उसने और क्या जाना, इसमें अन्तर कर पाने में कठिनाई होती है। फलतः गवाह गलती कर बैठता है, जबकि गवाही देते समय उसका विश्वास रहता है कि उसकी स्मृति ठीक है। (Lindsay 1993)

iii. असम्यक प्रभाव-न्यायालय में साक्ष्य के त्रुटिपूर्ण होने का एक महत्वपूर्ण कारण असम्यक प्रभाव है। किसी व्यक्ति किसी घटना लालच या भय के गलत दबाव में आकर गवाह का गलत हो जाना असम्यक प्रभाव के अन्तर्गत जाता है। इस प्रकार का दबाव, गवाह के किसी संबंधी, प्रभावशाली व्यक्ति या उस जाति/समूह जिससे वह संबंधित है द्वारा डाला जा सकता है। (Platz & Hosch 1988) कभी-कभी ऐसा होता है कि जाँच पुलिस अधिकारी द्वारा भी गवाह पर दबाव डालकर साक्ष्य को प्रदूषित कराने का प्रयास किया जाता है। (Luus & Wells 1994) जैसे पुलिस दबाव में एक गवाह द्वारा एक व्यक्ति की गलत पहचान की गई है। दूसरे गवाह द्वारा भी उसी व्यक्ति की पहचान करने से पहले गवाह का मनोबल बढ़ जाता है। जबकि उसके द्वारा पहचान गलत की गई है। घटना से संबंधित अभियुक्त यदि हथियार सहित पकड़ा गया है तो ऐसे मामलों में साक्ष्य त्रुटियां अधिक होती है। (Tooley et al 1987)

iv. अवयस्क साक्षी-बाल अपराधिक मामलों में, जब किसी अवयस्क व्यक्ति को गवाही के लिए बुलाया जाता है तो एक विशेष समस्या उत्पन्न होती है। (Lamb 1998) समझदारी की दृष्टि से एक अवयस्क की गवाही पर वयस्क की अपेक्षा कम विश्वास किया जा सकता है। (Leippe & Roman 1987) अवयस्क बच्चे को कोर्ट रूम की संभावित भावनात्मक भय से मुक्त रखने के लिए उसकी गवाही भयमुक्त वातावरण में किसी वकील द्वारा लेकर उसे न्यायाधीश को प्रस्तुत की जाती है। फिर भी जब बच्चे को अपने शब्दों में गवाही करते हुए प्रेक्षक देखता है तो किसी द्वितीयक साक्ष्य से बच्चा अत्यधिक विश्वसनीय दिखायी देता है। (Luus Wells & Turtle 1995) यदि अन्य गवाहियां/परिस्थितियां बच्चे द्वारा बतायी गयी घटना की कहानी से मेल खाती हैं, अभियुक्त का चरित्र संदिग्ध हो और न्यायिक अधिकारी पुरूष के स्थान पर महिला हो (Bottoms & Goodman 1994) तो शोध बताते हैं कि बड़े लोगों की अपेक्षा छोटे बच्चों की गवाही को न्यायिक अधिकारी अधिक मान्यता देते हैं। इसके बावजूद भी जहां एक युवक की गवाही किसी सुझाव से प्रभावित हो सकती है वहां साक्षात्कार की प्रश्नावली पद्धति से बच्चों पर और अधिक प्रभाव पड़ना कोई आश्चर्य की बात नहीं है। (Burke 7 Ceci 1997 Ceci & Hembroke 1998) किसी अपराध में किसी बच्चे की गवाही एवं किसी युवक के बचपन के अनुभव के सत्यापन की समस्या, मनोवैज्ञानिकों एवं विधिवेत्ताओं के लिए एक महत्वपूर्ण विचारणीय विषय है।

15.4.2 प्रत्यक्षदर्शी के साक्ष्य में सच्चाई की वृद्धि

गवाहों द्वारा दी गई गवाही में त्रुटि की संभावना के बावजूद भी यह नहीं कहा जा सकता कि प्रत्यक्षदर्शी हमेशा गलत ही होते हैं। प्रायः वे पूर्णतः सत्य भी होते हैं। (Yuille & Cutshall 1986) इसके अतिरिक्त समस्त साक्षियों में सत्यता बढ़ाने के लिए अनेकों प्रयास किये गए हैं। अपने शोध में Munsterberg (1907) ने वशीकरण को इसका एक संभव हल बताया। पुनः इस विचार का परित्याग कर उन्होंने इससे आसान हल बताया जिससे गलत स्मृतियों को इंगित किया जा सकता है।

पुलिस द्वारा की जाने वाली जाँच में कड़ी से कड़ी मिलाकर असली अपराधी की पहचान करने का प्रयास किया जाता है। इस प्रक्रिया में वह संभावित अपराधी (अभियुक्त) के साथ-साथ अन्य व्यक्तियों से भी पूछताछ करता है। पुलिस की इस प्रक्रिया का मुख्य लक्ष्य गवाहों में सच्चाई की तलाश करना होता है। अभियुक्त की पहचान करने के लिए सच्चे गवाहों में दृढ़ता बढ़ाने का प्रयास करता है। वेल एण्ड लस (1990) ने पुलिस की कड़ी से कड़ी मिलाने की प्रक्रिया (line up) को एक सामाजिक मनोवैज्ञानिक प्रयोग के समान बताया है। इस प्रयोग में जाँच करने वाला पुलिस अधिकारी प्रयोगकर्ता प्रत्यक्षदर्शी प्रयोज्य संभावित अपराधी (अभियुक्त)- प्राथमिक उद्दीपक गवाहों की धनात्मक पहचान, व्यवहारिक आंकड़े तथा संभावित अभियुक्त के अतिरिक्त अन्य व्यक्तियों की उपस्थिति कड़ी से कड़ी मिलाने का प्रबंध ''रिसर्च डिजाइन'' निर्माण करते हैं। पुलिस के पास अभियुक्त एक अपराधी है। यह परिकल्पना

होती है। प्रयोग और कड़ी से कड़ी मिलाने की प्रक्रिया में पूर्ण निश्चितता नहीं होती है। इसलिए प्रयोग या परीक्षण के लिए प्राप्त आंकड़े संभावना पर निर्भर करते हैं।

जिस प्रकार एक मनोवैज्ञानिक प्रयोग में प्रयोगकर्ता का भेदभाव (Bias) एक नियंत्रण समूह का अभाव मांग विशिष्टता आदि त्रुटियां हो सकती हैं। पुलिस की जाँच में यही कारक गवाहों को भी प्रभावित करते हैं। नियंत्रित समूह की व्यवस्था करके जैसे प्रयोग की त्रुटि को ठीक किया जाता है वैसे ही पुलिस की जाँच के समय साक्षियों की त्रुटियों को ब्लैंक लाइन अप कन्ट्रोल (Blank lineup control) प्रविधि द्वारा सुधारा जा सकता है। इस प्रविधि के अन्तर्गत पुलिस के ऐसे लाइन अप को सर्वप्रथम साक्षी को दिखाया जाता है जिसमें केवल ऐसे व्यक्ति हो जो घटना से बिल्कुल अनभिज्ञ एवं प्रत्याशित अभियुक्त में न हो (Wells 1984) यदि साक्षी उनमें से किसी की पहचान नहीं करता है तो उनकी गवाही के सत्य होने में दृढ़ता बढ़ती है। यदि लाइन अप में पाये जाने वाले किसी निरपराध व्यक्ति की पहचान साक्षी द्वारा की जाती है तो साक्षी को गलत पहचान करने के खतरे को बताते हुए सचेत किया जाता है। इसके बाद उचित लाइनअप गवाह के समक्ष प्रस्तुत करने पर साक्षी के सही गवाही करने की संभावना काफी बढ़ जाती है।

गवाहों की गवाही में शुद्धता लाने के लिए दूसरा तरीका यह है कि अभियुक्त की पहचान से पूर्व जाँच अधिकारी साक्षी के सामने अपराधिक घटना एवं घटना से प्रभावित व्यक्ति से संबंधित दृश्य प्रस्तुत करें (Cutler Penrod & Martens 1987) लाइन अप को देखते ही यदि साक्षी समूह की अपेक्षा किसी एक व्यक्ति की पहचान करता है (Leary 1988) तो इस प्रकार प्रोत्साहित साक्षियों का अपने को सही साबित करने का प्रथम प्रयास हो सकता है। (Dunning & stern 1994)

15.5 एक न्यायिक परीक्षण में सम्मिलित होने वाले मुख्य पक्ष-

एक न्यायिक परीक्षण में अधिवक्ता न्यायाधीश एवं प्रतिपक्षी ही मुख्य पक्ष होता है। यू.एस.ए.एव ब्रिटेन में जूरी सदस्य भी होते हैं जो न्यायिक निर्णय में न्यायाधीश की मदद करते है। यहां पर भारतीय पद्धति के अनुसार अधिवक्ता न्यायधीश एवं प्रतिपक्षी आदि को ही पक्षवार मानते हुए उनका ही वर्णन किया जा रहा है।

i. **अधिवक्ता-**कोई परीक्षण केवल उद्देश्यपूर्ण साक्ष्यों एवं तर्कों पर ही निर्भर नहीं करता है। न्यायपक्ष में अधिवक्ताओं की मुख्य भूमिका होती है। इसका प्रभाव केवल साक्ष्य संबंधी विषयों एवं कानूनी तकनीकियों तक ही सीमित नहीं रहता है। अभियोजन पक्ष का वकील अभियुक्त से संबंधित गलतियों को इंगित करता है। जबकि बचाव पक्ष का वकील अभियुक्त का बचाव करता है। ऐसा करते समय दोनों पक्ष के वकीलों का नाटकीय व्यवहार न्यायधीशों को अपने पक्ष में प्रभावित करना होता है। दोनों पक्ष के वकील न्यायाधीश की निगाह में विद्वान ईमानदार एवं उनकी पसंद बनना चाहते हैं। वे आपराधिक घटना से संबंधित ऐसी कहानी गढ़कर सुनाते हैं जिससे अभियुक्त अपराधी साबित हो जाये या निरपराध साबित हो जाये। अनेक दृष्टिकोण से एक आदर्श परीक्षण वकील कानूनविद एवं कुशल पात्र दिखाई देता है।

ii. **न्यायाधीश-**न्यायिक परीक्षण में न्यायाधीश की मुख्य भूमिका नियमों का अनुपालन कराना एवं भेदभाव (Bias) पर नियंत्रण करना होता है। यद्यपि न्यायाधीशों को पूर्णतः निष्पक्ष एवं न्यायप्रिय समझा जाता है फिर भी वह एक मनुष्य है जिससे गलतियां हो सकती है। उनकी गल्तियों का सीधा प्रभाव परीक्षण के परिणाम पर पड़ता है। न्यायधीशों को साक्ष्यों में औपचारिक रूप से स्वीकार किये गये तथ्यों के आधार पर निर्णय देना होता है। निर्णयों में विधिक नियमों का पालन भी निष्पक्षता से करना होता है। कभी-कभी संज्ञानात्मक प्रविधियाँ ऐसी पायी जा सकती हैं जिससे न्यायाधीश के कथन किसी भी पक्ष को प्रभावित कर सकते हैं। कभी साक्षियों की कोई सूचना लीक हो जाती है, जिस पर विरोधी पक्ष अपनी आपत्ति दर्ज कर देता है। जज द्वारा साक्ष्य के उस भाग को अस्वीकार कर दिया जाता है। कैसिन एवं सोमर्स (Kassin Sommers,1997) के अनुसार गवाही के किसी भाग को न्यायाधीश द्वारा अस्वीकृत करने का कारण महत्वपूर्ण है। किसी गवाही के किसी भाग को अस्वीकृत करते समय न्यायाधीश को उचित कारण का उल्लेख करना आवश्यक है।

जब अस्वीकार्य साक्ष्य पूर्णतः भावनात्मक हो तो न्यायाधीश की निष्पक्षता प्रभावित होती है। जैसे ग्रेफिक सूचना प्राप्त होने पर कि अभियुक्त ने एक महिला को काट डाला है। नियमतः ऐसी सूचना को अस्वीकार करने की अपेक्षा नियमतः स्वीकृत कर ली जाती है। (Edwards & Bayani 1997)

इसी प्रकार एक प्रकरण में टेलीफोन पर अभियुक्त द्वारा अपने मित्र से एक महिला को जान से मार देने की बात कही गई। इस टेलीफोन वार्ता को टेप करके न्यायालय में साक्ष्य के रूप में प्रस्तुत करने पर बचाव पक्ष द्वारा आपत्ति की गई। इसमें निम्नलिखित तथ्य सामने आये-

a. पुलिस द्वारा बिना वारंट के टेलीफोन वार्ता टैप की गई। अतः यह प्रक्रिया दोषपूर्ण थी। अतः इसे अस्वीकृत किया जा सकता है।
b. टेप की हुई टेलीफोन वार्ता सुसंगत नहीं हो सकती है।

इस प्रकरण में अभियुक्त को अपराधी माना गया। रूलिंग को बिल्कुल नजरंदाज कर दिया गया। रंग भेद, जाति भेद, लिंग भेद सूचना विधा की भिन्नता, जज की मनोवृत्ति आदि से न्यायिक निर्णय प्रभावित होते हैं। यदि आपराधिक कार्य का दोष प्राथमिक रूप से समाज पर होता है तो अभियुक्त को भी भुक्तभोगी मानते हुए उसे दोषमुक्त किया जा सकता है। कानूनी तानाशाही प्रभाव में प्रायः उनकी प्रवृत्ति अभियुक्त को सदैव दोषी मानने की ही रहती है। न्यायाधीशों द्वारा निर्णय देने के लिए स्वविवेक से अनेक स्वनिर्मित नियम लागू किए जाते हैं। ऐसे निर्णयों का कोई कानूनी आधार नहीं होता है। जैसे बलात्कार में महिला की शारीरिक चोट एवं पुलिस में शीध्रता से रिपोर्ट को ही आधार मानकर बलात्कारी को दोषी मान लिया जाता है। इस तथ्य की बिल्कुल उपेक्षा कर दी जाती है कि प्रकरण बलात्कार से भिन्न पारस्परिक सहमति का भी हो सकता है।

कानूनी पद्धति पर अनेक शोध बताते हैं कि बिल्कुल सामान्य मानव प्रतिक्रियाओं के कारण प्रायः न्यायिक प्रक्रिया निष्पक्ष नहीं रह पाती है। न्यायालय से भी भेदभाव की संभावना बनी रहती है।

iii. **प्रतिपक्षी की भूमिका एवं विशेषता-**न्यायालय में प्रतिपक्षी न्यायाधीशों के लिए अजनबी रहता है। न्यायाधीश द्वारा इस अजनबी प्रतिपक्षी के कथनों की काट करते हुए उसका मूल्यांकन किया जाता है। इस प्रतिक्रिया में अनेक सामाजिक मनोवैज्ञानिक कारक आते हैं। इनमें मूक सूचना संप्रेक्षण, व्यक्तिगत, शीलगुण, प्रभाव डालना, प्रभाव प्रबंधन, पूर्वाग्रह तथा भेदभाव अन्तर्वैयक्तिक आकर्षण आदि का प्रभाव सैद्धांतिक रूप से न्यायिक अधिकारियों पर अभियुक्त के परीक्षण में नहीं पड़ता है। फिर भी प्रतिपक्षी के उपरोक्त मनोवैज्ञानिक गुण न्यायालय को प्रभावित करने में कुछ सीमा तक अवश्य कार्य करते हैं।

सामाजिक भिन्नता अभियुक्त के आकर्षण व्यक्तित्व, लिंग, सामाजिक स्तर एवं व्यवहार का सीधा प्रभाव न्यायिक निर्णय पर पड़ सकता है।

अभ्यास प्रश्न

1. लोग कानून एवं किसी विधिक प्रक्रिया से प्राप्त परिणामों को तभी तक मानते हैं जब तक उन्हें ये विश्वास रहता है कि ______________साफ सुथरी है।
2. पुलिस द्वारा गुस्से से डरा धमका कर लिए गये बयान से ______________ होती है।
3. सजा की धमकी से की गई _____________को न्यायाधीश द्वारा अमान्य किया जा सकता है।
4. बुरी खबर प्रायः अच्छी खबर की तुलना में ______________होती है।
5. पब्लिक केवल मीडिया प्रसारण को देखकर ______________को अपराधी मान लेती है।
6. मीडिया की ______________पर पब्लिक के विश्वास करने की प्रवृत्ति होती है।
7. एक आरोपी को मात्र गिरफ्तार हो जाने से वह स्वतः ______________नहीं हो जाता है।
8. परीक्षण से पूर्व के प्रचार एवं इससे उत्पन्न __________से अभियोजन पक्ष को सहायता तथा बचाव पक्ष को हानि होती है।
9. प्रत्यक्षदर्शी साक्ष्य के शपथ लेकर दिये गये बयान न्यायधीशों/जूरी के सदस्यों द्वारा दिये जाने वाले ______________मुख्य भूमिका निभाते हैं।
10. एक न्यायिक परीक्षण में सम्मिलित होने वाले ______________ मुख्य पक्ष होते हैं।
11. गवाही के किसी भाग को जज द्वारा अस्वीकृत करने का ______________महत्वपूर्ण है।

15.6 सारांश

अपराध एवं सुधारात्मक दण्ड की प्रक्रिया में जहां कानून एवं न्याय की अहं भूमिका है वहीं इस क्षेत्र में सामाजिक मनोविज्ञान की उपयोगिता बहुत अधिक है। किसी भी अपराधिक घटना में प्रभावित व्यक्ति प्रत्यक्षदर्शी संभावित अपराधी (अभियुक्त) अथवा घटना स्थल की परिस्थिति मुख्य साक्ष्य होते हैं। इन

साक्ष्यों से घटना के संबंध में प्रश्न करने पर जो उत्तर मिलते हैं एवं घटना स्थल की परिस्थितियों को मिलाकर घटना कहानी का निर्माण कर संभावित अपराधिक कानून जिसका उल्लंघन हुआ है का उल्लेख करते हुए रिपोर्ट न्यायालय में प्रस्तुत करने तक का उल्लेख करते हुए रिपोर्ट न्यायालय में प्रस्तुत करने तक की कार्यवाही ट्रायल से पूर्व की कार्यवाही होती है। लोग कानून एवं किसी विधिक प्रक्रिया से प्राप्त परिणामों को तभी तक मानते हैं जब तक उन्हें यह विश्वास रहता है कि कानून एवं प्रक्रिया साफ सुथरी है। पुलिस धोखा-धड़ी या दबाव में लिये गये बयान से न्यायिक प्रक्रिया प्रदूषित होती है।

मीडिया द्वारा प्रदर्शित सघन आपराधिक समाचार द्वारा हमें अपराधों के बारे में जानकारी होती है क्योंकि धनात्मक सूचनाओं की अपेक्षा ऋणात्मक घटनाएं व्यक्ति पर अधिक संज्ञानात्मक छाप छोड़ती हैं। गिरफ्तार व्यक्ति का पब्लिक में प्रत्यक्षण एक अपराधी के रूप में होता है। परीक्षण के पूर्व के प्रचार व इससे उत्पन्न पब्लिक अवधारणा से अभियोजन पक्ष को सहायता तथा बचाव पक्ष को हानि होती है। अतः किसी अपराधिक घटना के विषय में विस्तृत रूप से सुनने एवं टीबी या अखबारों में देखने व पढ़ने से यह नहीं समझना चाहिए कि अपराधिक मामला सुलझ गया है या आरोपी का आरोप सिद्ध हो गया है। न्यायिक परीक्षण से पूर्व वे मात्र आरोपी/प्रत्याशित अभियुक्त होता है। यह अवश्य है कि मीडिया के प्रचार-प्रसार से न्यायिक प्रक्रिया में कुछ सीमा तक सहायता मिल सकती है। शासन को कानून एवं व्यवस्था की स्थिति समझने में मदद मिलती है।

ऐसे व्यक्ति जिन्होंने घटना को स्वयं अपनी आँखों से देखा हो या कानों से सुना हो या मामले से संबंधित कुछ विश्वसनीय प्रेक्षण किया है को न्यायालय द्वारा न्यायिक प्रक्रिया के अन्तर्गत शपथ लेकर बयान देने हेतु बुलाया जा सकता है। इन्हें साक्षी कहा जाता है। ऐसे व्यक्ति जिन्होंने घटना को प्रत्यक्ष अपनी आँखों से देखा है वे प्रत्यक्षदर्शी साक्ष्य के अन्तर्गत आते है। ऐसे साक्ष्य न्यायालय के निर्णय की दिशा में मुख्य भूमिका निभाते हैं।

भावनात्मक अवरोध, विलम्बित न्यायिक प्रक्रिया, असम्यक प्रभाव, अवयस्कता के कारण इसमें साक्ष्यों के गलत हो जाने की संभावना होती है।

अधिवक्ता जूरी न्यायाधीश, अतिपक्षी आदि एक न्यायिक परीक्षण में सम्मिलित होने वाले मुख्य पक्ष होते हैं। इनकी भूमिका महत्वपूर्ण होती है।

15.7 शब्दावली

1. **साक्ष्य** - गवाही
2. **ट्रायल** - परीक्षण
3. **प्रथम दृष्टया** - पहली दृष्टि
4. **अभियुक्त** - संभावित अपराधी
5. **अवयस्क** - नाबालिग
6. **समस्या** - कठिनाई
7. **त्रुटि** - गलती

8. **स्मृतियां** - यादें
9. **ब्लैंक** - रिक्त
10. **लाइनअप** - कड़ी से कड़ी मिलाना
11. **स्वीकार्य** - स्वीकार करने योग्य
12. **जूरी** - सक्षम नागरिकों का समूह जो न्यायिक निर्णय में न्यायधीश को अपनी राय देते है। इनके बहुमत के आधार पर जज निर्णय लेता है।

15.8 अभ्यास प्रश्न के उत्तर

1. कानून एवं प्रक्रिया
2. न्यायिक प्रक्रिया प्रदूषित
3. स्वीकारोक्ति
4. अधिक रूचिकर
5. प्रथम दृष्टया संभवित आरोपी
6. स्वीकारोक्ति
7. अपराधी
8. पब्लिक अवधारणा
9. निर्णय की दिशा में
10. अधिवक्ता , न्यायाधीश एवं प्रतिपक्षी
11. कारण

15.9 संन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. सिंह आर. एन(2007-2008) आधुनिक सामाजिक मनोविज्ञान, अग्रवाल पब्लिकेशन आगरा
2. सिंह आर. एन.(2005) आधुनिक सामाजिक मनोविज्ञान, विनोद पुस्तक मन्दिर आगरा-2
3. सिंह ए.के.(2002) समाज मनोविज्ञान की रूपरेखा, मोती लाल बनारसी दास दिल्ली
4. सिंह ए.के. (2000) उच्चतर सामान्य मनोविज्ञान, मोती लाल बनारसी दास दिल्ली
5. श्रीवास्तव डी.एन.(दसवां संस्करण) सामाजिक मनोविज्ञान, साहित्य प्रकाशन आगरा
6. श्रीवास्तव डी.एन.एवं अन्य(2000-2001) आधुनिक समाज मनोविज्ञान, एच.पी. भार्गव बुक हाउस आगरा।
7. भटनागर ए.बी.एवं अन्य डेवलेपमेन्ट ऑफ लर्नस एण्ड टीचिंग लर्निंग प्रोसेस, विनय राखेजा मोती लाल बुक डिपाटमेन्ट मेरठ
8. रोबर्ट ए बैरन एवं डांन बैरन (नौवा संस्करण) पीयर्सन एजूकेशन, (सिंगापुर) प्रा. लि. इण्डियन ब्रांच 482 एफ आइ ई, पटपडगंज दिल्ली 110092 इंडिया।

9. त्रिपाठी आर.बी. एवं सिंह आर. एन.(2002) व्यक्तित्व का मनोविज्ञान, सुमित भार्गव, गंगा एण्ड ग्रेण्ड सन्स सी.के. 37/44 बी बॉसफाटक वाराणसी
10. मुहम्मद सुलेमान (2006) सामान्य मनोविज्ञान, मूल प्रक्रियाऐं एवं संज्ञानात्मक प्रक्रियायें।, मोती लाल बनारसी दास दिल्ली
11. अग्रवाल विमल (2010-11) मनोविज्ञान एस.बी.पी.डी. पब्लिकेशन आगरा।

15.10 निबंधात्मक प्रश्न

1. परीक्षण प्रारम्भ होने पूर्व की प्रक्रिया के अन्तर्गत पुलिस कार्यवाही के विस्तृत प्रभाव की विवेचना कीजिए।
2. एक न्यायिक परीक्षण में सम्मलित होने वाले मुख्य पक्षों का वर्णन कीजिये।

इकाई 16- कार्य सेटिंग की स्थिति में सामाजिक मनोविज्ञान

इकाई संरचना-

16.1 प्रस्तावना
16.2 उद्देश्य
16.3 क्रीड़ा का सामाजिक मनोविज्ञान
16.4 शिक्षा का सामाजिक मनोविज्ञान
16.5 राजनीति मनोविज्ञान में समाज मनोविज्ञान
16.6 यातायात एवं परिवहन मनोविज्ञान
16.7 व्यवसाय में सामाजिक मनोविज्ञान की भूमिका
16.8 सारांश
16.9 शब्दावली
16.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
16.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
16.12 निबंधात्मक प्रश्न

16.1 प्रस्तावना

कार्य सेटिंग की स्थिति में क्रीड़ा मनोविज्ञान , शिक्षा के सामाजिक मनोवैज्ञानिक , राजनीति का सामाजिक मनोविज्ञान, यातायात एवं परिवहन मनोविज्ञान तथा व्यवसाय में सामाजिक मनोविज्ञान की बहुत महत्वपूर्ण भूमिका होती है। क्रीड़ा, शिक्षा ,राजनीति , यातायात एवं परिवहन तथा व्यवसाय में कैरियर चुनने में सामाजिक मनोविज्ञान की सहायता ली जा सकती है। क्रीड़ा क्षेत्र में अभिरूचि बढ़ायी जा सकती हैं जनमत को आकर्षित किया जा सकता है। यातायात एवं परिवहन के क्षेत्र में नियमों का पालन करते हुऐ व्यवहार को धनात्मक दिशा में मोड़ा जा सकता है। इससे दुर्घटनाओं को रोका जा सकता है। सुरक्षा की भावना को विकसित किया जा सकता है। व्यवसाय की उन्नति के लिए प्रचार प्रसार माध्यमों के द्वारा जनमत को आकर्षित किया जा सकता है। इस प्रकार कार्य सेटिंग में सामाजिक मनोविज्ञान की भूमिका बहुत ही महत्वपूर्ण हो गयी है।

16.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढने के बाद आप-

1. क्रीड़ा मनोविज्ञान को समझ सकेंगे तथा क्रीड़ा क्षेत्र मे अभिरूचि बढा सकेंगे इस क्षेत्र में कैरियर चयन करने में सहायता मिल सकेगी।
2. शिक्षा मनोविज्ञान का उपयोग कर शिक्षक के रूप में आप अपने कार्यो का संपादन कुशलता से कर सकते हैं।
3. राजनीति में कैरियर बनाने के लिए , जनता की मनोदशा का अध्ययन कर, अनुकूल जनमत तैयार कर सकते हैं।
4. यातायात एवं परिवहन मनोविज्ञान तथा इसके उपयोग की जानकारी कर सकते हैं। इससे दुर्घटनाओं को रोकते हुए सुरक्षा सुनिश्चित की जा सकेगी।
5. किसी व्यवसाय की सफलता के लिए श्रमिक कर्मचारियों एवं मालिक के धनात्मक आन्तरिक संबंधों एवं प्रचार का विशेष महत्व होता हैं। इनका समुचित उपयोग कर व्यवसाय के क्षेत्र में अत्यधिक सफलता प्राप्त कर सकते हैं।

16.3 क्रीड़ा का सामाजिक मनोविज्ञान

क्रीड़ा मनोविज्ञान अपेक्षाकृत सभी मनोविज्ञान में एक नई शाखा है। कार्ल डेम (Carl Diem) ने 1920 में ,डेवटेस्ची स्पोर्टवावस्चूल (Deutsche Sporthochschule) ने वर्लिन जर्मनी में प्रथम क्रीड़ा मनोविज्ञान प्रयोगशाला की स्थापना की। इसके पश्चात 1925 में ए.जेंड . पुनी द्वारा लेनिनग्रांड में अन्य दो प्रयोगशालाएं स्थापित की गईं।

ग्रिफिथ (Griffith) ने 1923 में क्रीड़ा मनोविज्ञान का प्रथम पाठ्यक्रम प्रस्तुत किया। उनके द्वारा "दि साइकोलाजी आफ कोचिंग" नाम से पहली पुस्तक 1926 में प्रकाशित की गयी । दुर्भाग्य से धन की कमी के कारण ग्रिफिथ की प्रयोगशाला 1932 में बन्द हो गयी। इसके बाद क्रीड़ा मनोविज्ञान के क्षेत्र में प्रगति बहुत कम हुयी। वर्ष 1960 में इस क्षेत्र में पुनः कुछ कार्य प्रारम्भ हुआ। फेरोसियो एन्टोनेली (Ferruccio Antonelli) ने वर्ष 1965 में अन्तर्राष्ट्रीय क्रीड़ा मनोविज्ञान की स्थापना की। 1970 के दशक में "क्रीड़ा मनोविज्ञान को उत्तरी अमेरिका के विश्वविद्यालयी पाठ्यक्रम में शामिल किया गया। क्रीड़ा मनोविज्ञान का प्रथम" शैक्षिक अन्तर्राष्ट्रीय जर्नल 1970 में प्रकाशित हुआ तथा यह क्रम 1979 तक चलता रहा । 1980 के दशक में 'क्रीड़ा मनोविज्ञान'की तरफ ,शोधकर्ताओ का विशेष ध्यान गया। सामाजिक मनोविज्ञान शोधकर्ताओं ने यह सोचना शुरू कर दिया कि ऐथेलेटिक क्रिया कलापों मे कैसे सुधार लाया जा सकता है। अभ्यास के द्वारा '' मानसिक स्वास्थ्य को कैसे बढ़ाया जा सकता है। तनाव स्तर को कैसे कम किया जा सकता है।

क्रीड़ा मनोविज्ञान का वर्तमान स्वरूप- वर्तमान समय में भी मनोवैज्ञानिक तथ्यों एवं सिद्धांतों का उपयोग किया जा रहा है। मनोविज्ञानी इस क्षेत्र में अनेक विशिष्ट समस्याओं का अध्ययन कर रहे हैं। खेलकूद में अधिक अभिरूचि रखने वाले व्यक्ति ,खेलकूद संबंधी जोखिम व्यवहार को क्यों करना चाहते हैं। खेल खेलने वाले तथा खेल देखने वाले व्यक्तियों के अभिप्रेरको में क्या अन्तर होता है। ऐसी

समस्याओं का अध्ययन क्रीड़ा मनोविज्ञान द्वारा किया जा रहा है। मनोवैज्ञानिकों द्वारा इस क्षेत्र में किये गये अध्ययनों के आलोक में यह पाया गया है कि खेल कूद के व्यवहार से व्यक्ति की संज्ञानात्मक क्षमता मजबूत होती है। इस तरह के व्यवहार अध्ययनों का उपयोग मनोविज्ञानी , नैदानिक परिस्थिति तथा अस्पताल में चिकित्सीय साधन के रूप में अधिक करते हैं।

क्रीड़ा मनोवैज्ञानिकों की विशेष रूचि- क्रीड़ा क्षेत्र में, क्रीड़ा मनोवैज्ञानिकों द्वारा अत्यधिक रूचि दिखायी जा रही है। इस प्रकार वर्तमान में क्रीड़ा मनोविज्ञान का बहुत विस्तार हो रहा है। एथलीटों की सहायता करने के तरीके निश्चित रूप से क्रीड़ा मनोविज्ञान के भाग हैं। नान एथलीट्स के जीवन में सुधार लाने में शारीरिक क्रिया कलापों एवं एक्सरसाइज का विशेष महत्व होता है। इस क्षेत्र में हो रहे विकास एवं अध्ययनों से ज्ञात होता है कि क्रीड़ा मनोवैज्ञानिकों द्वारा निम्न लिखित क्षेत्रों में विशेष रूचि दिखाई गई है।

i. इमैजरी(**Imagery**) इमैजरी का तात्पर्य छाया चित्रों द्वारा किसी वस्तु को समझाना होता है। इसके अन्तर्गत काल्पनिक दृश्य, कार्य सम्पादन जैसे किसी एथलिटिक कार्यक्रम में भाग लेना ,विशिष्ट कौशल का सफलतापूर्वक संपादन करना, आदि आते हैं। इन क्षेत्रों में सामाजिक मनोवैज्ञानिकों द्वारा विशेष रूचि दिखाई जाती रही हैं।

ii. प्रेरणा:- क्रीड़ा मनोविज्ञान के अन्तर्गत प्रेरणा एक मुख्य विषय है इसके अर्न्तगत वाह्य एवं आन्तरिक दोनों प्रकार के प्रेरकों का अध्ययन किया जाता है। वाह्य उत्प्रेरक बाह्य पुरस्कार होते हैं। ट्राफी, रूपये, पदक या सामाजिक मान्यता आदि बाह्य पुरस्कार के उदाहरण हैं। आन्तरिक उत्प्रेरक अन्दर से ही उत्पन्न होते हैं। विजयी होने की इच्छा किसी कौशल के लिए किए गये प्रयास के सन्दर्भ में स्वाभिमान का भाव उत्पन्न होना आदि आन्तरिक उत्प्रेरक के अन्तर्गत आते हैं।

iii. ध्यानाकर्षण केन्द्र- इसके अन्तर्गत किसी उलझन के सुलझाने की योग्यता जैसे शोर मचाती हुयी प्रसंशकों की भीड़ को नियंत्रित करना , हाथ में लिए गये किसी कार्य की तरफ ध्यान का केंद्रित होना , आदि आते हैं ।

क्रीड़ा मनोविज्ञान में कैरियर की संभावनाएं- मनोविज्ञान के बहुत से छात्रों के लिए , क्रीड़ा मनोविज्ञान के क्षेत्र में कैरियर चुनना बहुत ही उत्साहजनक हो सकता है। विशेषकर उन लोगों के लिए , जिनकी शारीरिक क्रियाकलापों एवं क्रीड़ा के क्षेत्र में तीव्र रूचि होती है ,उनके लिए क्रीड़ा मनोविज्ञान और भी उपयोगी हो सकता है।

16.4 शिक्षा का सामाजिक मनोविज्ञान

शिक्षा और मनोविज्ञान दोनों मानव व्यवहारों से संबन्धित हैं। शिक्षा सामाजीकरण की प्रक्रिया है और मनोविज्ञान प्रक्रिया को विकसित करने में सहायता प्रदान करता है। शिक्षा व्यवहार का परिमार्जन करती है और मनोविज्ञान व्यवहार का अध्ययन करता है। दोनों का संबंध मानव व्यक्तित्व के विकास से है। इस दृष्टि से शिक्षा और मनोविज्ञान दोनों में पारस्परिक संबंध है। तात्पर्य यह है कि मनोविज्ञान का प्रभाव शिक्षा के

विभिन्न पहलुओं पर पड़ता है और शिक्षा भी मनोविज्ञान के विषय वस्तु क्षेत्र तथा अन्य बातों को प्रभावित करती है।

i. **मनोविज्ञान तथा शिक्षा का उद्देश्य-** मनोविज्ञान का संबंध शिक्षा उद्देश्य से नहीं होता हैं क्योकि यह विधायी विज्ञान (Positive Science) है यह उन तथ्यों का विवेचन करता है , जैसे कि उनको होना चाहिए। क्रो और क्रो ने कहा हैं "यद्यपि मनोविज्ञान शिक्षा के लक्ष्य निश्चित नहीं कर सकता , वैज्ञानिक मनोविज्ञान हमें एकदम बतला सकता है कि कोई लक्ष्य निराशाजनक रूप में बादलों में हैं , या उसको पाया जा सकता है। जेम्स ड्रेवर ने यहा तक कह दिया है कि"शिक्षा का उद्देश्य पूरा करने के लिए मनोविज्ञान इतना तय करके समाप्त नहीं हो जाता है कि यह संभव हैं या असंभव , बल्कि मनोविज्ञान यह निश्चित रूप से बता सकता है कि उन्हे किन साधनों द्वारा प्राप्त किया जा सकता है। उद्देश्य प्राप्ति की प्रक्रिया में शिक्षक के लिए मनोविज्ञान सबसे अधिक सहायक है। इससे स्पष्ट है कि शिक्षा के उद्देश्य निर्धारित करने में भी मनोविज्ञान की सहायता लेनी पड़ती है।

ii. **मनोविज्ञान तथा पाठ्यक्रम-** पाठ्यक्रम बालकों की रूचियों, रूझान, क्षमताओं और मानसिक योग्यताओं को ध्यान मे रखकर ही बनाया जाना चाहिए। पाठ्यक्रम निर्माताओं को बालमन का पूर्ण ज्ञान होना चाहिए। बाल विकास की प्रत्येक अवस्था की अलग अलग विशेषताएं और आवश्यकताएं होती है। इन आवश्यकताओं की पूर्ति उसके अनुरूप पाठ्यक्रमों के द्वारा ही की जा सकती है। अतः पाठ्यक्रम निर्माण में भी मनोविज्ञान की सहायता अमूल्य है।

iii. **मनोविज्ञान तथा शिक्षण विधि-** मनोविज्ञान की सहायता से नीरस विषय भी रूचिकर बनाया जा सकता है इसके लिए बालकों में सीखने के प्रति रूचि जागृत करना आवश्यक है। मनोविज्ञान ने प्राचीन शिक्षण विधियों में परिवर्तन करके ऐसी विधियों को जन्म दिया जिसमें बालक स्वयं रूचिपूर्वक सीख सकता हैं। नवीन शिक्षा प्रणालियों में मांटेसरी प्रणाली , किन्डर गार्टेन प्रणाली , प्रोजेक्ट प्रणाली तथा हयुरिस्टिक प्रणाली हैं। इन प्रणालियों में बालकों के स्वाभाव और रूचि का अध्ययन करके शिक्षा दी जाती है।

iv. **मनोविज्ञान तथा बालक-** पहले शिक्षा विषय प्रधान एवं अध्यापक प्रधान थी परंतु शिक्षा का अभिप्राय केवल अध्यापन से नहीं है। पेस्टालॉजी ने कहा है कि '' शिक्षा का मुख्य लक्ष्य अध्यापन नहीं बल्कि विकास है, अर्थात बालक की जन्मजात शक्तियों का स्वाभाविक , प्रगतिशील और व्यवस्थित विकास करना है। अतः शिक्षकों को व्यक्तित्व का विकास संबंधी सब बातों का ज्ञान आवश्यक हैं। रूसो ने कहा हैं कि '' बालक एक ऐसी पुस्तक हैं जिसे शिक्षक को भली भाँति पढना हैं ''शिक्षक इसमें तभी सहयोग कर पायेगा जब मनोवैज्ञानिक सिद्धांतों का पूर्ण परिचय होगा। बालकों के लिए शिक्षा योजना उसकी रूचि, मूल प्रवृत्ति सम्मान क्षमता, योग्यता को ध्यान में रखकर बनाने में मनोवैज्ञानिक सिद्धांत सहायता कर सकते है। अतः बाल मनोविकास के लिए मनोवैज्ञानिक अन्तर्दृष्टि आवश्यक है।

v. **मनोविज्ञान तथा पाठशाला का सामूहिक जीवन-** पाठशाला में शैक्षिक एवं स्वस्थ वातावरण उत्पन्न करने में भी मनोविज्ञान बहुत सहायता देता है। एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति को किस प्रकार प्रभावित करता है। समूह जीवन मनुष्य के विकास में किस प्रकार सहायता करता है। इन बातों का ज्ञान समूह मनोविज्ञान द्वारा प्राप्त होता है। बालक की शिक्षा में सामाजीकरण और समूह मनोविज्ञान पर ध्यान देना आवश्यक है। जॉन एडम्स ने कहा था शिक्षा को मनोविज्ञान ने बाँध लिया है, मनोवैज्ञानिक सिधान्तों की उपयोगिता को जाँचने के लिए सबसे अच्छा स्थान पाठशाला है।

vi. **व्यक्तिगत भिन्नता के आधार पर वर्गीकरण में सहयोग-** मनोविज्ञान ही यह बताता है कि बालकों की रूचियों , रूझान क्षमताओं और योग्यताओं में अन्तर होता हैं। प्रत्येक व्यक्ति एक दूसरे से भिन्न होता है अतः सबके लिए एक ही प्रकार की शिक्षा का आयोजन करना लाभप्रद न होगा। बालक की रूचि और मनोवैज्ञानिक आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर शिक्षा दी जानी चाहिए। मनोवैज्ञानिक परीक्षाओं की सहायता से वैयक्तिक भेदों के आधार पर हम बालको का वर्गीकरण कर सकते हैं। एक ही प्रकार के बालकों को एक ही कक्षा में रखने से शिक्षा कार्य सरल और लाभप्रद हो जाता है।

vii. **अनुशासन स्थापित करने में सहयोग-** मनोविज्ञान की सहायता से हम अनुशासन संबंधी समस्याओं का निराकरण कर सकते हैं। प्राचीन समय में अनुशासन स्थापित करने के लिए दण्ड का भय उत्पन्न करके, दमनात्मक नीति का पालन किया जाता था। आज अनुशासन की समस्याओं को स्नेह ,प्रेम, प्रशंसा सहानुभूति तथा पुरस्कार द्वारा सुलझाने का प्रयत्न किया जा रहा है। मनोविज्ञान अनुशासन के कारणों को खोजने और दूर करने के लिए संभव उपाय बताता है।

viii. **मनोविज्ञान एक शिक्षक-** स्किनर ने कहा है -शिक्षक के लिए मनोविज्ञान का ज्ञान बहुत आवश्यक,उपयोगी और महत्वपूर्ण है। कक्षा शिक्षण और बालकों के दैनिक संपर्क में मनोविज्ञान का प्रयोग किये बिना वह अपने कार्य को कुशलता से संपन्न नहीं कर सकता है। मनोविज्ञान के ज्ञान से शिक्षक बालक की मानसिक योग्यता रूचि और रूझान के अनुसार पाठ्यवस्तु का चुनाव करता है और ऐसी शिक्षण विधि को अपनाता है जो मनोवैज्ञानिक दृष्टि से सर्वश्रेष्ठ होती है।

ix. **मनोविज्ञान तथा निर्देशन-** हसबैण्ड ने निर्देशन की परिभाषा करते हुये कहा हैं कि निर्देशन से व्यक्ति को उसके भावी जीवन के लिए तैयार करने , समाज में उसको , उसके स्थान के लिए फिट करने में सहायता देने के रूप में परिभाषित किया जा सकता है। निर्देशन द्वारा यह पता चलता है कि भविष्य में उसको किस प्रकार की शिक्षा की आवश्यकता है, भविष्य में उसको किस व्यवसाय का चुनाव करना चाहिए, मनोवैज्ञानिक परीक्षाओं की सहायता से विद्यार्थी का उचित मार्ग निर्देशन किया जा सकता है।

x. **शिक्षा का मनोवैज्ञानिक आधार-** मनोवैज्ञानिक आधार से तात्पर्य शिक्षा, बालक की मनोवैज्ञानिक आवश्यकताओं और विशेषताओं पर आधारित होनी चाहिए। शिक्षा प्रदान करते

समय बालक की प्रगति, रूचि क्षमता, योग्यता, विकास की अवस्थाओं आदि का ध्यान रखना आवश्यक है। मनोविज्ञान केवल व्यक्ति पर ही अपना ध्यान नहीं रखता बल्कि समूह में व्यक्ति का आचरण और व्यवहार क्या और कैसे होता है, इसका भी अध्ययन करता है। इसलिए'' समूह मनोविज्ञान ''का विकास हुआ है। इसमें बालक की अनुवांशिकता, पर्यावरण, उसकी वृद्धि तथा विकास व्यक्तिगत तथा सामूहिक व्यवहार, व्यवहार के विभिन्न रूप तथा विकास की दिशा में उत्पन्न समस्याओं का समाधान तथा समाधान के साधन, इन सबके लिए वैज्ञानिक ढंग की खोज तथा उनको प्रकट करने के लिए सांख्यकीय प्रविधियों का प्रयोग आदि बातों का अध्ययन किया जाता है। ये विषय ही शिक्षा के मनोवैज्ञानिक आधार की रचना करते हैं।

इससे स्पष्ट हैं कि हमें शैक्षिक कार्यक्रमों के आयोजन में मनोविज्ञान से पगपग पर सहायता लेना आवश्यक है। स्कूल मनोविज्ञान मुख्यतः प्राथमिक तथा माध्यमिक स्कूलों में कार्य करते हैं तथा वे छात्रों को अन्य विशेषज्ञों के पास विशेष उपचार के लिए भेजते हैं। स्कूलों में वे मुख्यतः व्यवसायिक एवं शैक्षिक परीक्षण कार्य करते हैं तथा परामर्श एव प्रशिक्षण कार्यक्रम को संगठित करके जो शिक्षक को छात्रों एवं अन्य शिक्षकों के साथ संगठित करने में तथा स्कूल के प्रशासन की समस्याओं से संबंधित प्रश्नों का हल ढूढने में लाभप्रद होता हैं , महत्वपूर्ण सेवा प्रदान करते हैं। इसके अलावा स्कूल मनोविज्ञानी नये प्रशिक्षण कार्यक्रमों की प्रभावशीलता का भी अध्ययन करते हैं। शिक्षकों व छात्रों के मनोबल का भी अध्ययन करते हैं, गैरकानूनी औशधि उपयोग के कारणों का पता लगाकर उसका निदान ढूढते हैं तथा औषध उपयोग करने के पैटर्न को परिवर्तन करने के शैक्षिक कार्यक्रम की उपयोगिता पर भी अधिक बल डालते हैं।

16.5 राजनीति मनोविज्ञान में समाज मनोविज्ञान

फ्रांसीसी विद्वान पाल जैनेट (Paul Janet) के अनुसार "राजनीति शास्त्र समाज मनोविज्ञान का वह अंग है जो राज्य के आधार पर शासन के सिद्धांतों की विवेचना करता है । इससे स्पष्ट है कि राजनीति शास्त्र में व्यक्तियों के राजनैतिक गतिविधियों का विश्लेषण किया जाता है। ऐसे विश्लेषण में सामाजिक मनोविज्ञान काफी मदद करता है। इसी प्रकार कुछ राजनीतिक घटनाऐं ऐसी होती है जो मानव व्यवहार को भी प्रभावित करती है।

राजनैतिक क्रिया कलापों में सामाजिक मनोविज्ञान की भूमिका - जनतंत्र में जनमत का महत्वपूर्ण स्थान है। किसी सरकार की स्थिरता जनमत पर ही निर्भर करती है। प्रभावी शासन के लिए अनुकूल जनमत का होना नितान्त आवश्यक है। इसके लिए कुशल नेतृत्व व प्रभावशाली प्रचार की आवश्यकता होती है। राजनीतिक तनाव, दंगों जैसी सामाजिक परिस्थितियों में भी मानव व्यवहार प्रभावित होता है। स्थायी तथा लोकप्रिय शासन के लिए जनता की मनोदशाओं के अनुरूप शासन के क्रिया कलापों में जनता की नैतिक भावनाओं मनोवृत्तियों एव अपेक्षाओं की स्पष्ट झलक दिखाई पड़नी चाहिए। अतः ऐसी राजनीतिक

गतिविधियों में सामाजिक मनोविज्ञान की भूमिका और भी महत्वपूर्ण हो जाती है। इसकी भूमिका निम्नवत है:-

i. **जनता की मनोदशा का अध्ययन-** मनुष्य एक चिंतनशील प्राणी है। उसके राजनीतिक कार्यों सहित सभी क्रिया कलापों के पीछे एक निश्चित मनोवृत्ति (Attitude) , पूर्वाग्रह (Prejudices), सामाजिक प्रत्यक्षण (Social Perception) आदि जैसे मनोवैज्ञानिक तत्व होते हैं। सामाजिक मनोविज्ञान अपने क्षेत्र में किये गये अघ्ययनों से प्राप्त तथ्यों के द्वारा व्यक्तियों के इन मनादशाओं को जानने, समझने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। कोई भी राज्य तथा सरकार तब तक सफल नहीं हो सकती जब तक वह जनता की इन मनोदशाओं की मनोवैज्ञानिक स्थिति को अच्छी तरह से न समझ ले। अतः स्थायी तथा लोकप्रिय श्शासन के लिए जनता की मनोदशाओं को समझना अति आवश्यक होता है। इतना ही नहीं जनभावना के अनुरूप, श्शासन के कार्यों में जनता की नैतिक भावनाओं, मनोवृत्तियों एवं अपेक्षाओं की स्पष्ट झलक भी दिखाई पड़नी चाहिए। एक समाज मनोविज्ञान अपनी विविध प्रणाली एवं प्रविधियों द्वारा राज्य की जनता की मनोवृत्ति, सामाजिक प्रत्यक्षण, पूर्वाग्रह आदि का अध्ययन कर उनकी वास्तविक अवस्थाओं, स्थितियों को बताता है, कमियों को उजागर करता है।

ii. **प्रभावशाली शासन के लिए कुशल नेतृत्व का अध्ययन-** नेतृत्व एक प्रकार का अन्तर्क्रियात्मक व्यवहार है जो नेता तथा सदस्यों के बीच होता है।दोनों एक दूसरे को प्रभावित करते है, फिर भी नेता का प्रभाव सदस्यों या अनुयायियों पर अधिक पड़ता है। वह लोगों के व्यवहारों को निर्देशित तथा नियंत्रित करता है चूँकि समूह में नेता की विशिष्ट स्थिति होती है। इस कारण सदस्य उसके प्रति अधीनता का भी अनुभव करते हैं। (House1977, Field 1971, Myers 1988) नेतृत्व सर्वाधिक लोकप्रिय माना जाता हैं क्योकि इसमें सबको आगे बढ़ने के लिए समान अवसर प्राप्त होते हैं। जोखिम की संभावना एवं परिस्थितियाँ स्पष्ट या भ्रामक होने पर सदस्य निरंकुश नेतृत्व को पसंद करने लगते हैं। तनाव या संकट की दशा में नेतृत्व निरंकुश भी हो जाता है। उस समय समस्या का समाधान ही मुख्य लक्ष्य होता है। सामाजिक मनोवैज्ञानिक अध्ययन कर यह बतलाते हैं कि एक सफल नेता के क्या लक्षण होते हैं। उनमें कौन कौन से शीलगुण है। नेतृत्व को कैसे प्रभावशाली बनाया जा सकता है। वर्तमान राजनीतिक परिवेश में कैसे नेतृत्व की आवश्यकता है। नेतृत्व में क्या अपेक्षित है। उसमें क्या कमियां है। उन कमियों को कैसे दूर किया जाये।

iii. **अनुकूल जनमत का अध्ययन-** राज्य व सरकार की सफलता के लिए अनुकूल जनमत की आवश्यकता, सदैव बनी रहती है। जनमत की उपेक्षा करके कोई सरकार लम्बे समय तक शासन नहीं कर सकती। जन का अर्थ है आम जनता। मत का अर्थ साधारण रूप से इच्छा हो सकती है। अतः जनमत का अर्थ जनता की इच्छा हुई। स्पष्ट है कि जनमत एक ऐसा मत है जिसके पक्ष में अधिकांश लोग होते हैं। यह जनता के हित तथा कल्याण से संबंधित होता है। जनमत का अर्थ सम्पूर्ण जनता का मत नहीं हो सकता है। जनमत समय एवं परिथिति के अनुसार बदलता रहता है।

लोकतंत्र में जनता का आदेश सर्वोपरि होता है और उसी के मत के आधार पर संगठनों, संस्थाओं एवं सरकारों का गठन होता है। यदि सरकारें जनता की भावना का ध्यान नहीं रखती है तो उनका हश्र्र बहुत खराब होता है। इसलिए सरकार में बैठे लोग जनमत का सम्मान करते है। सरकार को सही रास्ते पर चलाने का कार्य जनमत से ही संभव है। ऐसे व्यक्ति जो कम जानकार हैं वे बहुसंख्यक निर्णय के पक्ष में शीघ्रता से मुड़ जाते हैं। परंतु जानकार व्यक्ति जल्दी प्रभावित नहीं होता है। नेता के व्यक्तित्व से भी जनमत प्रभावित होता है। चुनाव के समय विभिन्न राजनैतिक दल जनमत अपने पक्ष में करने के लिए अनेक प्रकार के अतिरंजित एवं लुभावने वादे करते हैं ताकि लोग उनके पक्ष में प्रेरित हो जाये। सुखद घटनाओं से अनुकूल और दुखद घटनाओं से प्रतिकूल धारणा बनती है। जैसे यदि वस्तुओं का मूल्य बढ़ता है तो सरकार के खिलाफ जनमत बनने लगता है। भले ही सरकार उसके लिए प्रत्यक्ष दोषी न हो। जैसा जनमत तैयार होगा उसी के अनुरूप लोग व्यवहार करेंगे।

समाज मनोवैज्ञानिक जनता की अभिवृत्तियों, पूर्वाग्रहों सामाजिक प्रत्यक्षण आदि का अध्ययन करके जनता की इच्छा को जानने में मदद करते हैं। इसके अनुकूल जनमत बनाए रखने में सफलता प्राप्त होती हैं। जनमत सामाजिक मनोवैज्ञानिकों का कार्य क्षेत्र रहा है। जनमत ऐसे व्यक्तियों के मत को कहा जाता हैं, जिसमें एक समान अभिरूचि होती है। आधुनिक युग में जनमत का महत्व इसलिए बढ़ गया है क्योंकि इसके सहारे किसी सार्वजनिक समस्या के प्रति व्यक्तियों के विचार एवं मतों का पता चलता है। आधुनिक युग में सिनेमा, टेलीविजन, रेडियो, अखबार आदि कुछ प्रमुख साधन हैं जिनके माध्यम से जनमत का निर्माण होता है। समाज मनोवैज्ञानिकों द्वारा जनमत को मापने की कुछ विधियां विकसित की गई हैं। इनमें प्रतिदर्श विधि, पैनल विधि आदि प्रमुख हैं।

iv. **प्रभावशाली प्रचार की आवश्यकता का अध्ययन-** समाज मनोवैज्ञानिकों को लिए प्रचार एक ऐसी विधि है जिसके द्वारा व्यक्तियों के विचारों एवं मतों को नियंत्रित किया जाता है । उनको एक निश्चित दिशा प्रदान की जाती है। यह सामाजिक नियंत्रण का एक प्रमुख साधन है। इस विधि का प्रयोग जानबूझ कर किसी निश्चित उद्देश्य के लिए किया जाता है। इसमें सुझाव एवं संवेगात्मक शब्दों का प्रयोग होता है। प्रचार प्रविधि का प्रयोग व्यक्ति या समूह के कल्याण के लिए भी होता है और उसके पथभ्रष्ट करने के लिए भी होता है। मानव को नियंत्रित करने वाली शक्तियों में प्रचार अत्यधिक महत्वपूर्ण है। युद्ध के हथियार के रूप में यह अणुबम से भी घातक होता है। और शान्ति के साधन के रूप मे संयुक्त राष्ट्र संघ से भी अधिक प्रभावी है (Kretch and crutch field) । जब कोई व्यक्ति किसी प्रचार को स्वीकार कर लेता है तो उसका उस व्यक्ति के विचार, भाव, मूल्य, आदर्श एवं अभिवृत्तियों पर प्रभाव पड़ता है। प्रभावपूर्ण ढंग से किया गया प्रचार अधिक प्रभावशाली होता है।

एनिस एवं मायर (1938) का विचार हैं कि यदि प्रचार सामग्री समाचार पत्रों के प्रथम पृष्ठ पर मोटे अक्षर में छापी जाती हैं तो वह पाठकों का ध्यान शीघ्रता एवं सरलता से आकर्षित कर लेती

है। नोवर 1935 के अनुसार आमने सामने का प्रचार अच्छा परिणाम देता है। प्रचारक यदि पूरी योजना के साथ निश्चित उद्देश्य की प्राप्ति के लिए प्रचार करता है तो सफलता अधिक मिलती है। प्रचार की विषय वस्तु का किस रूप में प्रत्यक्षीकरण करते हैं। धनात्मक रूप में प्रत्यक्षीकरण करने पर प्रभाव अच्छा पड़ता है। नकारात्मक प्रत्यक्षीकरण होने पर अच्छा प्रभाव नहीं पड़ता है। जब प्रचार, व्यक्तियों के विचारों एवं अभिवृत्तियों के अनुरूप होते हैं तो उनका प्रभाव अधिक पड़ता हैं। अभिवृत्तियों के विपरीत प्रचार प्रभावहीन हो जाते हैं। चुनाव में ऐसा प्रायः देखने को मिलता है कि राजनीतिक पार्टियों अपनी बात कहने के साथ साथ विरोधी पार्टियों की आलोचना भी करती हैं। इससे प्रचार का प्रभाव बढ़ जाता है।यदि परिस्थितियां अस्पष्ट तनावपूर्ण, चिन्तापूर्ण या अनिश्चिततायुक्त हो तो प्रचार का प्रभाव अधिक पड़ता है। यदि लोगों को विश्वास हो जाये कि अधिकांश लोग प्रचार की बातों से सहमत है तो अन्य लोग भी प्रचार को स्वीकार कर लेते हैं। स्थानीय परिस्थिति के अनुकूल पहनावा एवं बोली का प्रयोग करने पर प्रचार प्रभावशाली हो जाता है। यही कारण है कि नेता लोग जिस समुदाय या प्रान्त के लोगों के समक्ष भाषण देते हैं उन्हीं के अनुरूप बोली व पहनावा का भी प्रयोग करते हैं। प्रेस एवं समाचार पत्रों सिनेमा एवं दूरदर्शन, रेडियो, मंच, लाउडस्पीकर दूरदर्शन आदि सर्वाधिक प्रचलित प्रचार के साधन हैं। इस प्रकार सामाजिक मनोवैज्ञानिक अध्ययन कर यह बताते हैं कि प्रचार किन किन प्राविधियों द्वारा किया जाना चाहिए। प्रचार को कैसे प्रभावशाली बनाया जा सकता है। इसकी जानकारी होने पर राज्य तथा सरकार दोनों को ही व्यक्तियों के राजनैतिक क्रियाकलापों के बारे में समझने में काफी मदद मिलती है।

v. **राजनीतिक तनाव , दंगों तथा अन्तर्राष्ट्रीय युद्ध के कारणों का मनोवैज्ञानिक अध्ययन-** राजनीतिक दंगो, तनावों तथा अन्तर्राष्ट्रीय युद्ध आदि से उन सामाजिक परिस्थितियों में मानव व्यवहार प्रभावित होता है। अतः इनके मनोवैज्ञानिक अध्ययन के लिए सामाजिक मनोविज्ञान की निर्भरता राजनीतिशास्त्र पर निर्भर करती है। मनोविज्ञान समाज में विभिन्न समुदायों के बीच एकता एवं सौहार्द्र वृद्धि करने के तरीकों पर विचार करता है। जिसका ज्ञान प्राप्त करके राजनीतिज्ञ, जनता में सांम्प्रदायिकता सद्भाव एवं पारस्परिक सहयोग की भावना को उत्पन्न करने में सफल होता है। दंगों को शांत कराने में भी मनोविज्ञान की अहम भूमिका होती है। सांप्रदायिकता एक ऐसी संकीर्ण मनोवृत्ति है जो किसी विशेष धर्म अथवा संप्रदाय के लोगों में अपने स्वार्थांकी पूर्ति करने के लिए की जाती है। तथा उसके परिणाम स्वरूप विभिन्न धार्मिक समूहों एवं जातियों के सामाजिक तनाव एवं संघर्ष पैदा हो जाते हैं। भारत के विभाजन के फलस्वरूप वर्ष 1947 के दंगों में भारी संख्या में हिन्दुओं एवं मुसलमानों का रक्तपात हुआ। हिन्दू -मूस्लिम स्वार्थ, सांस्कृतिक एवं सामाजिक रीति रिवाज भी ऐसे कारक थे जिनसे इन दोनों के बीच आपसी मन मुटाव में वृद्धि हुई। गुप्ता (Gupta 1956) के अनुसार हिन्दू एवं मुस्लिम की मनोवृत्ति एवं प्रत्यक्षण में काफी अंतर हैं जो इन दोनों के आपसी संबंधों को प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करता है। साम्प्रदायिक दंगो को शांत कराने एवं जनता के विश्वास एवं सांप्रदायिक सद्भाव एवं पारस्परिक

सहयोग की भावना को उत्पन्न करने में सामाजिक मनोविज्ञान की बहुत महत्वपूर्ण भूमिका होती है। तनाव एवं मानसिक रोगों की चिकित्सा करने में मनोविज्ञान विशेष उपयोगी सिद्ध हुआ है। इस दिशा में मनोविज्ञान ने मनोविश्लेषण विधि को अपनाया है। राजनीति के क्षेत्र में भी सफलता/असफलता मिलती रहती है। असफलता की दशा में तनाव की संभावना बराबर बनी रहती है। राजनीतिक प्रतिद्वंदिता के कारण भी सामूहिक तनाव उत्पन्न होने की प्रबल संभावना होती है। सामाजिक मनोविज्ञान के द्वारा इन तनावों से मुक्त होने में काफी मदद मिलती है।

विश्व के अधिकांश देश आज शीत युद्ध के कगार पर खड़े हैं। शीत युद्ध का आधार विरोधी प्रचार, ईर्ष्या भ्रामक प्रचार आदि हैं। मनोविज्ञान परीक्षण करके इनके निदानात्मक उपाय राष्ट्र को सुझाता है। इसके अतिरिक्त युद्ध प्रारम्भ होने पर किसी राष्ट्र की सफलता राष्ट्र एवं सेना के मनोबल पर निर्भर करती है। यदि युद्ध के समय राष्ट्र या सेना का मनोबल टूट जाता है तब युद्ध में विजय की आशा भी समाप्त हो जाती है। इसलिए युद्ध में रत दोनों देश अपना और अपनी सेना का मनोबल ऊँचा बनाने तथा दूसरे देश का मनोबल गिराने के लिए निरंतर प्रयत्नशील रहते हैं। इसके लिए जो देश मनोवैज्ञानिक ढंग अपनाता हैं वही अपने उद्देश्य में पूर्ण सफल होता है। युद्ध काल के दौरान सैनिकों के मनोबल को ऊँचा उठाये रखने में यह मनोविज्ञान अत्यन्त उपयोगी सिद्ध हुआ है।

राजनीतिशास्त्र एवं समाज मनोविज्ञान में अंतर-

i. राजनीतिशास्त्र राज्य तथा सरकार के भिन्न भिन्न रूपों आदि का अध्ययन करता है। जबकि समाज मनोविज्ञान समाज में व्यक्तियों द्वारा की गई अन्तःक्रियाओं का अध्ययन करता है। सामाजिक मनोविज्ञान में चेतन तथा अचेतन दोनों तरह की अन्तःक्रियाओं का अध्ययन किया जाता है। जबकि राजनीतिशास्त्र में नागरिकों एवं सरकार की चेतन क्रियाओं का ही विश्लेषण किया जाता है। इसका तात्पर्य यह है कि समाज मनोविज्ञान का कार्य क्षेत्र राजनीतिशास्त्र के कार्यक्षेत्र से अधिक बड़ा है।

ii. राजनीतिशास्त्र व्यक्ति के राजनीतिक क्रियाओं के बाहरी पक्ष पर अधिक बल डालता है , मनोवैज्ञानिक पक्ष पर कम बल डालता है। सामाजिक मनोविज्ञान, सामाजिक परिस्थिति में किया जाने वाला व्यवहार किस हद तक अन्य कारणों के अलावा मनोवैज्ञानिक कारणों एवं नियमों द्वारा निर्देशित होता है , पर बल देता है।

iii. समाज मनोविज्ञान एक वस्तुपरक विज्ञान। दूसरे शब्दों में, इसमें व्यक्ति के व्यवहारों का अध्ययन यथार्थ रूप में यानी '' जैसा वह होता है '' उसी रूप में किया जाता है। जबकि राजनीतिशास्त्र आदर्शात्मक विज्ञान होने के नाते राजनीति के उन पहलुओं पर भी विचार करता है, जिनमें आदर्श एवं मूल्यों को अधिक प्राथमिकता दी जाती है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि समाज मनोविज्ञान एवं राजनीतिशास्त्र में संबंध होते हुए भी कुछ भिन्नताएं हैं। जो समानता है वही राजनीति मनोविज्ञान का सामाजिक मनोविज्ञान है।

16.6 यातायात एवं परिवहन मनोविज्ञान

किसी व्यक्ति या वस्तु के, अपेक्षाकृत दूरस्थ भौगोलिक स्थानों के बीच परिचालन को यात्रा कहते हैं। विश्व में यातायात एवं परिवहन के अनेक साधन हैं। सड़क, रेल, जल , एवं वायु आदि परिवहन के प्रमुख स्रोत हैं। बस ,रेलगाड़ी ,जलयान तथा वायुयान यात्रा एवं परिवहन के प्रमुख्य साधन हैं। स्थानीय स्तर पर, थ्री व्हीलर, बाइक, रिक्शा, तांगा एवं नाव आदि भी उपलब्ध हैं। यात्रा करने के लिए, यात्री इन साधनों का चयन, साधन की उपलब्धता गन्तव्य स्थान की दूरी, प्रचलित यात्रा प्रवृत्ति, किराय, सम, रूचि एवं सुविधाओं को ध्यान में रखते हुए करते हैं। यह सभी कारक ऐसे हैं जो यात्रियों के व्यवहार को प्रभावित करते हैं। इन्हीं कारकों से प्रभावित होकर वह उपलब्ध परिवहन सुविधाओं को बनाये रखने की अपेक्षा भी करते हैं। यात्रियों को अपने यात्रा व्यवहार में बदलाव लाने के लिए, प्रेरित करने हेतु यह जानना आवश्यक हैं कि इस व्यवहार के पीछे मनोविज्ञान क्या है। इस मनोविज्ञान को जानना आवश्यक है। हमारे स्रोत ऐसे व्यक्तिगत एवं सांस्कृतिक कारकों पर ध्यान देते हैं जो चालकों को इस पेशे में लगे रहने हेतु प्रेरित करते हैं।

यातायात संबन्धी समस्यायें एवं समाधान:-यात्रा का साधन जो भी हो लगभग सभी में दुर्घटना की संभावना रहती है। सड़कों पर वाहनों की टक्कर एक आम बात हो गयी है। बढ़ती हुई जनसंख्या का पूर्ण दबाब सड़क एवं रेल यात्रा पर प्रत्यक्ष रूप् दिखयी पड़ता है। इस भौतिक जगत में सभी लोगों को बड़ी जल्दी रहती है। व्यस्तता के कारण सबके पास समय का अभाव रहता है। अत्यधिक शीघ्रता दुर्घटना का कारण बनती हैं। इसमें धन जन दोनों की हानि होने की संभावना बनी रहती है। सड़क, रेल यात्राओं में अपेक्षाकृत अधिक दुर्घटनाऐं होती हैं। वायुयान के दुर्घटनाग्रस्त होने की प्रवृत्ति जलयान की अपेक्षा अधिक होती है। इन साधनों से यात्रा करने वालों की संख्या भी अपेक्षाकृत कम रहती है।

विकासशील भारत में नागरिको की खराब आर्थिक स्थिति के कारण वायुयान अथवा जलयानों से यात्रा करना संभव नही हो पाता है। सड़क एवं रेल से यात्रा करने वाले यात्रियों के व्यवहारों को प्रभावित करने वाली अन्य समस्यायें भी हैं। भीड़- भाड़ के कारण यात्रा में काफी समय लगता है। इस विलम्ब के कारण , क्रोध, तनाव, थकान, जैसे नकारात्मक संवेग उत्पन्न होते हैं। प्रदूषण, जलवायु परिवर्तन प्रयोग किये जा रहे परिवहन की स्थिरता जैसी पर्यावरणीय समस्याएं भी मानव व्यवहार को प्रभावित करती हैं। विश्व में सड़क हादसों में मरने वालों की संख्या प्रतिवर्ष लगभग 1.3 लाख है। जबकि प्रतिवर्ष घायलों की संख्या लगभग 23-24 लाख व्यक्ति पायी जाती है। इस प्रकार सड़क दुर्घटनाएं यात्रियों के लिए एक प्रमुख समस्या है। परिवहन से संबंधित उपरोक्त सभी शारीरिक तथा मानसिक क्षति का समाधान ढूढ़ने के लिए यातायात एवं परिवहन मनोविज्ञानी सदैव तैयार रहते हैं। इनसे संबधित मानवीय कारकों , संज्ञानात्मक तथ्यों एवं व्यवहारों का अध्ययन करते हैं। इस प्रकार विश्व की होने वाली सड़क हादसों एवं हानियों को कम करने में उनके महत्वपूर्ण योगदान को नकारा नहीं जा सकता है। अतः व्यावहारिक मनोविज्ञान का यह क्षेत्र लगातार विश्वसनीय एवं महत्वपूर्ण होता जा रहा है। इसके 13 डिवीजन अन्तर्राष्ट्रीय फोरम के रूप में कार्य कर रहे हैं। ऐसी विचारधाराओं के अनेक शोधकर्ता एवं अन्य लोग इस नये एवं महत्वपूर्ण क्षेत्र में लगे हुऐ

हैं। परिवहन मनोवैज्ञानिक शोधकर्ता दूसरे परिवहन साधनों जैसे रेल , वायु , एवं जल परिवहनों से संबंधित मनौवज्ञानिक पक्षों का भी अध्ययन कर रहे हैं।

यातायात मनोविज्ञान, मनोविज्ञान की एक बिल्कुल नई शाखा है। इसका विस्तार हो रहा है। मनोविज्ञान के क्षेत्र में इसका काफी महत्व है। प्रथमतः इसका कार्य सड़क परिवहन का उपयोग करने वाले व्यक्तियों के व्यवहारों एवं इस व्यवहार में प्रयोग की जाने वाली मनोवैज्ञानिक प्रविधियों के अध्ययन से संबंधित है। इसके अन्तर्गत व्यवहार एवं दुर्घटनाओं तथा परिवहन मनोविज्ञान के बीच संबंधों का अध्ययन किया जाता है। यातायात एवं परिवहन मनोविज्ञान कोई एक सैद्धांतिक फ्रेमवर्क नही है। इसके स्थान पर इसमें बहुत से विशिष्ट मॉडल है। यह विशिष्ट मॉडल प्रत्यक्षण, सावधानीपरक, संज्ञानात्मक , सामाजिक प्रेरणादायक एवं संवेगात्मक, मूविलिटी एवं ट्रैफिक व्यवहारों के कारकों की व्याख्या करते हैं। उनमें से एक व्यवहार मॉडल प्रमुख है। यह मॉडल यातायात से संबंधित अनेक कार्यों को अधिकाधिक स्तर पर ,तीन स्तरों में विभाजित करता हैं।

i. रणनीतिक स्तर (Strategic level)
ii. चतुराई स्तर (Tactical level)
iii. क्रियान्वयन स्तर (Operation level)

यह मॉडल वाहन चलाते समय, चालक के निर्णय विविधता, कार्य नियंत्रण एवं कुशलता का प्रदर्शन करता है इसके बावजूद भी कोई अंतिम मॉडल नहीं है। इन सभी अंतिम मॉडलों में से अधिकांश मनोवैज्ञानिक मॉडल्स आगे के अनुसंधान में सहायक ही पाये जाते हैं। दूसरी तरफ सामाजिक एवं मनोवैज्ञानिक मनोवृत्ति/ व्यवहार मॉडल्स मोविलिटी निर्णयों के कारकों की पहचान करने में सहायक होते हैं। वैज्ञानिक एवं प्रयोगात्मक विधियों को एक साथ रखने पर यातायात एवं परिवहन मनोविज्ञान के अलग अलग 6 क्षेत्र निर्धारित किए जा सकते हैं। (Schlag 1999)

परिवहन एवं यातायात मनोविज्ञान के क्षेत्र- सड़क का उपयोग करने वाले विभिन्न समूहों, रोड की डिजाइन एवं गुणवत्ता तथा मोटर व्हीकल आदि के दृष्टिकोण से मनोविज्ञान के क्षेत्र भी बदलते रहते हैं। जैसे यातायात का आयु समूह मॉडल, सड़कों का उपयोग करने वालों के व्यवहारों की व्याख्या एवं भविष्यवाणी, वैद्य एवं विश्वसनीय मॉडल्स के विकास पर निर्भर करता है। ये मॉडल्स यात्रा व्यवहार में मानव की भूमिका से संबंधित होते हैं। विशेष रूप से मानव भूमिका के अन्तर्गत वाहन चालक आते हैं। अतः यात्रा व्यवहार में वाहन चालक के कार्य निष्पादन से संबंधित उक्त मॉडल्स बहुत महत्वपूर्ण हो जाते हैं। मनोवैज्ञानिक यातायात दुर्घटनाएं एवं शोध निम्नलिखित तथ्यों से संबंधित होते हैं-

i. चालक कार्य का विश्लेषण करना। परम्परागत क्रियाकलापों की अपेक्षा नई सोच को अपनाना , सेन्सरी मोटर टास्क को उच्च समीक्षात्मक प्रभाव टास्क का रूप देना।
ii. गाड़ी चलाने वाले चालक को प्रत्यक्षण, संज्ञान एवं सावधानी तथा सूचना प्राविधि की जानकारी होनी चाहिए।

iii. चालक की दशा, कार्यभार, सदा चौकन्ना रहना, थकान, व्यक्तित्व, उसके जोखिम उठाने की मनोवृत्ति, गाड़ी चलाने की प्रेरणा, उत्साह एवं संवेग।

iv. अन्तर्सम्बन्ध एव चालन का सामाजिक मनोविज्ञान।

v. व्यवहार के व्यक्तित्व एवं पर्यावरणीय बैकग्राउण्ड के बीच संबंध खुला व्यवहार , खुला संघर्ष एवं दुर्घटनाएं। जोखिम क्षतिपूर्ति सिद्धान्त पर कार्य।

vi. दुर्घटनाए रोकना एवं यातायात सुरक्षा में सुधार के अन्तर्गत प्रभावशाली क्रियान्वयन, शिक्षा,इंजीनियरिंग, साहस बढाना, आर्थिक बचत आदि से संबधित सूचना रखना होता है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए कानूनी एवं शैक्षिक नियमों का पालन करते हुए व्यवहार में बदलाव लाना आवश्यक होता है। वाहन एवं सड़क नियमों का पालन, चालक प्रशिक्षण, चालन प्रशिक्षण शिक्षा यातायात संबंधी मुद्दों की सूचना, डिजाइन एवं विपणन अभियान प्रभावशाली क्रियान्वयन आदि पर ध्यान देना आवश्यक होता है।

16.7 व्यवसाय में सामाजिक मनोविज्ञान की भूमिका

किसी औद्योगिक / व्यावसायिक प्रतिष्ठान में मालिक ,श्रमिक कर्मचारी होते हैं । पहले इनका संबंध बहुत कटुतापूर्ण होता था। पूँजीपति श्रमिकों से केवल मशीन की तरह कार्य करवाते थे। श्रमिकों के प्रति उनकी कोई सहानुभूति नहीं रहती थी। फलतः कर्मचारी एवं श्रमिकों में कार्य के लिए कोई समर्पण नहीं रहता था। इससे वांछित उत्पादन या व्यवसायिक लाभ नहीं हो पाता था। सामाजिक मनोवैज्ञानिकों द्वारा अनेक अध्ययनों के उपरांन्त मालिकों एवं श्रमिकों के बीच मानवीय मूल्यों की स्थापना हुई । आज ओद्यौगिक एवं व्यवसायिक क्षेत्र में मानवीय मूल्यों को विशेष स्थान प्राप्त है।

i. **समस्या निदान में मनोविज्ञान**- वर्तमान में औद्योगिक व्यवसायिक क्षेत्रों में कर्मचारियों या श्रमिकों की हड़ताल , तालाबन्दी दुर्घटनाएं अनेक जटिल समस्याएं उत्पन्न हो रही है। मनोविज्ञान इन सब समस्याओं का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण करके समाधान प्रस्तुत करता है। इसके अतिरिक्त व्यवसाय में अधिक उन्नति के साधन जैसे शारीरिक श्रम की बचत उत्पादन/लाभ बढाना, मनोवैज्ञानिक परीक्षणों के आधार पर कर्मचारियों/श्रमिकों की भर्ती करना, कर्मचारियों की अभिरूचि बढाने के लिए उपयुक्त सुझाव देना, कारखाने ,व्यवसायिक कार्यस्थल के पर्यावरण को स्वास्थ्य की दृष्टि से हानि रहित बनाने संम्बन्धी सुझाव देना आदि ऐसे कार्य हैं जिनके उपयोग से उद्योग एवं व्यापार के क्षेत्र में अत्यअधिक सफलता प्राप्त की जा सकती है। उक्त समस्यायें सामाजिक मनोविज्ञान के अध्ययन की विषय वस्तु हैं।

ii. **जनमत तथा प्रचार**-जनमत तथा प्रचार सामाजिक मनोविज्ञान का कार्य क्षेत्र रहा है। जनमत ऐसे व्यक्तियों के मत को कहा जाता है, जिनमें एक सामान्य अभिरूचि होती है। आधुनिक युग में जनमत का महत्व इस लिए बढ़ गया हैं क्योंकि इसके सहारे किसी सार्वजनिक समस्या के प्रति

व्यक्तियों के विचारों एवं मतों का पता चलता है, आधुनिक युग में सिनेमा, टेलीविजन , रेडियो अखबार आदि प्रमुख साधन हैं, जिनके माध्यम से जनमत का निर्माण होता है। समाज मनोविज्ञान के लिए प्रचार एक ऐसी विधि है जिसके द्वारा व्यक्तियों के विचारों एवं मतों को नियंत्रित किया जाता हैं तथा उनको एक निश्चित दिशा प्रदान की जाती है। यह सामाजिक नियंत्रण का एक प्रमुख साधन है। औद्योगिक उत्पादनों एवं व्यवसाय के विपणन में प्रचार का बहुत अधिक प्रभाव पड़ता है। इस विधि का प्रयोग जानबूझ कर किसी निश्चित उद्देश्य के लिए किया जाता है। इसमें सुझावों एवं संवेदनात्मक शब्दों का प्रयोग होता है। प्रचार प्रविधि का प्रयोग व्यक्ति या समूह के कल्याण के लिए होता है और उनको पथभ्रष्ट करने के लिए भी होता है। किसी उत्पाद व्यवसाय की अच्छाइयों का प्रचार करके लोगों को आकृष्ट किया जाता है। प्रचार जनमत कुछ ऐसे ही क्षेत्र हैं जिनमें किये गये अध्ययनों के आधार पर यह साबित हो चुका है कि यदि कोई मालिक अपने माल / व्यवसाय का प्रचार कुछ खास सिद्धांतों एवं नियमों के आधार पर करता है तो उसके माल के प्रति एक अच्छा जनमत तैयार होता है। इससे उसकी मांग बढ़ जाती है। विज्ञापन की सफलता, इस बात पर निर्भर करती है कि वह जनता की अभिरूचि , उपयोगिता और मनोवृत्ति को कितना प्रभावित कर पाता है? यदि विज्ञापन जनता की अभिरूचि , उपयोगिता और मनोवृत्ति के अनुकूल होता है तो वह सफल विज्ञापन माना जाता है, अन्यथा असफल होता है। मनोविज्ञान विज्ञापन को मनोवैज्ञानिक ढंग से प्रभावशाली बनाने के तरीकों पर विचार करता है। अतः उद्योग एवं व्यवसाय के क्षेत्रों में भी मनोविज्ञान का विशेष महत्व है।

अभ्यास प्रश्न

1. क्रीड़ा मनोविज्ञान का प्रथम ________________1970 में प्रकाशित हुआ।
2. कार्ल डेम (Carl Diem) ने ________में वर्लिन प्रथम क्रीड़ा मनोविज्ञान प्रयोगशाला की स्थापना की ।
3. शिक्षा________________की प्रक्रिया है ।
4. मनोविज्ञान ________________को विकसित करने में सहायता प्रदान करता है।
5. मनोविज्ञान उन तथ्यों का विवेचन करता है ________________न कि जैसा उनको होना चाहिए।
6. राजनीतिशास्त्र________________का अंग है ।
7. राजनीतिशास्त्र राज्य के आधार पर ________________की विवेचना करता है।
8. युद्ध के हथियार के रूप में________________अणुबम से भी घातक है।
9. स्थाई तथा लोकप्रिय शासन के लिए ________________को समझना अति आवश्यक होता है।
10. जनमत एक ऐसा मत है जिसके पक्ष में ________________होते हैं।
11. किसी व्यक्ति या वस्तु के अपेक्षाकृत ________________के बीच परिचालन को यात्रा कहते हैं।
12. यातायात या परिवहन मनोविज्ञान कोई ________________नहीं है।

13. आज औद्योगिक एवं व्यवसायिक क्षेत्रों में ________________ को विशेष स्थान प्राप्त होता है।

16.8 सारांश

- क्रीड़ा मनोविज्ञान अपेक्षाकृत सभी मनोविज्ञानों में एक नई शाखा है । कार्ल डेम (Carl Diem) द्वारा 1920 में बर्लिन में प्रथम क्रीड़ा मनोविज्ञान प्रयोगशाला की स्थापना हुई । क्रीड़ा मनोविज्ञान का प्रथम '' शैक्षिक अंतर्राष्ट्रीय जरनल 1970 मे प्रकाशित हुआ। 1980 के दशक में शोधकर्ताओं का ध्यान क्रीड़ा मनोविज्ञान की तरफ आकृष्ट हुआ। वर्तमान समय में खेलकूद में भी मनोवैज्ञानिक तथ्यों एवं सिद्धांतो का उपयोग किया जा रहा है। इमैगरी , प्रेरणा, ध्यानाकर्षण केन्द्रों तथा क्रीड़ा मनोविज्ञान में कैरियर की संभावनाओं के क्षेत्रों में क्रीड़ा मनोविज्ञानिकों द्वारा विशेष रूचि दिखाई जा रही है।
- शिक्षा सामाजीकरण की प्रक्रिया हैं और मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया को विकसित करने में सहायता प्रदान करता है। दोनों का संबंध मानव व्यक्तित्व विकास से हैं। मनोविज्ञान का संबंध शिक्षा के उद्देश्य से नहीं होता है। यह उन तथ्यों का विवेचन करता है , जैसा कि वे हैं न कि जैसा उनको होना चाहिए। शिक्षा के उद्देश्य निर्धारित करने में मनोविज्ञान की सहायता ली जाती है। बालकों की रूचियों, रूझान, क्षमताओं एवं मानसिक योग्यताओं के अनुरूप ही पाठ्यक्रम का निर्धारण होना चाहिए। मनोविज्ञान की सहायता से नीरस विषय भी रूचिकर बनाया जा सकता हैं। बालक की शिक्षा में सामाजीकरण और समूह मनोवृत्ति पर ध्यान देना आवश्यक हैं। व्यक्तिगत भिन्नता के आधार पर वर्गीकरण कर शिक्षा देने का प्रबंध किया जाना चाहिए। स्नेह , प्रेम , प्रशंसा सहानुभूति तथा पुरस्कार द्वारा अनुशासन को स्थापित किया जाना चाहिए। शिक्षण के लिए मनोविज्ञान का ज्ञान बहुत आवश्यक है। निर्देशन से व्यक्ति को उसके भावी जीवन के लिए तैयार किया जाता है।
- राजनीतिशास्त्र समाज मनोविज्ञान का वह अंग है जो राज्य के आधार पर शासन के सिद्धांतों की विवेचना करता है। कुछ राजनीतिक घटनाऐं ऐसी होती है जो मानव व्यवहार को भी प्रभावित करती हैं। प्रभावी शासन के लिए अनुकूल जनमत का होना नितान्त आवश्यक है। स्थाई तथा लोकप्रिय शासन के लिए जनता की मनोदशाओं को समझना आवश्यक होता है। जनभावनाओं के अनुरूप शासन के कार्यों में जनता की नैतिक भावनाओं एवं अपेक्षाओं की स्पष्ट झलक दिखाई पड़नी चाहिए। नेता लोगों के व्यवहार को निर्देशित तथा नियंत्रित करता है। मानव को नियंत्रित करने वाली शक्तियों में प्रचार अत्यधिक महत्वपूर्ण है। युद्ध में हथियार के रूप में यह अणुबम से भी घातक है और शांति के साधन के रूप में संयुक्त राष्ट्र संघ से भी अधिक प्रभावशाली है। राजनीतिक तनाव, दंगे तथा अन्तर्राष्ट्रीय युद्धों आदि से मानव व्यवहार प्रभावित होता है। समाज मनोविज्ञान तथा राजनीतिशास्त्र में संबंध होते हुऐ भी कुछ भिन्नताएं है। जो समानता है वही राजनीतिशास्त्र का सामाजिक मनोविज्ञान है।

- यातायात मनोविज्ञान , मनोविज्ञान की बिल्कुल नई शाखा है । इसका विस्तार हो रहा है। सड़क , रेल, जल तथा वायु समस्त यातायात साधनों में दुर्घटनाओं की संभावना अधिक रहती है। परिवहन से संबंधित सभी शारीरिक, आर्थिक तथा मानसिक क्षति का समाधान ढूढ़ने के लिए यातायात एवं परिवहन मनोविज्ञानी सदैव तैयार रहते हैं। इनसे संबंधित मानवीय कारकों, संज्ञानात्मक तथ्यों तथा व्यवहारों का अध्ययन करते हैं। अतः व्यावहारिक मनोविज्ञान का यह क्षेत्र लगातार विश्वसनीय एवं महत्वपूर्ण होता जा रहा है। यातायात एवं परिवहन मनोविज्ञान कोई 'एक सैद्धान्तिक फ्रेमवर्क' नहीं हैं इसके स्थान पर इसमें बहुत से विशिष्ट मॉडल है।
- आज औद्योगिक एवं व्यावसायिक क्षेत्रों में मानवीय मूल्यों को विशेष स्थान प्राप्त है। व्यावसायिक प्रतिष्ठानों में हड़ताल, तालाबन्दी, दुर्घटनाएं आदि आम बात है। सामाजिक मनोविज्ञान इन सब समस्याओं का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण कर समाधान प्रस्तुत करता है। शारीरिक श्रम की बचत कर लाभ बढ़ाना, मनोवैज्ञानिक परीक्षणों द्वारा कर्मचारियों की भर्ती करना। कर्मचारियों की अभिरूचि बढ़ाने हेतु सुझाव देना। व्यावसायिक कार्य स्थल के पर्यावरण को स्वास्थ्य की दृष्टि से हानिरहित बनाने हेतु सुझाव देना, आदि सभी कार्य मनोविज्ञान के अध्ययन के विषय हैं। जनमत को आकर्षित करने हेतु उत्पादों एवं व्यवसाय के प्रचार प्रसार में भी मनोविज्ञान की अहम् भूमिका होती है।

16.9 शब्दावली

1. **क्रीड़ा** - खेल
2. **विशिष्ट** - विशेष
3. **आलोक -** संदर्भ
4. **इमैजरी -** छाया चित्रों द्वारा समझाना
5. **मांटेसरी शिक्षा पद्धति -** जिसमें विद्यालय को उद्यान माना गया है ।
6. **प्रोजेक्ट प्रणाली -** शिक्षा की योजना पद्धति जिसमें व्यावहारिक समस्या का समाधान बच्चों को स्वयं ढूढ़ना होता है।
7. **हायुरिस्टिक प्रणाली -** शिक्षा की खोज विधि।
8. **जनमत -** बहुसंख्यक जनता की इच्छा।
9. **क्षति** - हानि

16.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. शैक्षिक अन्तर्राष्ट्रीय जर्नल
2. 1920
3. सामाजीकरण
4. प्रक्रिया

5. जैसा कि वे हैं
6. समाज मनोविज्ञान
7. शासन के सिद्धांत
8. प्रचार
9. जनता की मनोदशाओं
10. अधिकांश लोग
11. दूरस्थ भौगोलिक स्थान
12. एक सैद्धान्तिक फ्रेमवर्क
13. मानवीय मूल्यों

16.11 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. सिंह आर. एन. (2007-2008) आधुनिक सामाजिक मनोविज्ञान अग्रवाल पब्लिकेशन आगरा
2. सिंह आर. एन. (2005) आधुनिक सामाजिक मनोविज्ञान विनोद पुस्तक मंन्दिर आगरा -2
3. सिंह ए.के - 2002 समाज मनोविज्ञान की रूपरेखा मोती लाल बनारसी दास दिल्ली
4. सिंह, ए.के (2000) उच्चतर सामान्य मनोविज्ञान मोती लाल बनारसी दास दिल्ली
5. श्रीवास्तव डी. एन.,दसवां संस्करण समाजिक मनोविज्ञान साहित्य प्रकाशन आगरा
6. श्रीवास्तव डी. एन एवं अन्य (2000-2001) आधुनिक समाज मनोविज्ञान एच . पी . भार्गव बुक हाउस आगरा।
7. भटनागर ए.बी.एवं अन्य -डेवलपमेन्ट आफ लर्नस एण्ड टीचिंग लर्निगं प्रोसेस विनय राखेजा C/O लाल बुक डिपाट मेरठ।
8. रोवर्ट , ए बैरन एवं डान बैरन (नौवा संस्करण) पीयर्सन एडूकेशन (सिंगापुर) प्रा. लि. इण्डियन ब्रांच 482 एफ. आइ्र ईपटपरगंज दिल्ली 110092 इंडिया।
9. त्रिपाठी आर.बी. एवं सिंह आर. एन. (2002) व्यक्तित्व का मनोविज्ञान सुमित भार्गव , गंगा सरन एण्ड ग्रेण्ड सन्स सी. के. 37/44 बी बॉसफाटक वाराणसी
10. मुहम्मद, सूलेमान (2006) सामान्य मनोविज्ञान , मूल प्रक्रियाऐं एवं संज्ञानात्मक प्रक्रियाये। मोती लाल बनारसी दास दिल्ली
11. अग्रवाल, विमल (2010-11) मनोविज्ञान एस.बी.पी.डी. पब्लिकेशन आगरा।

16.12 निबंधात्मक प्रश्न

1. क्रीड़ा मनोविज्ञान अपेक्षाकृत सभी मनोविज्ञानों में एक नई शाखा है। इस पर प्रकाश डालते हुए इसके वर्तमान स्वरूप का वर्णन कीजिए।
2. शिक्षा और मनोविज्ञान दोनों में पारस्परिक संबंध है , स्पष्ट कीजिए।
3. राजनैतिक क्रिया कलापों में सामाजिक मनोविज्ञान की भूमिका पर प्रकाश डालिए।

4. निम्नलिखित पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए-
    a. यातायात एवं परिवहन मनोविज्ञान
    b. व्यवसाय एवं सामाजिक मनोविज्ञान
    c. जनमत तथा प्रचार।